समर्पण ।

अवध के ताल्लुकेदारों में आदर्श व्यक्ति,

वैसकुलालंकरण,

श्रद्धास्पद श्रीमान् राजा सूर्यबक्स सिंह साहब

कसमंडाधिप के कर कमलों में।

श्रीमन्,

भगवती सरस्वती और लक्ष्मी की लोकोत्तर विभूति से सम्पन्न हो श्रीमान् जिस देश की हितचिन्ता में अहर्निश लीन रहते हैं और अपनी जिस आदरणीया मातृभाषा हिन्दी के साहित्य-भाण्डार की वृद्धि में तन, मन, धन से लगे रहते हैं, उसी भाण्डार की पूर्ति के यत्नस्वरूप और उसी देश के कल्याण-साधन के प्राचीन एवं आदर्श योगनिधि के एक अंश इस पुस्तक को श्रीमान् की सेवा में हार्दिक श्रद्धा और आदर से समर्पण करता हूँ।

श्रीमान् का कृपाभाजन,

प्रसिद्ध नारायण।

भूमिका।

योगी रामाचारकजी की "साईंस आफ ब्रेथ" का जो मैंने अनुवाद किया, उसकी हस्तलिखित कापी हमारे कई मित्रों के हाथ में पहुँची। उसे पढ़ कर लोगों ने इतनी प्रसन्नता प्रगट की कि इस हठयोग के अनुवाद करने का भी मुझे उत्साह हो गया। इसके अतिरिक्त अनेक उत्साही मित्रों ने इन क्रियाओं का अभ्यास भी प्रारम्भ कर दिया। जिन २ लोगों ने जी लगा कर इसका अभ्यास किया वे तो इसके गुणों पर ऐसे मुग्ध हो गये और कहने लगे कि भारत-वर्ष के योगियों की जो विद्या अब तक पहाड़ों की कन्दराओं में छिपी थी वह अब सर्वसाधारण में प्रचलित होगी और देश का असीम उपकार होगा। इन वाक्यों को सुन २ कर मैं विचार करने लगा कि जब केवल श्वास-क्रियाओं ही का प्रभाव लोगों को इतना उत्साहित कर रहा है तो उन क्रियाओं के साथ यदि खान, पान, रहन, सहन इत्योदि सभी बातों में हठयोग के नियमों का अनुसरण होने लगेगा तो और भी कितना लाभ होगा। इसी विचार से योगी रामाचारकजी के हठयोग नामक ग्रंथ का भी मैंने अनुवाद कर दिया।

योगी रामाचारक जी प्रत्येक विषय को अपनी किताबों में इस रीति से समझाते हैं कि शिष्यों के लिये कोई कठिनाई ही नहीं रह जाती। बहुत दिनों से यह सुनते आते थे कि

बिना साक्षात् गुरु के कोई साधन सिद्ध नहीं हो सकता; पर योगी रामाचारकजी के उपदेश, बिना साक्षात् गुरु के भी, साक्षात् गुरु के से काम देते हैं। इसलिये मैंने उन्हीं के लेखों का ठीक २ अनुवाद करने का यत्न किया है; अपनी ओर से कुछ भी घटाने बढ़ाने की चेष्टा नहीं की। हां, ऐसी जगहों पर अवश्य कुछ परिवर्तन कर दिये गये हैं, जहां उन्हों ने अपने अमेरिकानिवासी शिष्यों को सम्बोधन कर के कहा है वहां मैंने अपने भारतीय भाइयों को सम्बोधन कर दिया है।

योगशास्त्र के पुराने ग्रन्थों, जैसे पातंजल योगशास्त्र और शिव-संहिता आदि के देखने से ज्ञात होता है कि पुराने ग्रन्थ इतने बड़े नहीं हैं जितना बड़ा कि यह ग्रन्थ है। इसमें बातें भी बहुत सी नयी २ हैं जो उन पुराने ग्रन्थों में नहीं मिलतीं। हमारे देश के लकीर के फ़कीर लोग यह शंका कर सकते हैं कि इस किताब में तो बहुत सी नयी बातें आ गई हैं और पुरानी बातें भी नए ढंग से कही गई हैं, इसलिये इस शिक्षा का अनुसरण करने से तो हम नवग्राही हो जायँगे और हमारा सनातनधर्म ही बिगड़ जायगा। ऐसे सनातनियों से हमारा यह निवेदन है कि पतंजलि और शिवजी का जमाना दूसरा था। उस जमाने में ऊंची सी ऊंची शिक्षा बहुत संक्षेप में, सूत्र रूप में, दी जाती थी। वही तरीक़ा गुरु और शिष्य दोनों के अनुकूल था। पर अब तो यदि सही से सही सिद्धान्त को आप संक्षेप में सूत्र रूप से कहेंगे तो कोई सुने ही गा नहीं। अब सूत्रकाल नहीं है। अब साइंस काल है। एक ही बात को कई प्रकार से समझाइये, इतना समझाइये कि

सुनने वालों के मन में कोई सन्देह न रह जाय तभी आप का समझाना समझाना है। इसी को साइंस या विज्ञान कहते हैं। इसमें ग्रन्थ बड़े हो ही जाते हैं। इस योगशास्त्र के सिद्धान्त तो वही सनातन के हैं पर कहने का ढंग नया है; इसलिये इसका अनुसरण करने से सनातनधर्म किसी प्रकार नहीं बिगड़ सकता, इस बात से निश्चिन्त रहना चाहिये। दूसरी यह बात कि, इसमें पुराने ग्रन्थों की अपेक्षा बातें अधिक कही गई हैं, इसको मैं मानता हूँ कि यह बात बहुत ठीक है और इसका भी प्रबल और आवश्यक कारण है।

यह कारण तब समझ में आवेगा जब पहले आप यह समझ लेंगे कि योग की साधन-प्रणाली क्या है। योगशास्त्र पहले अपने शिष्यों को प्रकृति के मार्ग पर लाता है फिर उनकी शक्तियों को जगाता है। एक मनुष्य है जो राह छोड़ कर थोड़ी ही दूर कुराह पर गया है; उसके लिये फिर से राह पर लाने के लिये थोड़ी ही बातें कहनी पड़ती हैं; परन्तु दूसरा मनुष्य जो असली राह छोड़ कर बहुत दूर भटक गया है उसके लिये जरूर बहुत भटकी हुई बातों को समझा कर ठीक मार्ग पर लाना होगा। पहले जमाने के मनुष्य प्रकृति के मार्ग से बहुत दूर नहीं भटके थे; इसलिये थोड़े ही में कह कर उनको ठीक मार्ग पर लाते थे और उनकी शक्तियों को जगाते थे। अब के मनुष्य भटक कर प्राकृतिक मार्ग से बहुत दूर हट गये हैं और मनमानी राह पकड़ कर गुमराह हो रहे हैं; इसलिये भटके हुए दूर के मार्गों का दोष दिखलाना आवश्यक हो गया; तभी मनुष्य भटके मार्ग को

छोड़ कर असली मार्ग पर आवेंगे। इसलिये इसमें नयी २ भूलों और भ्रमों को दूर करने के लिये नयी २ बातें कहनी पड़ीं।

मेरे अनुभव में यह बात आई है, और मेरे साधक मित्रों ने भी इस बात का समर्थन और अनुमोदन किया है कि योगशास्त्र की पुस्तकों को केवल एक ही बार, चाहे कितना ही ध्यानपूर्वक हो, अध्ययन करने से काम नहीं चलता। एक बार थोड़ा २ पढ़ कर अभ्यास शुरू कीजिये। ग्रंथ समाप्त हो जाने पर कुछ दिन के लिये इसका पढ़ना छोड़ दीजिये पर अभ्यास करते जाइये। कुछ दिन के बाद फिर ध्यान से पढ़िये। इस प्रकार आप को नयी बातें मालूम होती जायँगी, जो पहले अध्ययन में आप के ख्याल पर नहीं थीं। एक तो अभ्यास करने से आप के मन में नये २ प्रश्न उठेंगे, दूसरे एक ही बार में मन सब बातों को ग्रहण नहीं कर सकता; इसलिये थोड़ा २ अन्तर देकर इसे बार २ पढ़ते रहना चाहिए तब बड़ा लाभ होता है।

योग की क्रियाओं के करने से शरीर के अंग प्रत्यंग जग उठते हैं। अवयव २, रेशे २, कण २ में शारीरिक क्रियायें अच्छी तरह से होने लगती हैं। निर्बल अंगों में बल आने लगता है निष्क्रिय अवयव क्रिया करने लगते हैं शरीर में, जहाँ २ त्रुटियाँ हैं; उनके दूर करने का प्रयत्न होने लगता है। वेदना-हीन अंगो में वेदना जग उठती है। शरीर में ऐसी भी त्रुटियाँ हैं जिनकी आप को खबर तक नहीं है क्योंकि वहाँ के अवयव वेदनाहीन हो गये हैं। पर जब सर्वत्र क्रिया जारी हो जाती है

तो वेदनाओं के जग जाने से त्रुटियाँ प्रकट हो जाती हैं। इसको बहुत से लोग रोग समझ लेते हैं। हमारे मित्र साधकों में से कोई कहता है कि मेरी छाती में मीठी २ पीड़ा सी हो रही है, कोई कहता है अँतड़ियों में कुछ अव्यवस्थिति सी मालूम होती है इत्यादि २। इन बातों से डरना न चाहिए; किन्तु प्रसन्न होना चाहिए कि क्रिया जारी हो गई और सफ़ाई होने लगी। सबसे पहले फेंफड़ों की सफ़ाई होती है। किसी २ को कुछ थोड़ी वेदना होती है, जुकाम तो अक्सर लोगों को हो जाता है और खूब कफ़ जाता है। निश्चित रहिये कोई बीमारी प्रबल वेग से कभी न उभरेगी, किन्तु धीरे २ उभड़ कर हमेशा के लिये दूर हो जायगी। अतएव इन सब बातों से निर्भय रहना चाहिए और अपने अभ्यास को कभी न छोड़ना चाहिए। जिस मकान की सफ़ाई के लिये आप झाड़ू देने लगेंगे उसमें गर्द अवश्य उड़ेगी; तो क्या गर्द उड़ने के डर से आप झाड़ू देना छोड़ देंगे? एक बार गर्द उड़ कर फिर दिन भर के लिये तो मकान साफ़ और सुथरा हो जायगा और यदि फिर आप कूड़ा करकट न आने देंगे तो हमेशा के लिये साफ़ रहेगा।

इस किताब में कई जगहों पर तौल दी हुई है; वह अंगरेज़ी तौल है। उसके समझने के लिये हम नीचे तालिका दिये देते हैं:—

६० बूंदों का १ ड्राम।
८ ड्राम का १ औंस।
२० औंस का १ पाइंट।

२ पाइंट का १ कार्ट ।
४ कार्ट का १ गैलन ।

हम आशा करते हैं कि हमारे देशवासी अपने पुराने भूले हुए इस योगमार्ग का अनुसरण कर के लाभ उठावेंगे ।

जिस प्रकार जापान और यूरोपियन देशों में शिक्षा दीक्षा दी जाती है उसी प्रकार हमारे इस बूढ़े भारतवर्ष में भी दी जाती है । पर इसी शिक्षा दीक्षा का प्रभाव जितना यूरोपियन देशों में पड़ता है हमारे देश में उतना प्रभाव नहीं पड़ता । कहाँ तो एक सूत्र के उपदेश से हमारा देश इतना ज्ञान ग्रहण करता था कि जितना अन्य देश पोथियों की पोथियों से भी नहीं ग्रहण कर पाते थे । अब वही हमारा देश है कि जिन किताबों को पढ़ कर एक यूरोपियन, अमेरिकन वा जापानी क्रिया निपुण और व्यवसायी हो कर बड़े २ व्यवसाय कर के अपने को और अपने देश को सब भांति से सम्पन्न बनाता है, उन्हीं किताबों को पढ़ कर हम मुहर्रिरी ढूँढ़ा करते हैं । कारण क्या है ? हम में न तो जीवट है न शक्ति । योगशास्त्र उसी जीवट और शक्ति को प्राप्त करने का मार्ग बतलाता है । जब जापानी लोग जिजित्सु नामक श्वास-क्रिया कर के छोटे और थोड़े होने पर भी बड़े और असंख्य रूसियों पर विजयी हो गये तो क्या हम अपने प्राणायाम के बल से प्रबल शक्ति नहीं प्राप्त कर सकते ? अभ्यास कीजिये और धैर्य रखिये सब कुछ हो जायगा; बिना परिश्रम और धैर्य के कुछ न होगा । हम आशा करते हैं कि हमारे देश-बन्धु इस अभ्यास को कर के मनमाना लाभ उठावेंगे ।

मेरे प्रिय मित्र श्रीयुत पण्डित कात्यायनीदत्त जी त्रिवेदी ने अपने अमूल्य समय का एक बड़ा भाग इसके प्रूफ संशोधन में व्यय किया है अतः मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

राजकुर्री सुदौली
जिला रायबरेली,
६-६-१९१७

प्रसिद्ध नारायण सिंह।

विषय-सूची ।

विषय.			पृष्ठ.
पहला	अध्याय—	हठयोग क्या है ?	१
दूसरा	,,	इस पार्थिव शरीर पर योगी का ध्यान	९
तीसरा	,,	दैवी कारीगर की कारीगरी... ...	१३
चौथा	,,	हमारा मित्र जीवनबल	१९
पाँचवाँ	,,	शरीर की रसायनशाला	२७
छठाँ	,,	जीवन-द्रव	४२
सातवाँ	,,	देह में का स्मशान	४८
आठवाँ	,,	पोषण	५६
नवाँ	,,	भूख और भोजनातुरता	६२
दसवाँ	,,	भोजन से प्राण प्राप्त करने के विषय में योगी का विचार और अभ्यास	६९
ग्यारहवाँ	,,	भोजन...	८२
बारहवाँ	,,	देह की सिंचाई	८८
तेरहवाँ	,,	शरीरयन्त्र की राख और फुज़ला ...	१०५
चौदहवाँ	,,	योगियों की श्वासक्रिया	१२२
पन्द्रहवाँ	,,	सही सांस लेने का प्रभाव	१३९
सोलहवाँ	,,	श्वास के अभ्यास	१४४
सत्रहवाँ	,,	नाक द्वारा श्वास लेना और मुँह द्वारा श्वास लेना	१५६

विषय.		पृष्ठ.
अठारहवाँ अध्याय–	शरीर के अणुजीव	१६२
उन्नीसवाँ ,,	शासनातीत अंगों पर अधिकार ...	१७६
बीसवाँ ,,	प्राणशक्ति	१८५
इक्कीसवाँ ,,	प्राण के अभ्यास	१९७
बाईसवाँ ,,	शिथिलीकरण विज्ञान	२०९
चौबीसवाँ ,,	शारीरिक व्यायाम का लाभ ...	२३४
पच्चीसवाँ ,,	योगियों के कुछ व्यायाम	२४१
छब्बीसवाँ ,,	योगियों का स्नान	२५३
सत्ताईसवाँ ,,	सूर्य्य की शक्ति	२६५
अट्ठाईसवाँ ,,	ताज़ी हवा	२७२
उन्तीसवाँ ,,	निद्रा क्षति को स्वाभाविक पूरा करने वाली है	२७८
तीसवाँ ,,	नवजनन	२८४
इकतीसवाँ ,,	मानसिक स्थिति	२९२
बत्तीसवाँ ,,	आत्मा के अनुगामी बनो	२९७

भूल से तेईसवाँ अध्याय का हेडिंग लिखना रह गया है, पाठक क्षमा करें।

लेखक।

हठयोग ।

पहला अध्याय ।

हठयोग क्या है ?

योग विज्ञान कई शाखाओं में विभक्त है। उसके विख्यात और प्रधान भाग ये हैं:—(१) हठयोग; (२) राजयोग; (३) कर्मयोग और (४) ज्ञानयोग । यह पुस्तक पहले ही भाग का वर्णन करता है। इस समय हम दूसरे भागों के वर्णन करने का यत्न न करेंगे; यद्यपि योग के इन समस्त बड़े भागों पर अवश्य कुछ अन्य ग्रन्थों में कहना ही पड़ेगा ।

हठयोग योगशास्त्र की वह शाखा है जो कि पार्थिव शरीर—उसकी रक्षा—उसकी भलाई—उसके स्वास्थ्य और उन कुल बातों का जो शरीर को उसकी प्राकृतिक और असली दशा में रखते हैं, वर्णन करता है। यह जीवन को स्वाभाविक रीति से जीने का मार्ग बतलाता है और पुकार २ कहता है, जिस पुकार को बहुत से पाश्चात्य लोग भी ले उठे हैं कि "प्रकृति के मार्ग पर वापस आवो"; अन्तर केवल इतना ही है कि योगी को "वापस" नहीं आना है; क्योंकि वह तो सर्वदा

प्रकृति और उसके पथ का निकटस्थ अनुयायी रहा है; और बाह्य पदार्थों की ओर अन्धाधुन्ध दौड़ से चकाचौंध में पड़ कर कभी भी वैसा मूर्ख नहीं बना है, जैसा कि आधुनिक सभ्यता में पड़े हुए मनुष्य ने मूर्ख बन कर इस बात को बिलकुल ही भुलवा दिया है कि ऐसी भी कोई चीज़ वर्त्तमान है, जिसे प्रकृति कहते हैं। दुनियां के प्रचलित ठाट और सामाजिक हौसलों की पहुँच ही योगी के ज्ञान तक न हो सकी। वह इन बातों पर हँसता है और इन्हें लड़कों का खेल समझता है। वह प्रकृति की गोद से बहका हुआ नहीं है; किन्तु वह उस प्रकृति माता के क्रोड़ में सटा रहता है, जिसने उसकी सर्वदा पुष्टि, तुष्टि, सुख और रक्षा की है। हठ-योग आदि में प्रकृति, मध्य में प्रकृति और अन्त में प्रकृति है। जब तुम्हारे सामने कोई तरीका, तरकीब अथवा नई रीति इत्यादि आवे तो उसे इसी कसौटी पर कसो कि "प्राकृतिक मार्ग क्या है" और सर्वदा उसीको पसन्द करो जो प्रकृति के अनुकूलतम हो। जब हमारे किसी शिष्य का ध्यान स्वास्थ्य की बहुत सी नई रीतियों, मनगढ़न्त उपायों, तरीकों, तदबीरों और ख्यालों की ओर आकर्षित हो, जिनसे कि पश्चिमी संसार भरा जा रहा है, तब यही परीक्षा बहुत लाभदायक होगी। उदाहरण के लिये यदि यह विचार उनके सामने आवे और इस पर उन्हें विश्वास करने के लिये कहा जाय कि "पृथ्वी का स्पर्श करने से मनुष्य के देह की आकर्षण शक्ति घट जाती है, इसलिये मनुष्य को रबर के तल्ले वाले जूतों को पहनना चाहिये और ऐसी चारपाइयों

पर सोना चाहिये, जिनके पायों के निचले भाग में कांच जड़े हों कि जिससे प्रकृति (पृथ्वी माता) उस आकर्षण शक्ति को खींच न ले, जिसे उसने इन्हें दिया है " तब हमारे शिष्यों को अपने मन ही मन यह प्रश्न करना चाहिये कि " इस विषय में प्रकृति क्या कहती है ? " प्रकृति क्या कहती है उसको जानने के लिये यह विचारना चाहिये कि क्या प्रकृति के ध्यान में रबर के तल्ले बनाना और पहनना तथा कांच वाले पायों का इस्तेमाल था या नहीं। शिष्य को यह देखना चाहिये कि बलवान मनुष्य, जो शक्ति से भरे हैं, इन बातों को करते हैं कि नहीं ?—इतिहास में जो बहुत बड़ा २ मानव समुदाय हो गया है, वह ऐसा करता था कि नहीं ? घास के चमन में लेटने से कुछ क्षीणता मालूम होती है कि नहीं ? और पृथ्वी माता की छाती पर लेट जाने के लिये स्वाभाविक इच्छा होती है कि उससे नफ़रत करने को जी चाहता है ?—लड़कपन में नङ्गे पांव भागने की इच्छा होती है कि नहीं ? और नङ्गे पांव बिना जूते के, टहलने में पावों को ताज़गी मिलती है कि नहीं ?—रबर के तल्लों में आकर्षण पर प्रभाव डालने की क्या विशेषता है ? इत्यादि। हमने इस बात को केवल उदाहरण के लिये दिया है, इस अभिप्राय से नहीं कि रबर के तल्लों और कांच के पायों के गुण दोष पर बहस की जाय। थोड़ा ही ध्यान देने से मनुष्य को मालूम हो जायगा कि प्रकृति के उत्तर यही दिखलाते हैं कि बहुत सी शक्ति इसी पृथ्वी से हमें मिलती है। पृथ्वी शक्ति से भरी हुई एक शक्ति-भण्डार है, और सर्वदा अपनी शक्ति

मनुष्य को देने के लिये उत्सुक रहती है; न कि वह शक्ति-हीन और शक्ति की भूखी हो कर अपने बच्चे, मनुष्य ही से शक्ति छीनने के लिये उतारू है। थोड़े ही दिनों में ये नये पैगम्बर लोग कहने लगेंगे कि हवा प्राण देने के स्थान में प्राण को मनुष्य देह से खींचती है।

निदान ऐसी प्रत्येक बात में सर्वदा उसी प्रकृति की कसौटी का प्रयोग करो—और यदि कोई बात प्रकृति के अनुसार न हो उसे त्याग दो—कायदा तो साफ़ है। प्रकृति अपने कार्य को खूब जानती है—वह तुम्हारी हितू है न कि वैरी।

योग की अन्य शाखाओं पर बहुत बड़ी २ और बहुमूल्य किताबें लिखी गई हैं; परन्तु हठयोग का तो नाम ही दे कर योग के लेखकों ने समाप्त कर दिया है। इसका बड़ा कारण यह है कि हमारे देश में भीख माँगने वाली नीच श्रेणी के ऐसे गरोह के गरोह हैं जो अपने को हठयोगी कहते हैं, परन्तु योग के तत्त्व का उसे लेश मात्र भी ज्ञान नहीं है। इन मनुष्यों को कुछ थोड़े अभ्यास से अपने शरीर के अनधिकृत अवयवों पर कुछ अधिकार प्राप्त हो गया है (यह बात सब किसी के लिये, जो इस विषय का अभ्यास करें, सम्भव है) और उस अधिकार से उन्हें ऐसा सामर्थ्य हो गया है कि अपने शरीर पर वे कुछ असाधारण तमाशे कर लेते हैं और उन्हें दूसरों को पैसे की लालच से दिखाया करते हैं। इनकी करतूतों में से कुछ तो बहुत ही आश्चर्यजनक होती हैं। कोई २ तो अपनी अँतड़ियों और गले की अधःगामिनी क्रिया

को उलट कर ऊर्द्धगामिनी बना देते हैं जिससे मलाशय की वस्तुओं को गले के मार्ग मुहँ से निकालते हैं। यह बात डाक्टरों के लिये तो आश्चर्यजनक है; पर साधारण मनुष्यों के लिये घृणाजनक के सिवाय और कुछ नहीं है। इन लोगों की और भी ऐसी ही ऐसी करतूतें हैं जिनसे पुरुप अथवा स्त्री की स्वास्थ्य विषयक अभिलापाओं को तनिक भी सफलता होने की सम्भावना नहीं है। ऐसे ही इनके दूसरे भाई एक और होते हैं, जो योगी नाम धारण किये हैं और जो मजहबी कारणों से नहाते तक नहीं, या अपनी भुजा उठाये रहते हैं, जिससे वह सूख जाती है, या इसी प्रकार की और क्रियायें करते हैं कि जिनसे लोग उन्हें महात्मा समझें और मुफ्त में भोजन इत्यादि दें। ये लोग या तो पक्के ठग हैं या धोखे में पड़े हुये सनकी आदमी हैं।

इन मनुष्यों पर, जिनका हम ऊपर वर्णन कर आये हैं, सच्चे योगी लोग तरस खाते हैं। सच्चे योगी लोग हठयोग को अपने शास्त्र का एक प्रधान अंग मानते हैं; क्योंकि इसके द्वारा मनुष्य को स्वस्थ शरीर मिलता है—जो काम करने के लिये बड़ा अच्छा औज़ार है—और जो आत्मा के लिये अनुकूल मन्दिर है।

इस छोटी किताब में हमने सीधे सादे तरीके से हठयोग के मूल तत्त्वों को दे देने का प्रयत्न किया है कि इस पार्थिव शरीर के लिये योगियों का क्या तरीका है। हमें यह आवश्यक ज़ान पड़ा है कि पहले पश्चिमी शरीर विज्ञान के अनुसार हम शरीर के भिन्न २ कार्यों को दर्शावें और तब प्रकृति के

उपायों और रीतियों का वर्णन करें, जिनका अनुसरण करना मनुष्य के लिये यथासाध्य अत्यन्त आवश्यक है। यह वैद्यक की किताब नहीं है; इसमें दवा का नाम भी नहीं है; और न इसमें रोगों के छुड़ाने ही का वर्णन है। हां, प्रकृति के मार्ग पर लौट आने के लिये उपाय अवश्य बतलाये गये हैं। इसका उद्देश स्वस्थ मनुष्य है। इसका प्रधान अभिप्राय यही है कि मनुष्यों को स्वाभाविक जीवन में लाने के लिये सहायता पहुँचावे। परन्तु हम लोगों का यह भी पूरा विश्वास है कि जिन बातों से स्वस्थ मनुष्य स्वस्थ बना रह सकता है, उन्हीं बातों के द्वारा अस्वस्थ मनुष्य भी स्वस्थ हो सकता है यदि वह उन बातों का पूरा अनुसरण करे। हठयोग सच्चे, स्वाभाविक और असली जीवन का उपदेश करता है; जो कोई इसका अनुसरण करेगा उसी को लाभ पहुँचेगा। यह प्रकृति के अनुकूल चलता है; और हम लोगों को, जो कृत्रिम आदतों और जीवन के जाल में फँस गये हैं, प्रकृति के मार्ग पर लौट आने की प्रेरणा करता है।

यह पुस्तक सरल है—बहुत सरल है—इतना सरल है कि बहुत से मनुष्य तो इसे अलग फेंक देंगे कि इसमें तो कोई नयी और अद्भुत बात ही नहीं है। कदाचित् उनकी यह आशा रही हो कि इसमें भिखमङ्गे योगियों की मशहूर करतूतियाँ होंगी और ऐसे उपाय दिये गये होंगे कि जिनसे इस पुस्तक का पढ़ने वाला भी उन करतूतियों को कर सकेगा। हम ऐसे मनुष्यों को बतलाये देते हैं कि यह किताब वैसी नहीं है। हम इसमें चौहत्तर आसनों को नहीं बतलाते हैं,

और न यही बतलाते हैं कि अँतड़ियों को साफ़ करने के लिये अँतड़ियों में वस्त्र डाल कर फिर कैसे उसे निकालते हैं (इसका प्रकृति के नियम से मुक़ाबिला कीजिये), या कैसे दिल का धड़कना बन्द कर देते हैं, अथवा कैसे भीतरी अवयवों से नाना प्रकार के खेल करते हैं। इस किताब में आप ऐसा कुछ भी न पावेंगे। हम इसमें यह बतलाते हैं कि किसी उच्छृङ्खल अवयव को कैसे वश में किया जाता है, कैसे उससे समुचित कार्य्य लिया जाता है; और हम उन अनधिकृत अवयवों पर अधिकार जमाना बतलावेंगे जो हड़ताल करके अपना काम करना बन्द कर दिये हैं। हमने इन उपायों का इसलिये इस पुस्तक में वर्णन किया है कि मनुष्य का स्वास्थ्य बना रहे, न कि इस अभिप्राय से कि इनके द्वारा कुखेल रचा जाय।

हमने बीमारियों के विषय में बहुत नहीं वर्णन किया है। हमने आप के सम्मुख स्वस्थ पुरुष और स्त्री का नमूना खड़ा कर दिया है; और हम आप से यही चाहते हैं कि आप देखें कि कैसे वे स्वस्थ हुए और कैसे अब भी स्वस्थ बने हुए हैं। तब हम आप का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित करते हैं कि वे क्या और कैसे करते हैं। फिर हम यह शिक्षा देते हैं कि आप भी वैसा ही कीजिये, यदि आप भी वैसा ही स्वस्थ बना चाहते हैं। बस "इतना" ही करने का हमारा प्रयत्न है। परन्तु इसी "इतना" में वह सब बातें आ जाती हैं, जो आप के लिये की जा सकती हैं; शेष आप को स्वयं करना होगा।

अन्य अध्यायों में हम यह बतलावेंगे कि योगी लोग इस शरीर पर इतना ध्यान क्यों देते हैं। हम हठयोग के मूल तत्त्व, उस विश्वास का वर्णन करेंगे कि सर्वजीवन के पीछे सर्वव्यापक महती चेतनता वर्त्तमान है—उस जीवन तत्त्व के ऊपर पूर्ण विश्वास चाहिये कि वह अपना कार्य्य समुचित रूप से करेगा—यह विश्वास अटल बना रहे कि यदि हम उस महत्तत्त्व पर विश्वास करें, और उसे अपने भीतर काम करने का निर्बाधरूप से अवकाश दें, तो हमारे शरीर का सदा कल्याण रहेगा। पढ़ते चलिये तब आपको मालूम हो जायगा कि हम आपको क्या बतलाने का यत्न कर रहे हैं—आप उस सन्देशा को पा जायँगे जो आपको देने के लिये हमें सपुर्द हुआ है। उस प्रश्न के उत्तर में जो इस अध्याय के सिरे पर दिया गया है कि "हठयोग क्या है?" हम यह कहते हैं कि इस किताब को अन्त तक पढ़ जाइये तब आप कुछ २ समझेंगे कि यह क्या वस्तु है; जिन बातों का उपदेश इस किताब में दिया गया है उनका अभ्यास कीजिये तब आपको अपने अभीष्ट ज्ञान के पथ पर एक खासा प्रस्थान मिल जायगा।

दूसरा अध्याय ।

इस पार्थिव शरीर पर योगी का ध्यान ।

ऊपरी देखने वाले को योगशास्त्र के उपदेशों में परस्पर बड़ा विरोध दिखाई देता है । एक ओर तो यह शास्त्र यह वतलाता है कि यह पार्थिव शरीर नश्वर द्रव्यों से वना हुआ है और मनुष्य के उच्च तत्त्वों के सम्मुख यह कुछ भी नहीं है; और दूसरी ओर अपने शिष्यों को यह शिक्षा देने के लिये वहुत ही प्रयत्न और प्रधानता देता है कि इस पार्थिव शरीर पर खूव ध्यान, पुष्टि, शिक्षा, व्यायाम और उन्नति दो । सच तो यह है कि योगशास्त्र की एक सम्पूर्ण शाखा ही. हठयोग के नाम से इस पार्थिव शरीर की उन्नति ही के विषय में है, जिसमें इस शरीर की रक्षा और विकाश के विषय में विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है ।

वाज २ पश्चिमी यात्री जो पूरव में आते हैं और योगियों को शरीर पर अधिक ध्यान देते पाते हैं, तो झट यह अनुमान अपने जी पर बैठाल लेते हैं कि " योगशास्त्र केवल शारीरिक शिक्षा का पूर्वीय रूपान्तर मात्र है, जो कदाचित् कुछ और सावधानी से दिया जाता है, पर इसमें आध्यात्मिकता कुछ नहीं है " । वे ऊपर ही ऊपर देख कर यह कह डालते हैं, परन्तु इसके भीतर २ क्या है इसकी उन्हें कुछ खवर ही नहीं ।

हमको इस बात की आवश्यकता नहीं है कि अपने शिष्यों को योगी के शरीर के ऊपर इतना ध्यान देने का कारण समझावें, न तो इस छोटी किताब के प्रकाशित करने में, जिसमें अपने योग के शिष्यों को वैज्ञानिक रीति से शरीर के विकाश और पोषण की शिक्षा दी गई है, क्षमा-प्रार्थना की हमें आवश्यकता है।

आप लोग जानते हैं कि योगियों का यह विश्वास है कि असली मनुष्य उसका शरीर नहीं है। वे जानते हैं कि वह अमर "अहम्", जिसकी प्रत्येक व्यक्ति थोड़ी बहुत जानकारी रखता है, देह नहीं है; इस देह को तो केवल वह धारण करता है और इससे काम लेता है। वे जानते हैं कि देह केवल वस्त्राच्छादन की भाँति है जिसको आत्मा पहन लेता है और समय पर उतार देता है। वे जानते हैं कि शरीर किस लिये है; और इसीसे वे इसके असली मनुष्य होने के धोखे में नहीं पड़ते। इन सब बातों के जानते हुए, वे यह भी जानते हैं कि यह देह वह औज़ार है जिसमें और जिसके द्वारा जीव विकाश पाता है और अपना काम करता है। वे जानते हैं कि विकाश के इस दर्जे में मनुष्य के उद्घाटन और उन्नति के लिये मांस देह आवश्यक है। वे जानते हैं कि शरीर आत्मा का मन्दिर है। और इसलिये उनका यह विश्वास है कि शरीर का ध्यान रखना और उसकी उन्नति करना वैसा ही उचित कार्य है जैसा कि मनुष्य के उच्च तत्त्वों का विकाश करना उचित कार्य है; क्योंकि अस्वस्थ और अधूरे गठित शरीर से, मन यथोचित रूप में कार्य नहीं कर

सकता; और न तो यह औजार अपने मालिक आत्मा के हित के लिये यथेष्ट काम में आ सकता है।

यह सत्य है कि योगी इस सीमा से और आगे जाता है और यह हठ करता है कि देह पूर्णतया मन के अधिकार में वशीभूत रहे—यह औज़ार ऐसा शान दिया रहे—कि मालिक के हाथों का स्पर्श पाते ही यथेष्ट कार्य सम्पादित कर देने में समर्थ हो।

परन्तु योगी जानता है कि खूब ऊँचे दर्जे का कार्य सम्पादन तभी होगा जब इस शरीर की उचित खबरदारी, पुष्टि और विकाश किये जांयगे। उच्च शिक्षित वही शरीर होगा जो सब से प्रथम सुदृढ़ और स्वस्थ हो लेगा। इन्हीं कारणों से योगी अपने पार्थिव शरीर का इतना ध्यान और पर्वाह करता है; इसीसे हठयोग के योग विज्ञान का प्रधान अङ्ग शारीरिक शिक्षा है।

पश्चिमी शारीरिक शिक्षक शरीर की उन्नति केवल शरीर ही के लिये करता है, और प्रायः उसका यही विश्वास रहता है कि शरीर ही मनुष्य है; योगी यह समझ कर अपने शरीर का विकाश करता है कि शरीर आत्मा का केवल एक औज़ार मात्र है जो मनुष्य के असली तत्व के काम आता है; यह औजार पक्का रहेगा तो जीव के विकाश में पक्का काम देगा। शारीरिक शिक्षक केवल शरीर की बाहरी ही कसरतों से सन्तुष्ट रहता है और उन्हीं कसरतों को करता है, जिनसे पट्ठे पुष्ट हों। योगी अपने अभ्यासों में मन को भी मिला देता है और केवल पट्ठों ही को पुष्ट न करके शरीर

के प्रत्येक अवयव, परमाणु और अङ्ग को विकशित करता है। वह केवल इतना ही नहीं करता, किन्तु, वह शरीर के प्रत्येक अंग पर अपना अधिकार प्राप्त करता है; और शरीर के अनधिकृत और अधिकृत प्रत्येक अंग पर अपना स्वामित्व स्थापित करता है। ये बातें ऐसी हैं जिनसे कि साधारण शरीर शिक्षक बिल्कुल ही अनभिज्ञ है।

हम अपने शिष्यों को योग शिक्षा का वह मार्ग बतलाते हैं; जिससे उनका शारीरिक स्वास्थ्य पूरा २ दुरुस्त हो जाय; और हम आशा करते हैं और निश्चय रखते हैं कि जो मनुष्य हमारी शिक्षा को सावधानी और ज्ञानपूर्वक ग्रहण करेगा उसके समय और परिश्रम का पूरा २ फल उसे मिल जायगा; और वह अपने पूर्ण विकसित शरीर का मालिक होगा। और वह अपने शरीर से उतना ही सन्तुष्ट हो जायगा जितना कोई गुणी संगीताचार्य अपने उत्तम से उत्तम उस वाद्य यंत्र को पाकर सन्तुष्ट रहता है, जो उसके हाथ का स्पर्श पाते ही उसके मनोवाञ्छित राग को अलापने लगता है।

——o——

तीसरा अध्याय।

दैवी कारीगर की कारीगरी।

योगशास्त्र यह सिखलाता है कि परमेश्वर प्रत्येक व्यक्ति को एक शारीरिक कल देता है जो उसकी आवश्यकताओं के अनुकूल हुआ करती है; और उसे उस कल को ठीक दशा में रखने, और यदि मनुष्य की भूल से कल कुछ विगड़ जाय तो उसके मरम्मत करने के साधन भी देता है। योगी लोग इस मानव शरीर को महा चैतन्य शक्ति की कारीगरी समझते हैं। वे इसकी संगठनि को एक चलती हुई कल समझते हैं, जिसकी कल्पना और परिक्रिया अत्यन्त चातुरी और स्नेह का परिचय देती है। योगी लोग जानते हैं कि यह देह उसी महा चैतन्य के कारण है; वे जानते हैं कि वही चैतन्य इस पार्थिव देह में सर्वदा लगातार काम कर रहा है और जब तक कोई व्यक्ति उसके नियम का अनुयायी वना रहता है, तब तक वह स्वस्थ और सुदृढ़ भी बना रहता है। वे यह भी जानते हैं कि जब मनुष्य उस नियम के प्रतिकूल चलता है तो इसका परिणाम गड़बड़ और बीमारी होती है। उनका विश्वास है कि यह कल्पना कि उस महती चेतनता ने इस शरीर को उत्पन्न तो किया पर इसे इसकी भाग्य के भरोसे छोड़ कर आप हट गई, नितान्त हास्य के योग्य है। उनका यह विश्वास है कि

वह महती चेतनता अब भी शरीर की प्रत्येक क्रिया का निरीक्षण करती है और वह निर्भय होकर विश्वास करने के योग्य है न कि उससे डरा जाय।

वह महती चेतनता, जिसके रूपान्तर को हम "प्रकृति" "जीवन तत्त्व" या ऐसे ही और नामों से पुकारते हैं, सर्वदा क्षतियों की मरम्मत करने, घावों को पूरा करने, और टूटी हड्डियों को जोड़ने के लिये चौकन्ना रहती है; उन सहस्रों हानिकारक द्रव्यों को इस यंत्र में से निकाल फेंकने के लिये तत्पर रहती है, जो कि इसमें एकत्रित हुआ करते हैं। वह हजारों उपाय करके इस यंत्र को अच्छी चलती दशा में रक्खा चाहती है। जिसको हम रोग कहते हैं उसका अधिकांश भाग वस्तुतः प्रकृति की वह लाभदायक क्रिया है, जो उन विषैले द्रव्यों को हटा कर निकालने के लिये होती है, जिन्हें हमने अपने शरीर में प्रवेश करा कर स्थान दिया है।

आइये जरा देखिये तो कि इस शरीर का अर्थ क्या है। किसी जीव की कल्पना कीजिये कि वह एक ऐसा ठांव खोज रहा है, जहाँ रह कर वह अपने अस्तित्व की इस दशा को चरितार्थ कर सके। योगी लोग जानते हैं कि कतिपय रीतियों से विकाश पाने के लिये जीव को मांस निर्मित ठांव (देह) की आवश्यकता होती है। अब देखना चाहिये कि इस देह के ढंग पर जीव को कौन कौन सी वस्तुयें आवश्यक हैं; और तब विचार किया जायगा कि प्रकृति ने सब वस्तुओं को जुटा दिया है कि नहीं।

सबसे प्रथम तो जीव को एक अच्छे विचित्र सुगठित

सोचने विचारने के औज़ार की ज़रूरत है, जो एक ऐसा सदर स्थान हो जहाँ से वह शारीरिक क्रियाओं का संचालन कर सके। प्रकृति ने उस अद्भुत औज़ार को मस्तिष्क के रूप में दिया है, जिसकी गूढ़ शक्तियों को इस समय हम बहुत ही थोड़ा सा जानते हैं। मस्तिष्क के जितने भाग को मनुष्य अपने विकाश की इस वर्त्तमान दशा में काम में लाता है, वह भाग कुल मस्तिष्क का एक बहुत ही छोटा खण्ड मात्र है। अप्रयुक्त भाग मानव समुदाय के और अधिक विकाश की बाट जोह रहा है।

अब जीव को इन्द्रियों की आवश्यकता है जिनके द्वारा कि वह बाह्य पदार्थों के भिन्न २ चिन्हों को धारण और अङ्कित कर सके। प्रकृति फिर सहायता के लिये पहुंच आती है और आँख, कान, नाक और रसना तथा स्पर्श इन्द्रियों को मुहैया कर देती है। प्रकृति ने और इन्द्रियों को पीछे रख लिया है; उन्हें वह तब देगी जब मानव समुदाय को उनकी आवश्यकता होगी।

तब मस्तिष्क और शरीर के भिन्न २ भागों के बीच में सन्देशों और शासनों के आवागमन के साधन होने चाहियें। प्रकृति ने आश्चर्यजनक रीति से सारे शरीर में तन्तुओं का जाल फैला दिया है। मस्तिष्क इन्हीं तन्तुओं के तार द्वारा शरीर के सब अङ्गों प्रत्यङ्गों में अपनी आज्ञाओं को भेजता है; प्रत्येक शारीरिक परमाणु और इन्द्रिय में आज्ञा भेज कर उसके पालन के लिये हठ करता है। वैसे ही शरीर के सब अङ्गों से इन्हीं तारों द्वारा, उपस्थित भय, सहा-

यता की मांग और फर्यादों की पुकार के सन्देशों को प्राप्त करता है।

फिर शरीर को ऐसे साधन चाहिये, जिससे वह संसार में भ्रमण कर सके। यह स्थावर दशा की प्रवृत्तियों के पार उतर गया है, और अब इसे भ्रमण करने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त इसे बाहरी वस्तुओं के पास पहुंचना और उन्हें अपने काम में लाना है। इसलिये प्रकृति ने इसे हाथ, पांव दिये हैं और उन पांव और हाथों को संचालित करने के लिये मांसपेशियां (पट्ठे) और नसें दी हैं।

शरीर को एक ऐसे ढांचे का भी जरूरत है जिससे वह दृढ़ और कड़े आकार में बना रहे, धक्कों को सहन कर ले, और ख़ालिस मांस पिण्ड रह कर लुण्ड मुण्ड न हो जाय; इसे बल और दृढ़ता रहे; ऊपर सम्हला रहे; इसलिये प्रकृति ने इसे हड्डियों का ढांचा दिया है; यह ढांचा कैसा अद्भुत है! आप के अध्ययन करने के ही योग्य है।

अब जीव को दूसरे शरीरधारी जीवों के साथ अपने मनोगत भावों के कहने सुनने का साधन चाहिये। प्रकृति ने वाणी और श्रवण की इन्द्रियां देकर इस अभाव को भी दूर कर दिया है।

शरीर को एक ऐसे साधन की आवश्यकता है जिसके द्वारा वह अपने प्रत्येक अङ्गों और प्रत्यङ्गों में उनके मरम्मत की सामग्री भेज सके जिससे शरीर की मरम्मत हो, त्रुटियों की पूर्ति होती रहे और सब भागों में बल पहुंचता रहे। फिर ऐसे ही एक और साधन की आवश्यकता है जिससे कि

शरीर के अङ्गों की रद्दियात, कूड़े और मैल स्मशान में भेज दिये जाँय और वहां जला कर शरीर के बाहर फेंक दिये जाँय। इसके लिये प्रकृति हमें जीवनदाता रुधिर देती है, और रुधिर के प्रवाह के लिये नालियाँ और धमनियाँ देती है जिन के द्वारा रुधिर आगे और पीछे बहता हुआ अपना कार्य करता है। और प्रकृति ने हमें फेंफड़े दिये हैं, जो रुधिर में आक्सीजन भरा करते हैं और रद्दियात तथा कूड़े और मैलों को जलाया करते हैं।

शरीर को बाहरी सामग्रियों की ज़रूरत पड़ती है जिनसे इसके अङ्गों की वृद्धि और मरम्मत हुआ करे। प्रकृति ने ऐसे ऐसे साधन दे दिये हैं जिनसे भोजन किया जाता है, उसे पचाया जाता है, उसमें से पोषण करने वाला रस निकाला जाता है, उस रस को ऐसे रूप में लाया जाता है कि जिसमें शरीर के अवयव उसे अपना सकें और अपने में मिला लें। प्रकृति ने ऐसे भी साधन दिये हैं, जिनसे निस्सार मल बाहर निकाल कर फेंक दिया जाता है।

अन्त में शरीर को ऐसा साधन प्रकृति द्वारा मिला हुआ है कि वह अपने ही रूप के अन्य शरीरों को उत्पन्न कर सकता है और दूसरे जीवों के लिये देह तय्यार कर देता है।

मानव शरीर की आश्चर्यजनक कारीगरी और क्रियाओं को अध्ययन करना बड़ा ही लाभदायक है। इसके अध्ययन से प्रकृति की महती चेतनता की सत्यता का अकाट्य अनुभव हो जाता है। मनुष्य को महत् जीवनतत्त्व कार्य-निरत दिखलाई देने लगता है। वह देखने लगता है कि यह

अन्ध संयोग अथवा जड़ घटना नहीं है; किन्तु, एक महच्छक्ति-शालिनी चेतनता का काम है।

तब वह इस चेतनता में विश्वास करना सीखता है कि जिस चैतन्य शक्ति ने हमें इस शारीरिक सत्ता में लाया है वही हमें जीवन में संभाल ले जावेगी। जिस शक्ति ने उस समय हमारी खबर्दारी की, उसी की खबर्दारी में हम अब भी हैं और सर्वदा रहेंगे भी।

जितना ही हम उस महत् जीवन तत्त्व के प्रवेश के लिये खुले हुए रहेंगे उतना ही हम लाभ उठावेंगे। यदि हम उस तत्त्व से भयभीत होंगे अथवा उसका विश्वास न करेंगे, तो उसके लिये हम अपना दरवाज़ा बन्द करते हैं और हमें अवश्य दुःख भोगना पड़ेगा।

चौथा अध्याय।

हमारा मित्र जीवनबल।

बहुत से लोग यह गलती करते हैं कि बीमारी को एक चीज—असली चीज़—स्वास्थ्य का वैरी—समझते हैं। यह बात सही नहीं। स्वास्थ्य मनुष्य की स्वाभाविक दशा है, और स्वास्थ्य का अभाव ही बीमारी है। यदि कोई मनुष्य प्रकृति के नियमों का अनुसरण करे तो वह बीमार हो ही नहीं सकता। जब किसी नियम का उल्लंघन होता है, तब असाधारण दशा उत्पन्न हो जाती है, और कतिपय लक्षण प्रगट हो जाते हैं, इन्हीं लक्षणों को हम बीमारी नाम देते हैं। जिसको हम बीमारी कहते हैं वह केवल प्रकृति के उस प्रयत्न का परिणाम है, जिसे वह असाधारण दशा के हटाने और साधारण क्रिया के लाने के लिये करती है।

हम लोग बीमारी को झट एक चीज़ समझ और कह डालते हैं। हम लोग कहा करते हैं कि "वह" हमारे ऊपर आक्रमण करती है—"वह" अमुक अवयव में अपना घर बनाये हुये है—"वह" अपनी राह चली जा रही है—"वह" बड़ी ही ज़िद्दी है—"वह" बिलकुल ही मुलायम है—"वह" सब औषधियों से भिड़ जाती है—"वह" फ़ौरन मान जाती है—इत्यादि। हम लोग उसके विषय में ऐसा कहा करते हैं, मानों वह ऐसी चीज़ है, जिसमें खसलतें, आदतें और

और जीव हों। हम लोग उसे ऐसा समझते हैं कि मानो वह हम पर चढ़ दौड़ती है और हमारे बिगाड़ के लिये अपना बल लगाती है। हम लोग उसके विषय में ऐसा कहते हैं, जैसा भेड़-बकरियों के घर में भेड़िया—मुर्गी के बच्चों के दर्बे में बिल्ली—गल्ले के अम्बार में चूहा—के विषय में कहा करते हैं; और उसके साथ वैसे ही भिड़ने का यत्न करते हैं जैसे उक्त जन्तुओं के साथ। हम लोग उसे मार डाला, या नहीं तो डरा कर भगा दिया, चाहते हैं।

प्रकृति कोई ओछी या अविश्वास योग्य वस्तु नहीं है। इस शरीर में सुव्यवस्थित नियमों के अनुसार जीवन विकाश करता है। और धीरे २ उदय होता है, अपनी पूरी अवधि पर पहुंचता है, और तब शनैः २ क्षीण होने लगता है; अन्त में वह समय आ जाता है कि यह शरीर पुराने परिधान वस्त्र की भांति अलग कर दिया जाता है, और जीव अपने और अधिक विकाश की यात्रा में निकल खड़ा हो जाता है। प्रकृति की यह इच्छा कदापि न थी कि मनुष्य पूर्ण वृद्धावस्था के पहले अपने शरीर को छोड़; और योगी लोग जानते हैं कि यदि प्रकृति के मार्ग पर बचपन ही से चला जाय तो नवयुवक या अधेड़ मनुष्य की मृत्यु वैसी ही विरल हो जाय जैसी कि दुर्घटना जनित मृत्युयें विरल हुआ करती हैं।

प्रत्येक पार्थिव शरीर में एक ऐसा जीवनबल रहता है जो अपनी शक्ति भर हमारे लिये लगातार प्रयत्न किया करता है, यद्यपि हम लोग अपनी लापरवाही से स्वाभाविक जीवन के मुख्य २ नियमों का भी उल्लंघन करते रहते

हैं। जिसको हम बीमारी कहते हैं, उसका एक बड़ा भाग इस जीवनबल का रक्षाकारी प्रयत्न है—और चंगा करनेवाली वस्तु है। जीवित अवयवों की ओर से वह अधःगति नहीं, किन्तु ऊर्ध्वगति है। यह प्रयत्न असाधारण और अस्वाभाविक होता है, क्योंकि असाधारण और अस्वाभाविक दशा पहले ही उत्पन्न कर दी जा चुकी है; और साधारण दशा को लाने के लिये उस जीवनबल को अपने सारे चंगा करने वाले प्रयत्न को लगाना पड़ता है।

इस जीवनबल का पहला उद्देश आत्म-रक्षा है। जहां २ जीवन है वहां २ यह उद्देश प्रगट दिखाई देता है। इसी के प्रभाव से नर और मादा एकत्र खिंचते हैं, गर्भस्थित जीव और बच्चे को पोषण मिलता है, माता सन्तान-जनन की दुस्सह पीड़ा सहती है, कठिन से कठिन दुरवस्था में भी माता पिता अपने बच्चों की रक्षा करते हैं। क्यों? क्योंकि इन सब बातों का अर्थ जातिगत रक्षा की प्रवृत्ति है।

व्यक्तिगत रक्षा की प्रवृत्ति भी ऐसी ही बलवती होती है। "मनुष्य अपनी ज़िन्दगी के लिये सब कुछ अर्पण कर सकता है" ऐसा एक लेखक ने लिखा है। यद्यपि यह कथन बड़े आदमियों पर पूरा नहीं घट सकता (स्मरण करो—प्राण जाय वरु वचन न जाहीं) तौ भी आत्म-रक्षा की दृढ़ प्रवृत्ति के उदाहरण देने के लिये यथेष्ट "सच" है। यह प्रवृत्ति बुद्धि की प्रवृत्ति नहीं है, किन्तु, बहुत नीचे से, सत्ता की नींव ही से इसकी भी जड़ है। यह प्रवृत्ति बुद्धि को भी दबा कर अपने आप ऊपर हो जाती है। जब कभी मनुष्य अपनी

बुद्धि से दृढ़ संकल्प कर लेता है कि इस खतरे की जगह पर "मैं अटल खड़ा रहूँगा" तौभी यह प्रवृत्ति उसकी टांगों को भगा ले जाती है। इसी प्रवृत्ति के वशवर्ती होकर डूबे हुये जहाज का मनुष्य सभ्यता के बड़े २ नियमों को तोड़ देता है और अपने ही साथी को मार कर उस का लहू पी लेता है; भयङ्कर काल कोठरी (Black Hole) के मनुष्यों को इसी प्रवृत्ति ने पशु बना दिया था। यह प्रवृत्ति अनेक और भिन्न दशाओं में अपनी प्रभुता दिखलाया करती है। यह सर्वदा जीवन—अधिक जीवन, स्वास्थ्य—अधिक स्वास्थ्य के प्रयत्न में लगी रहती है। यही प्रवृत्ति हमें—स्वस्थ बनाने के अभिप्राय से बहुधा बीमार कर देती है; यही प्रवृत्ति उस विषैले अनमिल पदार्थ को हमारे भीतर से निकालने के लिये, जिसे हमने अपनी लापरवाही और मूर्खता से भीतर डाल रक्खा है, हमें बीमार कर देती है।

जैसे चुम्बक की सुई की आन्तरिक प्रभुता सूई के सिरे को सर्वदा उत्तर की ओर रक्खा चाहती है, वैसे ही जीवन-बल का आत्मरक्षक तत्त्व सर्वदा हमें स्वास्थ्य के पथ पर चलने की प्रेरणा करता है। हम उस प्रेरणा की उपेक्षा करें, उस पर ध्यान न दें, यह दूसरी बात है; पर प्रेरणा होती अवश्य है। वही प्रवृत्ति हमारे भीतर भी है, जो प्रवृत्ति बीज में रह कर उसके अंकुर को जमाती है और सूर्य की धूप की लालसा से उस बीज से सहस्रगुना अधिक भारी बोझ को हटा देती है। वही प्रवृत्ति अंकुर को ऊपर ले आती है और जड़ को नीचे ले जाती है। ये दोनों गतियां यद्यपि

एक दूसरी से विपरीत ओर जाती हैं पर ये दोनों गतियां ठीक हैं। यदि हम घायल होते हैं तो यही जीवनवल घाव को चंगा करने लगता है, इसमें वह आश्चर्यजनक पटुता और निपुणता दिखाता है। जब कभी हम अपनी किसी हड्डी को तोड़ देते हैं तो हम या डाक्टर साहब केवल इतना ही करते हैं कि टूटे हुए खंडों को मिला कर उन्हें वैसे ही रख छोड़ते हैं, और यही बड़ा जीवनवल उन टूटे हुये खंडों को जोड़ देता है। अगर हम गिर पड़ें और हमारे पट्ठे या कोई अंग फट जाय तो हम केवल यही करते हैं कि चन्द बातों का ध्यान रखते हैं; और बाकी सब काम यही जीवनबल करता है; और वह शरीर ही से मरम्मत की सामग्री लेकर क्षत को पूरा कर देता है।

सभी डाक्टर लोग जानते हैं, और उनकी विद्या उन्हें बतलाती है कि यदि मनुष्य की शारीरिक दशा अच्छी रहे तो उसका जीवनबल उसे, उसके मार्मिक अवयवों के विनाश को छोड़ कर, शेष सब रोगों से छुड़ा देगा; परन्तु जब शारीरिक दशा बहुत ही हीन हो जायगी तो रोग से छुटकारा पाना बहुत कठिन हो जायगा, क्योंकि ऐसी दशा में जीवनबल की प्रभुता बहुत क्षीण हो जावेगी और उसको बहुत ही विपरीत अवस्था में काम करना पड़ेगा। परन्तु निश्चय रक्खो कि वह तुम्हारे लिये अपनी शक्ति भर वर्त्तमान अवस्था में पूरा कार्य करता है। यदि जीवनबल अपने इच्छानुसार सब कुछ तुम्हारे लिये नहीं कर पाता तौ भी वह निराश हो कर प्रयत्न को नहीं छोड़ता; किन्तु, अवस्था के अनुकूल हो कर

अपनी शक्ति भर काम करने में कुछ उठा नहीं रखता। उसको पूरा अवकाश और मार्ग दीजिये, वह आप को पूरी स्वस्थ दशा में रक्खेगा; अपनी अस्वाभाविक और अविचार की रहन चलन से उसे बांध रक्खोगे तौ भी वह तुम्हें संभालने ही का यत्न करता रहेगा और अन्त तक अपनी शक्ति भर तुम्हारी सेवा करता रहेगा, चाहे तुम कितनी ह कृतघ्नता और मूर्खता करते रहोगे, पर वह अन्त तक तुम्हारे हित के लिये लड़ता रहेगा।

जीवन के प्रत्येक रूपान्तर में अवस्था के अनुकूल होने की प्रवृत्ति सर्वत्र दिखलाई देती है। यदि कोई बीज किसी चट्टान की दरार में पड़ जाता है तो जब वह उगने लगता है तो चट्टान के रूप के अनुकूल ऐंठ पैंठ जाता है, या यदि वह पूरा बलवान हुआ तो चट्टान को भी फाड़ देता है और स्वयं अपने स्वाभाविक रूप में ऊपर निकलता है। वैसे ही मनुष्य की दशा में भी, जब मनुष्य सब प्रकार की आबोहवा और अवस्था में जीने का प्रबन्ध करता है, तब यह जीवनबल भी अपने को अवस्था के अनुकूल बना लेता है; और जहां यह चट्टान को न तोड़ सका, वहां भी अंकुर को टेढ़ा मेढ़ा बना कर जमा ही दिया और उस पौधे को जीता जागता और दृढ़ रक्खा।

जब तक स्वास्थ्य की उचित रीतियों का पालन होता रहता है तब तक कोई शरीरावयव रुग्णावस्था को नहीं पहुँचता। स्वास्थ्य स्वाभाविक दशा का जीवन है, और अस्वस्थता अस्वाभाविक दशा की ज़िन्दगी है। जिन अवस्थाओं

ने मनुष्य को इस स्वस्थ और बलवान "यौवन" तक पहुँचाया, वे अवश्य इसे स्वस्थ और बलवान ही रखतीं। यदि आप अच्छा अवसर देंगे तो यह जीवनबल उत्तम से उत्तम कार्य कर दिखलावेगा; परन्तु यदि आप अधूरा अवसर देंगे तो यह जीवनबल अधूरा ही कार्य करने के योग्य होगा और थोड़ी बहुत रुग्णावस्था उसका प्रतिफल होगी। हम लोग ऐसी सभ्यता में जी रहे हैं जिसने कुछ न कुछ जीवन का अस्वाभाविक तरीका हमारे ऊपर बलात् डाल ही दिया है। हम लोग न स्वाभाविक रीति से भोजन करते, न पानी पीते, न सोते, न सांस लेते और न स्वाभाविक रीति से वस्त्र ही पहनते हैं। हम लोगों ने " वह २ काम कर डाला है जो हमें नहीं करना चाहता था, और उन २ कामों को नहीं किया, जिन्हें हमें करना चाहिये था; और इसलिये हम में "स्वास्थ्य" नहीं है। "

हमने जीवनबल की उपकारिता का वर्णन कर दिया; इसका कारण यह है कि जिन लोगों ने इस पर विचार नहीं किया है वे लोग इस पर प्रायः कुछ भी ध्यान नहीं देते। यह योगशास्त्र के हठयोग का एक अंग है; और योगी लोग अपने जीवन में इस पर बहुत बड़ा ध्यान रखते हैं। वे जानते हैं कि जीवनबल बड़ा भारी मित्र और प्रबल सहायक है; और वे अपने भीतर इसे स्वच्छन्द प्रवाहित होने के लिये इसे पूरा अवकाश देते हैं; और इसकी क्रियाओं में वे यथासाध्य बहुत ही कम बाधा पहुंचाते हैं। वे जानते हैं कि "हमारा जीवनबल हमारी भलाई और स्वास्थ्य के लिये

निरन्तर जगा रहता है" और वे इसका अत्यन्त विश्वास करते हैं।

हठयोग के साधनों की अधिकांश सफलता उन्हीं तरीकों पर अवलम्बित है जिन तरीकों से जीवनबल स्वच्छन्द और विना बाधा के कार्य करता रहे। हठयोग के तरीक़े और अभ्यास इसी अभिप्राय पर उद्दिष्ट हैं। हठयोगी का यही उद्देश रहता है कि जीवनबल के मार्ग को रुकावटों से साफ़ रक्खें और उसके रथ के लिये साफ़ चिकना पथ खुला रक्खें। उसके उपदेशों का पालन कीजिये और आप का भला हो जायगा।

पांचवां अध्याय।

शरीर की रसायनशाला।

इस छोटी किताब का यह उद्देश्य नहीं है कि यह शरीर विद्या की पाठ्य पुस्तक हो; परन्तु जब हम देखते हैं कि बहुत से लोग ऐसे हैं जो भिन्न २ शारीरिक अवयवों की प्रकृति, उनके कार्य और उनके लाभों से कुछ भी जानकारी नहीं रखते; इसलिये शरीर के उन मुख्य २ अवयवों का वर्णन करना, जो भोजन के पचाने, और उसका रस लेने तथा शरीर को पोषण करने का काम करते हैं, मैं अच्छा समझता हूं। ये ही अवयव शरीर की रसायनिक क्रियाओं को करते हैं।

पचाने वाली कल के प्रथम अंग दांतों पर पहले विचार करना चाहिये। प्रकृति ने हमें दांत दिये हैं, जिनसे हम अपने भोजन को काटते हैं और खूब बारीक पीस डालते हैं। इस क्रिया से भोजन इतना बारीक हो जाता है कि वह मुंह की लार और आमाशय के पचाने वाले द्रव रसायनों के साथ घुल जाने के योग्य बन जाता है। इसके पश्चात् वह द्रव रूप में परिवर्तित होता है कि जिससे पोषण करने वाले रस को खींच कर शरीर अपना ले और अपने में मिला ले। यह उसी पुरानी कहानी को बार २ कहना और पिष्टपेषण करना है; परन्तु हमारे पाठकों में से कितने ऐसे हैं जो ऐसा कार्य करते हैं जिससे मालूम होता है कि वे नहीं जानते कि दांत किस

अभिप्राय से दिये गये हैं। वे अपने भोजन को शीघ्रता से निगल जाते हैं, मानो दांत केवल दिखावे के लिये उन्हें दिये गये थे; और वे इस प्रकार की क्रिया करते हैं मानों चिड़ियों की भांति उनके भीतर भी प्रकृति द्वारा पथरी दी गई है कि वे भी उसी तरह इस पथरी द्वारा अपने निगले हुये खाने को पीस डालें। याद रक्खो; मित्रो, कि तुम्हारे दांत तुम्हें मतलब से दिये गये थे और यह विचार कर लो कि यदि प्रकृति की संज्ञा भोजन को निगलने ही की होती तो वह दांतों के स्थान में पथरी दिये होती। आगे चल कर दांतों के समुचित प्रयोग के विषय में हम बहुत कुछ कहेंगे, क्योंकि हठयोग से इसका बहुत आवश्यक सम्बन्ध है, जैसा कि थोड़ी देर में आप को विदित होगा।

अब आगे लार स्रवण करने वाले मांस-खण्डों पर विचार करना चाहिये। ये मांस-खण्ड संख्या में छः हैं, जिनमें से चार तो चहुओं और जीभ के नीचे हैं, और दो गालों में कानों के सामने दोनों बगल में हैं। इनका मुख्य कार्य, जो जाना गया है; यह है कि लार को बनावें और उसे स्रवण करें। जब आवश्यकता पड़ती है तब यही लार मुँह के भीतर की अनेक छोटी छोटी नालियों से बहने लगती है और उस भोजन में मिलती जाती है जो दांतों से कुचला या मसला जाकर बारीक किया गया रहा है। भोजन जितना ही दांतों से कुचला या पीसा जायगा लार उतना ही अच्छी तरह से उसके प्रत्येक अंश में पहुँच कर मिल जायगी और उतना ही अधिक कार्य करेगी। लार भोजन को गीला भी

कर देती है जिससे वह बहुत आसानी से घोंटा जा सके, यह कार्य उसका, उसके अन्य प्रधान कार्यों का केवल अनुयायी है । इसका सर्व प्रधान कार्य, जैसा कि पश्चिमी विज्ञान द्वारा सिखाया जाता है, रसायनिक क्रिया करना है, जिस क्रिया से कि लेईदार खाया हुआ पदार्थ शक्कर में परिवर्तित हो जाता है, और इस प्रकार के पाचन के क्रिया-कलाप में पहली क्रिया हो जाती है ।

यहां बार २ की कही हुई एक और कथा है । आप सब लोग इस लार के विषय में जानते हैं; पर आप लोगों में कितने ऐसे मनुष्य हैं जो इस प्रकार भोजन करते हों कि जिससे प्रकृति को अपनी इच्छा के अनुकूल लार से काम लेने का अवसर मिलता हो । आप तो खाने को मुँह में ज़रा इधर उधर घुमा कर निगल जाते हैं, और प्रकृति की उन तरकीबों ही को विफल कर देते हैं, जिनके लिये उसने इतनी कारवाइयां की थीं और जिनको सम्पादित करने के लिये उसने ऐसी २ बारीक और विचित्र कलों को बनाया था । परन्तु प्रकृति भी अपनी तरकीबों की अवहेलना, लापरवाही और निरादर के कारण तुम पर भी चढ़ दौड़ने का प्रबन्ध कर लेती है । प्रकृति बहुत स्मरण रखती है और तुमसे उस ऋण को अवश्य चुकवाती है ।

हमें यहां पर उस जिह्वा को न भूल जाना चाहिये, जिस बेचारी से क्रोधयुक्त वचन बोलने, चर्चा चवाव और पिशुनता करने, झूठ बोलने, शपथ उठाने और निन्दा करने के नीच काम लिये जाते हैं ।

इस जिह्वा को शरीर के पोषण करने वाले क्रियाकलाप में एक मुख्य काम करना पड़ता है। भोजन करते समय यह अनेक प्रकार की गति कर २ के भोजन को उलटती, पलटती और फेरती रहती है और इसी प्रकार भोजन के घोंटने में भी यह अपनी गति से सहायता पहुँचाती है। इसके अतिरिक्त यह स्वाद की इन्द्रिय है और जो भोजन भीतर पेट में प्रवेश किया चाहता है उस पर भला बुरा का विचार करती है।

आप लोगों ने दांतों, लार स्रवण करने वाले मांस-खण्डों और जिह्वा के स्वाभाविक इस्तेमालों को भुला दिया है; और इसका परिणाम यह हुआ है कि वे बेचारे आपकी पूरी सेवा न कर सके। यदि आप केवल उनका भरोसा करने लगें और समझदारी के साथ भोजन के स्वाभाविक तरीक़े को ग्रहण करें तो आप उन्हें उस भरोसे का प्रतिपालन करते हुये पावेंगे; और वे फिर आपकी पूरी २ सेवा करने लग जायँगे। वे बड़े अच्छे मित्र और सेवक हैं; उन पर विश्वास, भरोसा और उत्तरदायित्व रखने से वे अच्छा से अच्छा काम कर देते हैं।

जब भोजन खूब कुचल पीस कर लार से परिपूर्ण कर दिया जाता है तब वह गले से होकर आमाशय में जाता है। गले का निचला भाग भी एक विशेष प्रकार की गति करता है जिससे भोजन के अंश नीचे चले जाते हैं और यह क्रिया भी निगलने की क्रिया का एक खण्ड है। भोजन के लेईदार भाग के शक्कर में परिवर्तन होने की क्रिया जो लार से मुँह में प्रारम्भ हुई थी वह भोजन के गले में होकर जाते हुये भी

जारी रहती है; परन्तु जब भोजन आमाशय में पहुंच जाता है तब एक दम बन्द हो जाती है। विचार पूर्वक भोजन करने के विषय को अध्ययन करते समय इस बात पर खूब ध्यान देना चाहिये कि यदि भोजन मुँह में जल्दी उलट पुलट कर निगल लिया जायगा तो उसमें लार का असर बहुत ही कम पहुँचा रहेगा, और प्रकृति के आगे काम करने के लिये अयोग्य दशा में रहेगा।

आमाशय नाशपाती की शकल का एक थैला है। इसमें ढाई सेर तक और कहीं २ अधिक भी वस्तु अंट सकती है। भोजन गले में होता हुआ आमाशय के ऊपरी वाम भाग में हृदय के ठीक नीचे प्रवेश करता है। यहां की क्रियाओं के हो जाने पर भोजन आमाशय के निचले दक्षिण भाग से पतली अंतड़ियों में एक ऐसे द्वार से प्रवेश करता है, जो ऐसा अद्भुत बना हुआ है कि आमाशय से चीज़ें तो इसमें आसानी से पहुंच सकती हैं, परन्तु इन पतली अंतड़ियों से ऊपर आमाशय में उनका पुनः चढ़ जाना कभी नहीं हो सकता। यह द्वार अपने कर्त्तव्य पर सदा डटा रहता है और कभी धोखा नहीं देता।

आमाशय एक बड़ी रसायनशाला है, जहां भोजन के साथ रसायनिक क्रियायें होती हैं, जो भोजन को इस योग्य बना देती है कि उसका रस रुधिर रूप में हो सके, जो रुधिर कि सारे शरीर में प्रवाहित हुआ करता है और शरीर के सब अंगों और अवयवों को बनाता, मरम्मत करता, दृढ़ करता और बढ़ाता रहता है।

आमाशय का भीतरी भाग एक लसलसी झिल्ली से आच्छादित रहता है; इस झिल्ली में अनगिनत छोटे २ मुलायम खार से निकले रहते हैं जिन सब का मुंह आमाशय में खुला रहता है; और इन खारों के गिर्द बहुत ही बारीक २ रुधिरवाहिनी नालियों का जाल सा फैला रहता है, जिन नालियों की दीवारें अत्यन्त पतली होती हैं। इसीसे वह आश्चर्यकारी द्रव जिसे आमाशय द्रव कहते हैं स्रवा करता है। यह आमाशय द्रव एक बहुत बलवान अर्क़ है जो भोजन के नाइट्रोजनिक भाग के गलाने का काम करता है। यह उस शक्कर पर भी क्रिया करता है जो लेईदार पदार्थों को लार से मिलने से बनता है, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है यह अर्क़ तीखा होता है और इसमें वह रसायनिक पदार्थ होता है, जिसे पेप्सिन कहते हैं; यही पेप्सिन बड़ा कार्य करता है और भोजन के पचाने में प्रधान काम इसी का होता है।

साधारण स्वाभाविक मनुष्य के स्वस्थ शरीर में आमाशय करीब २ एक गेलन आमाशय द्रव नित्य स्रवता है; और इसे अन्न के पचाने के काम में लाता है। जब अन्न आमाशय में पहुंचता है तो ये छोटे मुलायम खार, जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है, काफ़ी मेक़दार में आमाशय द्रव बहा देते हैं, जो अन्न में खूब मिल जाता है। तब आमाशय एक प्रकार की मंथन क्रिया करने लगता है, जिससे खाया हुआ सना अन्न लुगदी की भांति इधर उधर घूमा करता है; इधर से उधर फेरा जाता है, साना जाता है, मँथा जाता है और गूंधा

जाता है; जिससे वह आमाशय द्रव इस लुगुदी के ज़र्रे ज़र्रे में अच्छी तरह से मिल जाता है। प्रवृत्ति मानस इस आमाशय के संचालन में कुछ ऐसा आश्चर्यजनक काम करता है कि खूब तेल दी हुई कल की भांति आमाशय को चलाता रहता है।

यदि आमाशय को अच्छी तरह से तैयार किया हुआ, भली भांति दांतों से पीसा हुआ, और काफ़ी तौर से लार मिलाया हुआ भोजन मिलता है तो आमाशय रूपी कल बहुत अच्छा काम कर दिखलाती है। परन्तु, यदि भोजन आमाशय के योग्य तैय्यार नहीं किया गया रहता है, जैसा कि अक्सर हुआ करता है, और यदि वह अधूरा कुचला रहता है, अथवा जल्दी जल्दी निगला हुआ रहता है, या यदि आमाशय नाना प्रकार के विचित्र द्रव्यों से ठूंस २ कर भरा हुआ रहता है, तभी बड़ी दिक़्क़त पड़ जाती है। ऐसी दशा में स्वाभाविक पाचन-क्रिया के होने के स्थान में आमाशय अपना कुछ भी काम नहीं कर सकता, जिससे सड़न शुरू हो जाती है; और आमाशय सड़ते गलते पदार्थ का बर्तन—या यों कहिये कि सड़े मांस का बर्तन—बन जाता है। यदि मनुष्य एक बार देख पाते कि उनका आमाशय कैसे सड़े पदार्थ का बर्तन बन गया है तो वे ठीक तरह से खाना खाने की बात से लापरवाही न करते और उसे ध्यान देकर सुनते।

खाने की अस्वाभाविक आदत से उत्पन्न यह सड़न अक्सर जीर्ण या पुरानी हो जाती है, और ऐसी दशाओं में परिणत हो जाती है, जिसे अपच या बदहज़मी कहते हैं या ऐसी ही कोई दूसरी बीमारी खड़ी हो जाती है। यह सड़न

बनी ही रहती है कि दूसरा खाना पहुँच जाता है और पहली सड़न इस खाने में भी सड़न पैदा कर देती है; इस तरह से आमाशय पांस के खमीर का नित्य ही बर्तन बना रहता है। इससे आमाशय की स्वाभाविक क्रिया निर्बल पड़ती जाती है, और इसकी सतह लसलसी, मुलायम, पतली और निर्बल हो जाती है। मुलायम खार सब मुँहबन्द हो जाते हैं, और सारा पाचक यंत्र निर्बल और टूटा फूटा हो जाता है। ऐसी दशा में वही अधपची लुगदी पतली अंतड़ियों में जाती है; सड़न के कारण इसमें एक प्रकार का तेज़ाब उत्पन्न हो जाता है; और परिणाम यह होता है कि सारा शरीर क्रमशः विषाक्त और अपुष्ट हो जाता है।

भोजन की लुगदी आमाशय द्रव से भरपूर हो कर, और खूब अच्छी तरह से आमाशय द्वारा मथी और गूंधी जा कर आमाशय के निचले दाहने द्वार से पतली अँतड़ी में जाती है।

यह पतली अँतड़ी नली की भांति की एक नहर है, जिस की गेंडुरियां ऐसी कारीगरी के साथ एक दूसरी पर पड़ी रहती हैं कि बहुत ही थोड़ी जगह घेरे रहती हैं, यद्यपि लम्बाई में यह अंतड़ी २० से ३० फीट तक लम्बी होती है। इस अँतड़ी की भीतरी दीवार मखमल के भांति के पदार्थ से मढ़ी रहती है; और लम्बाई में बहुत दूर तक उसमें आड़ी २ सिकुड़नें पड़ी रहती हैं, जो सिकुड़नें कि आंख की पलकों की भांति नीचे ऊपर गति किया करती हैं, और अँतड़ी के अर्क में आगे पीछे हिलोरें मारा करती हैं, जिससे भोजन की लुगदी की गति रुका करती है और स्राव तथा रस के खिंचाव के

लिये अधिक सतह मिला करती है। इसके मढ़न की मखमली सूरत अनगिनत छोटे २ उभड़े हुए रेशों के कारण होती है, जो बारीक कालीन की भांति के होते हैं और उन्हें अँतड़ी के रेशे कहते हैं। इनका कार्य आगे चल कर वर्णन किया जायगा।

ज्योंहीं भोजन की लुगदी इस पतली अँतड़ी में पहुँचती है त्योंही इसमें एक विशेष अर्क़ मिलने लगता है, जिसे पित्त कहते हैं; यह अर्क़ उसमें खूब भरपूर घुल जाता है। यह पित्त यकृत में से स्रवता है और एक सुदृढ़ थैली में, जिसे पित्ताशय कहते हैं, एकत्रित रहता है। करीब दो कार्ट पित्त इस पतली अँतड़ी में लुगदी के साथ मिलने में नित्य खर्च होती है। इस पित्त का कार्य, पेंक्रिया के अर्क़ के साथ मिल कर रोगनदार पदार्थों को रस बनाने, और अँतड़ी में लगुदी की सड़न रोकने का है; और यह आमाशय द्रव को भी, जो अब तक अपना काम पूरा कर चुका रहता है, अब निकम्मा बना देती है। पेंक्रिया का अर्क पेंक्रिया अर्थात् उस लम्बे अवयव से निकलता है, जो आमाशय के पीछे रहता है। पेंक्रिया के अर्क का यह काम है कि भोजन के रोगनदार पदार्थों को, पतली अँतड़ी में अन्यान्य पदार्थों के साथ में रस रूप में करके शरीर में खिंच जाने के योग्य पोषण बना देता है। इस काम में पेंक्रिया का एक पाइंट अर्क रोज खर्च होता है।

पतली अँतड़ी की मखमली मढ़न पर के वाल की भांति के लाखों रेशे (जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है) अपनी लगातार हिलोरों वाली गति को कायम रखते हैं। यह गति उस गीली लुगदी के ऊपर काम करती है जो पतली अँतड़ी

में हो कर गमन करती है । वे रेशे लगातार गति किया करते हैं; और लुगुदी में के रस को चाट २ कर और खींच २ कर शरीर में भेजते रहते हैं ।

जिन क्रियाकलापों से भोजन परिवर्तित होकर रुधिर बन जाता है और शरीर के सब अवयवों में भेजा जाता है वे नीचे लिखे जाते हैं:—दांतों से पीसना, मुंह के लार का मिलाना, घोंट जाना, आमाशय और पतली अंतड़ियों की पाचन-क्रियायें, रस का चूसना, शरीर में रस का घुमाना और रुधिर को शरीर का अपना लेना । एक बार हम जल्दी से इन क्रियाओं पर फिर विचार कर जांय कि जिसमें ये भूल न जांय ।

भोजन को चबाना और पीसना दांतों से होता है; ओठ, जीभ और गलफड़े भी इस काम में सहायता करते हैं । इस से भोजन बहुत ही बारीक पिस जाता है जिससे वह लार में घुल जाने के योग्य बन जाता है ।

लार में घुल जाना वह क्रिया है जिससे दांतों से पीसा हुआ भोजन उस लार से मिल कर तन्मय हो जाता है जो लार कि मुँह के लार बहाने वाले अवयवों से बहा करता है । लार भोजन के लेईदार पदार्थों पर काम करता है; और पहले तो उसे डेक्स्ट्रीन (Dexutrine) फिर ग्ल्यूकोस (Glucose) बना देता है, जिससे वह घुल जाता है । लार में एक पदार्थ होता है जिसे पीटेलीन (Pytaline) कहते हैं, यही पीटेलीन रसायनिक क्रिया कर के अपने अनुकूल द्रव्यों में एक प्रकार का उबाल सा ला देता है ।

पाचन-क्रिया आमाशय और पतली अंतड़ियों में होती है; और खाई हुई चीज़ों को ऐसे रूप में परिवर्तित कर देना कि उसका रस शरीर में खींच लेने और शरीर रूप में हो जाने के योग्य हो जाय, यही पाचन-क्रिया है । ज्योंही भोजन आमाशय में पहुंचता है त्योंही पाचन-क्रिया प्रारम्भ हो जाती है; आमाशय से आमाशय द्रव खूब स्रवण करने लगता है, और वह खाई हुई चीजों के साथ मिल कर बहुत अच्छी तरह से मथा जाता है, तब वह खाये हुये मांस के परमाणुओं को पृथक् २ करता है, मांस के परमाणुओं से चर्वी को पृथक् कर देता है और एलब्यूमिनस (Albuminous) द्रव्यों को, जैसे दुर्बल मांस, गेहूं का सत, अंडे की की सफेदी, इन पदार्थों को एलब्यूमाइनोस (Albuminose) बना देता है; और इस रूप में वे शरीर द्वारा चूसे और अपनाये जाने के योग्य हो जाते हैं । आमाशय में जो भोजन का रूप-परिवर्तन होता है वह आमाशय द्रव में के एक मसाला जिसे पेपसिन (Pepsin) कहते हैं उसी के द्वारा होता है। इस के साथ २ आमाशय द्रव की और भी तेजावी चीजें इसे सहायता पहुँचाती हैं। जब तक आमाशय द्वारा पाचन-क्रिया होती रहती है, तब तक भोजन में का द्रव भाग, जो पानी पीया गया है, और जो पाचन-क्रिया में खाये हुये भोजन से अलग किया गया है, दोनों आमाशय के सोखने वाले अङ्गों द्वारा सोख लिये जाते हैं और रुधिर में पहुंचा दिये जाते हैं; और भोजन में के दृढ़ द्रव्य आमाशय की गति के द्वारा और भी अधिक मथे जाते हैं, जैसा कि हम ऊपर कह

आये हैं। आधे घंटे में भोजन के दृढ़ भाग भूरे और लसलसे पदार्थ के रूप में आमाशय से निकलने लगते हैं; इन्हें चाइम (Chyme) कहते हैं। यह पदार्थ भोजन में के शक्कर, नमक, लेई के परिवर्तित रूपान्तरों, चर्बी, मांस के रेशे और एलव्यूमाइनोस (Albuminose) का सम्मिश्रण होता है।

यह चाइम (Chyme) आमाशय से निकल कर पतली अंतड़ी में प्रवेश करता है, जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं; और पैनक्रियेटिक (Pancreatic) तथा अंतड़ी के अर्क और पित्त से मिलता है, और अंतड़ी द्वारा पाचन होने लगता है। भोजन का वह भाग जो अब तक नहीं गला था उसको ये सब अर्क गलाते हैं। पाचन-क्रिया अंतड़ी द्वारा चाइम (Chyme) को तीन पदार्थों में बदल डालती है, जिन्हें (१) पेपटोन (Peptone) जो एलव्यूमाइनस (Albuminous) अंश के पाचन से बनता है; (२) चाइल (Chyle) जो कि रोगन के शर्बत से बनता है; (३) ग्ल्यूकोस (Glucose) जो कि भोजन के लेईदार पदार्थों से बनता है, कहते हैं। ये सब पदार्थ अधिकतर रुधिर में पहुँचते हैं और उसके अंग बन जाते हैं; और शेष अपक्क वस्तुयें पतली अंतड़ी से निकल कर एक किवाड़दार दरवाजे की राह बड़ी अंतड़ी या मलाशय में पहुँचती हैं, जिसका वर्णन हम आगे करेंगे।

चूसना या खिंचाव उस क्रिया को कहते हैं जिससे ऊपर लिखे हुए रस, जो पाचन-क्रिया द्वारा बने हुए रहते हैं, नालियों और अन्य रसाकर्षी मार्गों द्वारा खींचे जाते हैं। पानी और अन्य अर्क, जो आमाशय के पाचन द्वारा खाने की लुगदी

में से छूटते हैं, वे आमाशय के द्वार पर के खून द्वारा खींच लिये जाते हैं और उसी द्वार की रग के द्वारा यकृत में पहुँचा दिये जाते हैं। पतली अंतड़ियों द्वारा जो पेपटोन (Peptone) और ग्ल्यूकोस (Glucose) नामक रस खींचे जाते हैं, वे भी पतली अँतड़ी के बाल की भांति वाले रेशों द्वारा खींचे जाकर द्वार वाली रग में होते हुये यकृत में पहुँचते हैं। यकृत में, होकर, जहाँ इस पर यकृत द्वारा क्रियायें होती हैं, जिनका आगे चल कर यकृत् के विषय में वर्णन होगा, ये रस हृदय में पहुँचते हैं। रोग़नी शर्बत चाइल (Chyle) जो पेपटोन (Peptone) और ग्ल्यूकोस (Glucose) के निकल जाने पर भोजन का शेष अंश रह जाता है वह भी लेक्टिएल (Lacteal) नामक रग द्वारा छाती की नलिका में पहुँचाया जाता है, जहाँ से कि वह भी रुधिर में पहुँचता है। इसका वर्णन आगे रुधिर-संचार के विषय में किया जायगा। रुधिर-संचार के अध्याय में हम इस बात का विवरण देंगे कि रुधिर कैसे पचाये हुए अन्न से पोषण खींच कर शरीर के सब भागों में पहुँचाता है, और कैसे प्रत्येक रेज़ा, ज़र्रा, अवयव और भाग में वह सामग्री पहुँचाता है, जिससे कि इन रेज़े, ज़र्रे, अयववों और भागों की रचना और मरम्मत होती है और शरीर बढ़ता, विकसता और पुष्ट होता है।

यकृत में से पित्त स्रवा करती है जो पतली अंतड़ियों में पहुँचती है, जिसका वर्णन ऊपर कर चुके हैं। यकृत एक और द्रव्य को संचय करता है जिसे ग्लाइकोजन (Glycogen)

कहते हैं; यह उन पचे हुये रसों से बनता है जो द्वार के रगों द्वारा लाये हुये रहते हैं, जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है। यह ग्लाइकोजन (Glycogen) यकृत में संचय होता है और पश्चात् क्रमशः पाचन के बीच २ में, ग्ल्यूकोस (Glucose) अर्थात् ऐसे द्रव्य में परिवर्तित हुआ करता है जो अंगूर की शक्कर की तरह का होता है। पैनक्रियास (Pancreas) में से पैनक्रियेटिक (Pancreatic) अर्क निकलते हैं, जो कि पतली अँतड़ियों में जाकर उन अँतड़ियों द्वारा पाचन-क्रिया को सहायता पहुँचाते हैं, और विशेष करके भोजन के रोगनदार अंश पर काम करते हैं। गुर्दे कमर में स्थापित हैं; ये पतली अँतड़ियों के पीछे रहते हैं। ये संख्या में दो और आकार में सेम के बीज की शकल के होते हैं। ये रुधिर को, उसमें से यूरिया (Urea) नामक विषैले पदार्थ और अन्य फजूल चीजों को निकाल कर, साफ करते हैं। गुर्दों से खारिज किया हुआ अर्क दो नलिकाओं में होकर, जिन्हें यूरेटर्स (Ureters) कहते हैं, मूत्राशय में जाता है। यह मूत्राशय पेट के सब से निचले भाग में होता है और मूत्र का बर्तन है, जो मूत्र कि रद्दी अर्क है, जिसमें शरीर की रद्दियात भरी रहती हैं।

इस विषय के इस भाग के वर्णन को छोड़ने के पहले हम अपने पाठकों का ध्यान इस विषय की ओर आकर्षित किया चाहते हैं कि जब भोजन दांतों से अधूरा पीसा हुआ और लार से अधूरा मिश्रित हुआ आमाशय और पतली अंतड़ियों में पहुँचता है—जब कि दांतों और लार बहाने

वाले अवयवों को पूरा काम करने का अवसर नहीं दिया गया है—तब पाचन में बाधा और रुकावट पहुँचती है; और पचाने वाले अवयवों के ज़िम्मे उनकी शक्ति से बाहर काम हो जाता है; और जो काम उनसे होना चाहिये वह नहीं हो सकता। यह बात वैसी ही है जैसे एक आदमी से कहा जाय कि तुम अपने ज़िम्मे का भी पूरा काम करो और उस काम को भी करो जिसका तुम्हारे काम से पहले ही खतम हो जाना वाजिब था। यह रसोईदार से यह कहना है कि तुम रसोई भी बनाते जाओ और साथ ही साथ आटा भी पीसते जाओ और दाल भी दलते जाओ। अब आमाशय और पतली अँतड़ियों में जो रस खींचने वाले अवयव हैं वे अवश्य किसी न किसी द्रव पदार्थ को खींचेंगे; क्योंकि यही उनका कार्य ही ठहरा। यदि आप उन्हें खींचने के लिये सुन्दर सुपक्व अन्नरस न देंगे तो वे आमाशय और पतली अँतड़ियों में के सड़ते गलते हुये ही पदार्थों को खींचेंगे और उन्हें रुधिर में पहुँचा देंगे। रुधिर इन्हीं दरिद्र पदार्थों को सारे शरीर में, यहाँ तक कि मस्तिष्क में भी, पहुँचा देगा। जब मनुष्य इस प्रकार अपने शरीर में आप ही विष भर रहे हैं तब वे पित्त की अधिकता, सिर दर्द आदि की शिकायतें करें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

छठां अध्याय

जीवनद्रव ।

हम अपने पिछले अध्याय में कह आये हैं कि जिस अन्न को हम लोग खाते हैं वह क्रमशः ऐसे पदार्थों में कैसे परिवर्तित हो जाता है जो कि रुधिर द्वारा खींचे और अपनाये जा सकते हैं; और यह रुधिर शरीर के सब भागों में कैसे पोषण पहुँचाता है, जहाँ शारीरिक मनुष्य के सब अंग बनते, मरम्मत होते और नये किये जाते रहते हैं। इस अध्याय में हम संक्षेप से यह दिखलावेंगे कि रुधिर की ये क्रियायें कैसे होती हैं।

पचे भोजन में का पोषण करने वाला भाग खिंच कर रुधिर हो जाता है। यही रुधिर धमनियों द्वारा शरीर के रेशे रेशे और ज़र्रे ज़र्रे तक पहुँचता है कि जिसमें उसकी रचना और मरम्मत करने की क्रियायें होती रहें। फिर यही रुधिर अन्य नालियों द्वारा लौट भी आता है और अपने साथ शरीर के टूटे फूटे ज़र्रों और अन्य फ़जूल और रद्दी चीज़ों को लेता आता है कि जिसमें रद्दी चीज़ें फेंफड़ों और शरीर के दूसरे साफ़ करने वाले अवयवों द्वारा शरीर से बाहर फेंक दी जावें। इसी रुधिर के प्रवाह को, जो हृदय से बाहर की ओर शरीर के प्रत्येक अँगों तक, और प्रत्येक अँगों से भीतर हृदय की ओर हुआ करता है, रुधिर-संचार कहते हैं।

इस आश्चर्यजनक शारीरिक कल को जो इंजिन चलाता है उसे हृदय कहते हैं। मैं स्वयं हृदय के वर्णन में आप लोगों का समय न लूँगा; किन्तु हृदय कौन सा काम करता है, उस का वर्णन अवश्य करूँगा।

अब उसी स्थान से प्रारम्भ किया जाय जहाँ पिछले अध्याय में हम लोगों ने छोड़ दिया था, अर्थात् उस स्थान से जहाँ अन्न के रस को रुधिर ग्रहण कर और अपना कर हृदय में पहुँचता है, जो हृदय इसे शरीर को पुष्टि पहुँचाने के लिये शरीर में रवाना करता है।

रुधिर धमनियों में होकर प्रस्थान करता है। ये धमनियां सिकुड़ने और फैलने वाली नहरें हुआ करती हैं। इनकी शाखायें प्रशाखायें भी होती हैं। रुधिर बड़ी धमनियों (नहरों) से पतली धमनियों में जाता है; इन में से और अधिक पतली धमनियों में जाता है; इन में से उन बहुत ही बारीक धमनियों में जाता है, जो बाल से भी अधिक पतली हुआ करती हैं। ये बाल से भी पतली धमनियां भी रुधिर-संचार की मार्ग हैं, इनका व्यास $\frac{१}{१०००}$ इंच होता है। ये बहुत ही पतले बाल के सदृश होती हैं। ये धमनियां रेशे रेशे में प्रवेश कर के जाल की भांति फैल जाती हैं, जिससे रुधिर सब अंशों में पहुंच जाता है। इनकी दीवारें बहुत ही पतली हुआ करती हैं; और रुधिर का पोषणकारी भाग इन दीवारों से बह कर रेशे रेशे द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। ये बाल सी पतली धमनियां केवल रुधिर को एक २ रेशे में बहाती ही नहीं, किन्तु, अपनी वापसी यात्रा में, जैसा कि अभी आगे वर्णन

होगा, रुधिर को खींचती भी हैं और उसे शरीर के पोषण के लिये पहुंचाया करती हैं, जैसा कि पतली अँतड़ियों के रेशों से रुधिर को खींच कर ऊपर लाने का वर्णन पहले हो चुका है।

अच्छा अब फिर रुधिरापवाहक (रुधिर को हृदय से दूर पहुंचाने वाली) धमनियों पर विचार कीजिये। ये गुणकारी, लाल शुद्ध रुधिर को, जो स्वास्थ्यदायक पोषण और जीवन से भरपूर रहता है, वहन करती हैं; बड़ी २ नहरों से छोटी नहरों में उसे वितरण करती हैं, फिर उस से भी छोटी नहरों में यहां तक कि अन्त में अत्यन्त बारीक बाल सदृश धमनियों में, रुधिर को प्रवाहित करने लगती हैं जिससे कि प्रत्येक रेशा रुधिर में से पोषण ग्रहण करता है और उसे रचना के काम में लाता है; शरीर के छोटे २ आश्चर्यजनक देहाणु इस कार्य को बड़ी ही साव-धानी से करते हैं। (आगे चल कर इन देहाणुओं के कार्य के विषय में भी कुछ कहा जायगा) रुधिर अपना पोषण-भंडार खर्च कर के फिर हृदय की ओर अपनी वापसी यात्रा करता है और अपने साथ देह के रद्दियात, मृतक देहाणुओं और शरीर के अन्य निष्फल द्रव्यों को बटोरता आता है। यह बाल सदृश बारीक शिरा तन्तुओं से प्रस्थान करता है परन्तु रुधिरापवाहक धमनियों में होकर नहीं लौटता, किन्तु, कैंची की भांति के प्रबन्ध से यह रुधिरोपवाहक (शरीर के सब अंगों से हृदय में रुधिर ले जाने वाली) पतली शिराओं में घुस पड़ता है, और उन में से बड़ी रुधिरोपवाहक शिराओं

में होता हुआ हृदय में पहुंचता है । अब फिर दुबारा रुधिरा-पवाहक धमानियों द्वारा यात्रा कर के फिर शरीर में फैलने के पहले इसके साथ कुछ क्रिया होती है। यह फेफड़ा के स्मशान में पहुँचता है जिससे इसमें की रद्दियात और मैल भस्म कर के फेंक दी जांय। किसी दूसरे अध्याय में हम फेफड़ों की इस क्रिया का वर्णन करेंगे।

और आगे बढ़ने के पेश्तर हम यह बात बतलाये देते हैं कि एक प्रकार का और भी द्रव पदार्थ होता है जो शरीर में प्रवाहित होता रहता है। इसे पंछा (Lymph) कहते हैं और यह बनावट में रुधिर के सदृश होता है। इसमें कुछ तो रुधिर के वे मसाले रहते हैं जो रुधिरवाहक नालियों की बारीक़ दीवारों से बहा करते हैं; और कुछ देह के रद्दी पदार्थ होते हैं, जिन्हें साफ़ करने के बाद पंछा फिर रुधिर के हवाले करता है और फिर वे कार्य में लाये जाने लगते हैं। यह पंछा बहुत ही पतली नहरों में होकर प्रवाहित होता रहता है; ये पतली नहरें इतनी बारीक़ होती हैं कि जब तक इनमें यंत्र द्वारा पारा न भरा जाय, ये आंखों से दिखलाई तक नहीं देतीं। ये नहरें अनेक रुधिरोपवाहक शिराओं में मिल कर उनमें अपना पंछा छोड़ देती हैं, और तब पंछा हृदय की ओर लौटते हुये गंदे रुधिर में मिल जाता है। खाद्यरस (Chyle) भी पतली अंतड़ियों से निकल कर (पिछला पाठ देखो) शरीर के निचले भागों से आते हुये पंछा में मिल जाता है और इस तरह से रुधिर में मिल जाता है; इस रस को छोड़ कर अन्य सब रस, जो पचे हुये भोजन से निकाले

गये होते हैं, द्वार शिरा और यकृत द्वारा यात्रा करते हैं; इसलिये यद्यपि ये भिन्न २ मार्गों से यात्रा करते हैं, परन्तु ये सब प्रवाह करते हुये रुधिर में मिल जाते हैं।

इस प्रकार आप देखेंगे कि रुधिर शरीर का रचने वाला है, जो सीधे २ या रूपान्तरित होकर देह के सब भागों को पोषण और जीवन देता है। यदि रुधिर गुणहीन हुआ अथवा इसका प्रवाह निर्बल हुआ तो देह के किसी न किसी भाग का पोषण अवश्य बाधा में पड़ जायगा और उसका नतीजा रुग्नावस्था होगी। मनुष्य की पूरी तौल का दसवाँ हिस्सा केवल रुधिर होता है। इसका चतुर्थांश के करीब हृदय, फेंफड़ों, बड़ी धमनियों और शिराओं में रहता है; एक चौथाई मांसपेशियों में रहता है; शेष भाग देह के शेष भागों और अवयवों में वितरित रहता है। कुल रुधिर का पाँचवाँ भाग मस्तिष्क के प्रयोग में आता है।

रुधिर के विषय में विचार करने में सर्वदा इस बात को स्मरण रखिये कि रुधिर वैसा ही होगा जैसा खाना और जिस तरह से खाना खा कर आप उसे बनावेंगे। आप उत्तम से उत्तम रुधिर काफ़ी मेकदार में बना सकते हैं यदि आप भोजन को विवेक पूर्वक पसन्द करेंगे और यदि आप वैसा ही भोजन भी करेंगे, जैसा कि आप के लिये प्रकृति का उद्देश था। और इसके विपक्ष में आप बहुत खराब रुधिर और मेक़दार में भी थोड़ा, बना पावेंगे यदि आप अस्वाभाविक स्वादेच्छा को पूरी करेंगे अथवा अच्छे या बुरे किसी भोजन को अनुचित रीति से खायेंगे जिसे "खाना"

कहना ही अन्याय है । रुधिर जीवन है—आप ही उस रुधिर को बनाते हैं—यही इन सब बातों का सारांश है ।

अब आइये फेंफड़ों के स्मशान पर विचार कीजिये और देखिये कि रुधिरोपवाहक शिराओं के उस नीले, गन्दे रुधिर के साथ, जो शरीर के सब भागों से गन्दगी और रद्दियात से लदा हुआ वापस आया है, कौन २ सी क्रियायें होती हैं । पहले स्मशान ही को देखिये ।

सातवाँ अध्याय

देह में का स्मशान।

श्वास लेने के अवयव फेंफड़े हैं और वे नालियाँ भी जो नाक से फेफड़ों तक गई हुई हैं। फेंफड़े संख्या में दो होते हैं और छाती की कोठरी में बीचो बीच की रेखा से एक दाहनी ओर और दूसरा बांई ओर होता है; उन दोनों फेफड़ों के बीच में हृदय, रुधिर की बड़ी बड़ी नालियाँ और हवा जाने की बड़ी बड़ी नालियां रहती हैं। प्रत्येक फेफड़ा अपनी जड़ को छोड़ कर शेष ओर छुटा और स्वतंत्र रहता है; इसकी जड़ में हवा की नालियाँ, रुधिरापवाहक और रुधिरोपवाहक नालियाँ होती हैं जो फेंफड़ों को घोंघा और हृदय से जोड़ती हैं। फेफड़े स्पंज के सदृश और अनेक छिद्र वाले होते हैं; इनके रेशे बहुत ही लचीले अर्थात् सिकुड़ने और फैलने वाले होते हैं। ये बहुत ही बारीक परन्तु मज़बूत थैले में घिरे रहते हैं, जिस थैले की एक दीवार तो फेफड़े में सटी रहती है और दूसरी छाती की भीतरी दीवार में सटी होती है; और इससे एक प्रकार का द्रव पदार्थ स्रवा करता है जिससे श्वास लेने में थैले की दीवारें एक दूसरे पर आसानी से फिसला करती हैं।

श्वास लेने के मार्गों में नासिका के भीतरी मार्ग, फेरिंक्स, लेरिंक्स, घोंघा और घोंघा की निचली शाखाओं की नालियाँ हैं। जब हम श्वास लेते हैं तब हम नासिका द्वारा हवा भीतर

खींचते हैं, जहाँ वह आर्द्र झिल्ली के संयोग से गरम हो जाती है; क्योंकि यह आर्द्र झिल्ली रुधिर से भरपूर रहती है; हवा फेरिंक्स और लेरिंक्स में होती हुई घोंघे में पहुँचती है; यह घोंघा नीचे कई नालियों में विभक्त हो जाता है, जिन्हें घोंघा की शाखा-नलिकायें कहते हैं; ये नलिकायें भी और मिहीन २ अनगिनत नलिकाओं में विभक्त हो जाती हैं, जो फेंफड़ों की छोटी २ उन हवा की कोठरियों में पहुँचती हैं जो फेंफड़ों में करोड़ों होती हैं। एक लेखक ने लिखा है कि यदि फेंफड़ों की हवा वाली कोठरियाँ एक समतल सतह पर फैला दी जावें तो ये चौदह हज़ार वर्ग फीट जगह घेरेंगी।

हवा फेंफड़ों में उस मांसपेशी की चद्दर की क्रिया से खींची जाती है, जो चौड़ी, मजबूत, चिपटी और चद्दर के सदृश मांसपेशी होती है और जो छाती की कोठरी को पेट से पृथक् करती है। इसकी क्रिया वैसे ही आप से आप हुआ करती है जैसे हृदय की होती है, यद्यपि इसे अपनी दृढ़ इच्छा के बल से कुछ २ अपने आधीन कर सकते हैं। जब यह चद्दर फैलती है तब यह छाती की कोठरी और फेंफड़ों के विस्तार को बढ़ा देती है; और इस प्रकार जो रिक्त स्थान बनता है उसके भरने के लिये हवा भीतर प्रवेश करती है। जब यह चद्दर सिकुड़ती है तो छाती और फेंफड़े भी सिकुड़ते हैं और हवा फेंफड़ों से बाहर निकल आती है।

अब फेंफड़ों में हवा के साथ कौन सी क्रिया होती है इसके विचार करने के पहले आइये रुधिर-संचार के विषय में देख जाँय। रुधिर, जैसा कि आप जानते हैं, हृदय द्वारा

संचालित होता है और रुधिरापवाहक धमनियों और बारीक धमनियों में होता हुआ शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँच जाता है और वहाँ जीवट, पुष्टि और शक्ति देता है। फिर मिहीन रुधिरोपाहक शिराओं और मोटी शिराओं में होता हुआ दूसरे मार्ग से हृदय में लौट आता है, जहाँ से कि वह फेंफड़ों में खींचा जाता है।

रुधिर जब हृदय से निकल कर रुधिरापवाहक धमनियों द्वारा प्रस्थान करता है तब वह चमकीला, लाल, गुणविशिष्ट और जीवनदायक पदार्थों और शक्तियों से भरा पूरा रहता है। परन्तु जब यह रुधिरोपवाहक शिराओं द्वारा वापस आता है तब वह गुणहीन, नीला, गदला और देह के रद्दा पदार्थों से भरा आता है। वह जाने के समय तो हिमालय पहाड़ से निकली हुई पानी की स्वच्छ धारा के सदृश रहता है; परन्तु लौटने के समय म्यूनिसिपेलिटी की मोरियों के गंदे पानी सा हो जाता है। यह गंदी धार हृदय की दाहिनी कोठरी (Auricle) में जाती है। जब यह कोठरी भर जाती है तब यह सिकुड़ती है और उसमें का रुधिर दाहिनो ही ओर एक छिद्र द्वारा दूसरी कोठरी (Ventricle) में जाता है; और वहाँ से फेंफड़ों में पहुँचता है, जहाँ वह लाखों बाल के सदृश मिहीन रुधिरवाहिनी नालियों द्वारा फेंफड़े की हवा वाली अनगिनत कोठरियों में पहुँचता है, जिसका ज़िक्र पहले हो चुका है। अब यहाँ पर फेंफड़ों की क्रिया पर ध्यान दीजिये।

रुधिर की गन्दी धार फेंफड़ों की करोड़ों छोटी २ हवा वाली कोठरियों में वितरित हो जाती है। अब श्वास द्वारा

हवा भीतर खींची जाती है और हवा में का आक्सीजन, फेफड़ों की पतली रुधिरवाहिनी नालियों की वारीक़ दीवारों में होकर, जो दीवारें रुधिर रोकने के लिये तो काफ़ी मोटी होती हैं परन्तु आक्सीजन के प्रवेश लिये स्थान दे देती हैं, गन्दे रुधिर के सम्पर्क में आता है। जब आक्सीजन रुधिर के सम्पर्क में आता है तो एक प्रकार की जलन होने लगती है, और रुधिर आक्सीजन को ले लेता है और उस कार्वोनिक एसिड गैस को जो उस रद्दियात और विषैले पदार्थों से बनी होती है, जिन्हें रुधिर शरीर के सब अंगों से लाया था। रुधिर जब इस प्रकार स्वच्छ और आक्सीजन मिश्रित हो जाता है तो फिर गुणविशिष्ट, लाल, चमकीला और जीवन-दायिनी शक्तियों और पदार्थों से भरपूर होकर हृदय में पहुँ-चाया जाता है। पहले यह हृदय की बाईं कोठरी (Auricle)-में जाता है, वहाँ से दूसरी बाईं कोठरी (Ventricle) में भेजा जाता है, जहाँ से प्रेरित होकर वह फिर रुधिराप-वाहिनी धमनियों द्वारा जीवनदान देने के लिये देह के प्रत्येक भागों में भेजा जाता है। यह अनुमान किया गया है कि २४ घंटे के दिन में ३५००० पाइंट रुधिर फेंफड़ों की बाल सी पतली नालियों में होकर गुज़रता है और सब रुधिराणु एक ही कतार में होकर गुज़रते हैं जिससे अपने दोनों बगलों की ओर के आक्सीजन से सम्पर्क करते जाते हैं। जब कोई मनुष्य इन ऊपर लिखे हुये क्रिया-कलापों की बारीकियों पर सविस्तर विचार करता है तो उसे प्रकृति की अनन्त सावधानी और चतुराई पर आश्चर्य और प्रशंसा में मग्न हो जाना पड़ता है।

यह बात देखने में आवेगी कि यदि पूरे परिमाण में स्वच्छ हवा फेंफड़ों में न जायगी तो रुधिरोपवाहक शिराओं द्वारा लौटे हुये गंदे रुधिर की सफ़ाई न हो सकेगी, और परिणाम यह होगा कि केवल शरीर ही पुष्टि से वञ्चित न रह जायगा, क़िन्तु, वे रद्दियात जिनका नष्ट हो जाना आवश्यक था, अब फिर रुधिर-संचार में जाती हैं और देह में विष फैलाती हैं, जिससे मृत्यु होती है। गंदी हवा भी ऐसी ही बुराई उत्पन्न करती है पर किञ्चित थोड़ी मात्रा में। यह बात भी देखने में आवेगी कि यदि कोई मनुष्य पूरे परिमाण में स्वच्छ हवा को भीतर न खींचेगा तो रुधिर का कार्य मुनासिब तौर पर न हो सकेगा, और परिणाम यह होगा कि शरीर बहुत कम पुष्ट होगा और रोग पैदा हो जायगा अथवा अस्वास्थ्य की दशा अनुभव होने लगेगी। जो मनुष्य उचित श्वास नहीं लेता उसका रुधिर अवश्य नीलापन लिये हुये मैले रंग का होता है और उसमें स्वच्छ रुधिर की गुणविशिष्ट लालिमा नहीं पाई जाती। यह प्रायः शरीर को बदरंग कर देने से अपने को प्रगट करता है। उचित श्वास लेने का फल अच्छा रुधिर-संचार है और अच्छे रुधिर-संचार का चिन्ह शरीर का अच्छा रंग होना है।

थोड़े ही ध्यान देने से उचित सांस लेने की प्रधानता समझ में आ जावेगी। यदि फेंफड़ों की शुद्ध करनेवाली क्रिया से रुधिर साफ़ न किया जायगा तो वह अस्वाभाविक दशा में धमनियों में जायगा; न तो यह अच्छी तरह से साफ़ ही होगा और न इसकी वे ही गंदगियां दूर की जा सकेंगी जिन

ओं इसने वापसी यात्रा में शरीर से लिया था। ये गंदगियां जब फिर देह में जावेंगी तो किसी न किसी बीमारी की सूरत में प्रगट होंगी; या तो किसी रुधिर-रोग के रूप में अथवा नहीं तो ऐसे रोग के रूप में प्रगट होंगी जो किसी अल्पपुष्ट इन्द्रिय, अवयव या रेशे की निर्बल क्रिया से हुआ करते हैं।

रुधिर जब फेंफड़ों की काफ़ी हवा से सम्पर्क रख लेता है तब उसकी केवल गंदगियां ही नहीं दूर हो जातीं, और विषैली कारबोनिक एसिड गैस ही नहीं पृथक् हो जाती, किन्तु, वह हवा में से कुछ आक्सीजन भी ग्रहण करके अपने में मिला लेता है और शरीर के उन सब अंगों में पहुँचा देता है, जहाँ उसकी आवश्यकता होती है जिससे कि प्रकृति अपना पूरा काम उचित रीति से कर सके। जब आक्सीजन रुधिर के सम्पर्क में आता है तब वह रुधिर के उस अंश से मिल जाता है जिसे हीमोग्लाबिन (Haemoglobin) कहते हैं और वह प्रत्येक अणुदेह, रेशा, मांसपेशी और अवयव के पास पहुँचाया जाता है, जिन्हें वह बलिष्ट और शक्तिमान् बनाता है और निकम्मे देहाणुओं और रेशों के स्थान पर नये सामान जुटा देता है, जिन्हें प्रकृति अपने काम में ले आती है। रुधिरापवाहिनी धमनी के शुद्ध रुधिर में २५ प्रति सैकड़ा स्वतन्त्र आक्सीजन रहता है।

आक्सीजन के द्वारा केवल प्रत्येक अंग जीवटदार ही नहीं बनाया जाता, किन्तु, पाचन-क्रिया भी वस्तुतः भोजन के समुचित रीति से आक्सीजन मिश्रित होने पर अवलम्बित है; और यह मिश्रण तभी होता है जब रुधिर में का आक्सीजन

भोजन के सम्पर्क में आता है और एक प्रकार की जलन उत्पन्न करता है, जिसे जठराग्नि कहते हैं। इसलिये यह आवश्यक हुआ कि फेंफड़ों द्वारा आक्सीजन की पूरी मात्रा ग्रहण की जावे। यही कारण है कि जहाँ फेंफड़े निर्बल होते हैं वहाँ अपच का रोग भी साथ ही साथ अवश्य रहता है। इस कथन की पूरी महिमा समझने के लिये आवश्यक है कि यह बात स्मरण रहे कि सारा शरीर पचे और अपनाये हुए भोजन से पोषण पाता है; और अधूरे पाचन और अधूरे रस-ग्रहण का अर्थ-अधूरा पुष्ट शरीर है। फेंफड़ों को भी पोषण के उसी द्वार पर अवलम्बित रहना पड़ता है; और यदि अधूरी सांस के कारण रस-ग्रहण भी अधूरा हुआ, जैसा कि सर्वदा हुआ करता है, और फेंफड़े कमज़ोर हो गये, तो वे अपना कार्य करने के लिये और भी अधिक अयोग्य हो जाते हैं तथा शरीर और भी अधिक निर्बल हो जाता है। भोजन और पान के प्रत्येक कण को आक्सीजन से मिश्रित हो जाना चाहिये और तभी उनसे उचित पोषण मिल सकेगा और तभी देह की रद्दियात ऐसी अवस्था में आ जायँगी कि देह के बाहर निकाल फेंकी जावें। काफी आक्सीजन के अभाव का अर्थ पोषण का अभाव, शुद्धता का अभाव और स्वास्थ्य का अभाव है। सच है "श्वास ही जीवन है"।

रद्दियात के परिवर्त्तन अर्थात् सफ़ाई से एक प्रकार की जलन उत्पन्न होती है, जो गरमी पैदा करती है और शरीर के ताप को समभाव में रखती है। अच्छी श्वास लेने वाले ज़ुकाम में नहीं फँसते, और उनके शरीर में अच्छा गरम

रुधिर पुष्कल रहता है जिसकी वजह से वे बाहरी मौसिम के परिवर्त्तन को पूरा २ सहन कर लेते हैं।

ऊपर लिखे हुए क्रिया-कलापों के अतिरिक्त श्वास-क्रिया से भीतरी अवयवों और मांसपेशियों को कसरत करनी पड़ जाती है, जिस पर पश्चिमी विद्वानों का ध्यान ही नहीं गया, परन्तु योगी लोग उसे खूब समझते हैं।

अधूरी या छिछली सांस में फेंफड़ों की कोठरियों का एक अंशमात्र काम में लाया जाता है, और फेंफड़ों की अधिकांश शक्ति नष्ट हो जाती है; और आक्सीजन की जितनी ही कमी हुआ करती है, शरीर की उतनी ही हानि होती है। नीच जन्तु अपनी स्वाभाविक दशा में सही सांस लेते हैं; और आदि काल के मनुष्य भी वैसा ही करते थे। सभ्य मनुष्यों ने जीवन के अस्वाभाविक तरीके को जो ग्रहण किया—सभ्यता के पीछे २ शैतान बुलाया—तो हमारी श्वास लेने की स्वाभाविक रीति हम से छूट गई जिससे मानव जाति की असीम हानि हो गई। मनुष्य की शारीरिक मुक्ति तो तभी होगी जब यह फिर प्रकृति के मार्ग पर लौटेगा।

आठवाँ अध्याय।

पोषण।

मानव शरीर में लगातार परिवर्त्तन हो रहा है। हड्डियों के परमाणु, रेशे, मांस, मांसपेशी, रोग़न और द्रव द्रव्य लगातार रद्दी होते जाते हैं, और शरीर से निकाले जाया करते हैं, और शरीर की अद्भुत रसायनशाला में नये २ परमाणु लगातार रचे जाते हैं और तब रद्दी और फेंके हुए परमाणुओं की जगह पूरी करने के लिये भेजे जाते हैं।

आइये ज़रा मनुष्य-शरीर की कारीगरी पर पौधों की समता में गौर कर लें-और सचमुच यह शरीर वस्तुतः पौधों के जीवन से बहुत कुछ मिलता है। पौधों को बीज से अंकुर होने में, और फिर अंकुर से पौधा, उसके फूल, बीज और फल होने में किन २ वस्तुओं की आवश्यकता होती है? उत्तर बहुत सरल है-स्वच्छ वायु, सूर्य का प्रकाश, पानी और पोषणकारी भूमि-ये ही वस्तुयें सब की सब उसके लिये आवश्यक हैं कि वह स्वस्थ यौवन को प्राप्त हो। मनुष्य के पार्थिव शरीर के लिये भी ठीक इन्हीं वस्तुओं की ज़रूरत होती है, जिससे वह स्वस्थ, सुदृढ़, बलवान और ठीक रहे। आवश्यक वस्तुओं को खूब याद रखिये-स्वच्छ वायु, सूर्य का प्रकाश, पानी और भोजन। हम वायु, सूर्य के प्रकाश और जल के विषय में अन्य अध्यायों में विचार करेंगे, और यहाँ पहले पोषणकारी भोजन के विषय में विचार किया जायगा।

ठीक उसी भाँति जैसे पौधा धीरे २ लगातार बढ़ता है, वैसे ही इस रद्दी के फेंकने और उसके स्थान पर नये द्रव्यों को स्थापित करने का महत् कार्य भी लगातार दिन रात हुआ करता है। हम लोग इस महत् कार्य की खबर नहीं रखते क्योंकि यह मानव प्रकृति के अचेतन भाग से सम्बन्ध रखता है, यह मनुष्य के प्रवृत्ति मानस के कार्य का एक अंग है।

सम्पूर्ण शरीर और उसके कुल भाग स्वास्थ्य, बल और जीवट के लिये द्रव्यों के इसी लगातार नूतनीकरण पर भरोसा करते हैं। यदि यह नूतनीकरण बन्द हो जाय तो उसका परिणाम शरीर की गलन और मृत्यु होगा। रद्दी और परित्यक्त पदार्थों के स्थान में नये पदार्थों का स्थापित करना देह की अनिवार्य आवश्यकता है; और इसलिये स्वस्थ मनुष्य का ख्याल करते समय यह पहली ही बात विचारने की है।

हठयोग शास्त्र में भोजन के इस विषय का मूलमंत्र **पोषण** है हम ने इस शब्द को बड़े अक्षरों में छाप दिया है कि यह आप के चित्त में अङ्कित हो जाय। हम चाहते हैं कि हमारे शिष्यों को भोजन के ख्याल के साथ २ पोषण का ख्याल बना रहे।

योगी के लिये भोजन का अर्थ ऐसी चीज नहीं है जो रसना के स्वाद को उत्तेजित करे, किन्तु प्रथम पोषण, द्वितीय पोषण और तृतीय पोषण ही है। आदि से अन्त तक सर्वदा पोषण ही है।

बहुत से लोग आदर्श योगी को दुबला, पतला, अध-

भुखा और निर्मांस जन्तु समझते हैं, जो भोजन पर इतना कम ध्यान देता है कि कई दिन तक बिना खाये रह जाता है—जो समझता है कि "अध्यात्मिक प्रकृति" के लिये भोजन अत्यन्त "अधिभौतिक" पदार्थ है। इस से बढ़ कर सचाई से दूर दूसरी बात नहीं हो सकती। योगी लोग, विशेष कर के वे जो हठयोग के पक्के साधक हैं, पोषण को शरीर के लिये अपना प्रथम कर्त्तव्य समझते हैं और अपने शरीर को समुचित पुष्ट रखने में सर्वदा सावधान रहते हैं और यह देखा करते हैं कि शरीर में नये द्रव्यों की रचना बेकार और परित्यक्त द्रव्यों की समता में होती है कि नहीं।

यह बात बहुत सच है कि योगी भद्दा खवक्कड़ नहीं होता और न उसकी वासना लज़ीज और लतीफ़ भोजन की ओर जाती है। इसके विपरीत वह ऐसी मूर्खताओं पर मन ही मन हँसता है और अपने सादे पोषणकारी भोजन ही में जी लगाता है, क्योंकि वह जानता है कि इसी सादे भोजन में उसे वह पोषण मिलेगा जो उन हानिकारक पदार्थों से निर्लिप्त रहेगा, जो पदार्थ उसके उस भोगी भाई के रंगबिरंगे पकवानों में पाये जाते हैं, जो कि भोजन के असली अर्थ से अनभिज्ञ है।

हठयोग की एक कहावत है कि "खाया हुआ पदार्थ नहीं, किन्तु पचा कर अपनाया हुआ पदार्थ पोषण करता है।" इस पुरानी कहावत में दुनियां भर की सच्चाई भरी है; और इसमें वह बात है जिसे स्वास्थ्य विषयक लेखकों ने पोथियों की पोथियों में लिखा है।

हम आगे चल कर आप को योगियों का वह तरीका बत-लावेंगे जिस तरीके से वे थोड़े से थोड़े भोजन से अधिक से अधिक पोषण प्राप्त किया करते हैं। योगियों का तरीका मध्य मार्ग है, मार्ग के परस्पर विरोधी दोनों किनारों से दो भिन्न प्रकार के विचार वाले मनुष्य चलते हैं, अर्थात् एक तो खूब कस कर खाने वाले और दूसरे निराहार व्रत के करने वाले; इन दोनों में से प्रत्येक अपने विचार की महिमा गाता है और अपने विपक्षी के विचारों की निन्दा करता है। इन लोगों के विवाद पर जब योगी अपने सरल स्वभाव से हँस देता है तो वह क्षमा के योग्य है क्योंकि वह देखता है कि एक तो पूरे पोषण के लिये कस कर भोजन करना आवश्यक समझता है; और दूसरा इसका विपक्षी कस कर भोजन करने में मूर्खता देखता है और उसको दूसरा रास्ता नहीं दिखाई देता सिवाय इसके कि बहुत दिन तक व्रत कर २ के अधभूखे रहें, जिससे बहुत से-ऐसे व्रतियों को निर्बलता ने आ घेरा है और किसी किसी को तो अपने जीवट को खो कर मृत्यु के मुख में जाना पड़ गया है।

योगी के लिये उपवासजनित अल्प पोषण और कस कर खाने से अपक्व रस इन दोनों में से किसी प्रकार का भय नहीं रहता—इन प्रश्नों को तो सैकड़ों वर्ष हुए कि वृद्ध योगी गुरुओं ने कभी हल कर दिया और यह मामला इतना पुराना हो गया कि उन वृद्ध योगी गुरुओं का नाम तक भी उनके अनुयायियों को स्मरण नहीं है।

अब कृपा कर के सर्वदा के लिये इस एक बात को गाँठ

दे कर याद कर लीजिये कि हठयोग भूखे रहने के तरीके का पक्षपाती नहीं है; परन्तु इसके विपरीत वह जानता और सिखाता है कि मनुष्य का शरीर कभी भी बिना काफी भोजन खाये और खा कर पचाये, पुष्ट नहीं रह सकता। बहुत से नाज़ुक, निर्बल और सशंक मनुष्य इसी कारण कम जीवट के और रुग्नावस्था में होते हैं कि वे काफ़ी पोषण नहीं प्राप्त करते ।

इस बात को भी याद रखिये कि हठयोग इस विचार को भी हास्यजनक जान कर अस्वीकार करता है कि खूब कस कर के भोजन करने से पोषण प्राप्त होता है; और स्वाद-लोलुपों की दशा पर आश्चर्य और रहम करता है; और स्वाद-लोलुपता में केवल नीच पशुता का आभास देखता है जो पूर्ण विकसित मनुष्यत्व से बहुत ही विपरीत है ।

योगी की दृष्टि में समझदार मनुष्य जीने के लिये खाता है—न कि खाने के लिये जीता है ।

योगी बहुत खाने वाला नहीं होता, किन्तु, बड़ा ही स्वादु-भोजी होता है, क्योंकि सादा से सादा खाना खाते हुए भी, उसने अपनी आस्वादन शक्ति को इतना जगा और उत्साहित कर लिया है कि सच्ची भूख में इन्हीं सादे खानों में स्वाद मिलता है जो कि उन लोगों को कभी भी नसीब नहीं होता जो पाक-शाला के बहुमूल्य तरीकों द्वारा स्वाद की तलाश में रहा करते हैं। योगी का प्रधान उद्देश है कि पूर्ण पोषण के निमित्त भोजन करना चाहिये तौ भी वह अपने भोजन से ऐसा स्वाद

और आनन्द प्राप्त करता है जो उसके सारे भोजन से घृणा करने वाले भोगी भाई को मालूम ही नहीं हो सकता।

अगले अध्याय में हम भूख और भोजनातुरता का विषय उठावेंगे—ये दोनों भौतिक शरीर के अत्यन्त भिन्न २ गुण हैं, यद्यपि बहुत से मनुष्यों को दोनों एक ही बात प्रतीत होती है।

नवाँ अध्याय।

भूख और भोजनातुरता।

जैसा कि इसके पूर्व वाले अध्याय के अन्त में हमने कहा है, भूख और भोजनातुरता दोनों परस्पर बिलकुल एक दूसरे से भिन्न गुण शरीर के हैं। भूख भोजन की स्वाभाविक माँग है—भोजनातुरता अस्वाभाविक लोलुपता है। भूख स्वस्थ बच्चे के कपोलों पर गुलाबी रंग की लालिमा की भाँति है—भोजनातुरता शौकीन औरत के रँगे हुए लाल चेहरे की तरह है। तथापि बहुत से मनुष्य ऐसा समझते हैं कि दोनों का अर्थ एक ही है। अब देखना चाहिये कि दोनों में अन्तर क्या है।

एक साधारण मनुष्य को, जो युवावस्था को पहुँच गया है, भूख और भोजनातुरता के भिन्न २ अनुभवों और लक्षणों को समझा देना बड़ी कठिन बात है; क्योंकि उस उमर के अधिकतर मनुष्य अपनी स्वाभाविक भूख की प्रवृत्ति को इस कदर भोजनातुरता से परिवर्तित कर देते हैं कि उन्होंने बहुत बरसों से असली भूख के लक्षणों का अनुभव ही नहीं किया है और भूल गये हैं कि भूख लगने पर कैसा मालूम देता है। और किसी अनुभव का समझाना बड़ी ही मुशकिल बात है जब तक श्रोता के मन में उस अनुभव का अथवा वैसे ही अन्य अनुभव का स्मरण न दिला दिया जाय, जिसको कि उसने कभी पिछले समय में भोग लिया है। हम

किसी आवाज़ का वर्णन साधारण श्रवण वाले मनुष्य से ऐसी आवाज़ों की उपमा देकर कर सकते हैं, जिनको उसने कभी सुना है-परन्तु जो मनुष्य जन्म ही से बहरा है उसको आवाज़ का अर्थ समझाना कितना कठिन है, आप ही कल्पना कर लीजिये; अथवा जन्मान्ध मनुष्य को रङ्ग का अर्थ बतलाना वा ऐसे मनुष्य को जो जन्म से घ्राणशक्ति से हीन है उसे सुगन्ध को समझाना कितनी कठिन बात है।

ऐसे मनुष्य को, जो भोजनातुरता की ग़ुलामी से बाहर है, भूख और भोजनातुरता के भिन्न २ लक्षण प्रतीत होते हैं और दोनों का भेद आसानी से समझ में आ जाता है; और ऐसे मनुष्य का मन दोनों शब्दों के भावों को ठीक २ ग्रहण कर लेता है। परन्तु साधारण सभ्य मनुष्य को भूख ही भोजनातुरता का मूल; और भोजनातुरता भूख का परिणाम प्रतीत होती है। दोनों शब्दों का दुष्प्रयोग किया जाता है। हमको साधारण और सुपरिचित उदाहरणों द्वारा इस बात को समझाना पड़ेगा।

पहले प्यास को लीजिये। सब लोग अच्छी स्वाभाविक प्यास के अनुभव को जानते हैं जिसमें ठंढे पानी की भीतरी मांग होती है। इसका अनुभव मुख और गले में होता है और इसकी तृप्ति उस पदार्थ से होती है जो प्रकृति का उद्देश है-ठंढा पानी। अब यही स्वाभाविक प्यास तो स्वाभाविक भूख से तुलना रखती है।

यह स्वाभाविक प्यास उस पानातुरता से कितनी भिन्न होती है जिस आतुरता के वश में होकर मनुष्य मीठे, ज़ायक़े-

दार सोडावाटर, मलाई का बर्फ और सोडा, जिंजर, मदिरा और भाँति २ के शर्बतों को तलाश करता है। और इसी प्रकार स्वाभाविक प्यास उस आतुरता से कितनी भिन्न होती है जिसे शराबी मनुष्य बियर, ब्रांडी आदि के लिये अनुभव करता है। अब कुछ समझ में आने लगा कि हमारा क्या मतलब है ?

हम लोगों को ऐसा कहते हुए सुनते हैं कि एक ग्लास सोडावाटर की कैसी प्यास लगी है; दूसरे कहते हैं कि थोड़ी शराब की प्यास लगी है। अब यदि ये मनुष्य सचमुच प्यासे होते, या दूसरे शब्दों में, यदि सचमुच प्रकृति की मांग द्रव पदार्थ की होती, तो पहले ये लोग स्वच्छ ठंढा पानी ही तलाश करते और यही पानी उनकी प्यास को पूरा २ बुझा देता। परन्तु नहीं, पानी सोडावाटर अथवा व्हिस्की की प्यास को कभी नहीं बुझा सकता। क्यों ? क्योंकि यह पानातुरता की चाहना है जो स्वाभाविक प्यास नहीं है; परन्तु इसके विपरीत अस्वाभाविक पानातुरता है—व्यतिक्रान्त चाहना है। आतुरता पैदा कर ली गई है—आदत डाल दी गई है—और वह अपनी प्रभुता दिखला रही है। आप ख्याल करेंगे कि इन आतुरताओं के मुरीद भी कभी २ सच्ची प्यास का अनुभव करते हैं और ऐसे समय में केवल पानी ही माँगते हैं और आतुरता के भोग का ख्याल भी नहीं करते। जरा ख्याल तो कीजिये कि यही बात क्या आप के साथ भी नहीं है ? यह स्वादपान के निवारण के लिये उपदेशकीय व्याख्यान नहीं है और न तो मद्यप्रचार-निवारण का उपदेश ही है;

परन्तु सच्ची प्यास और हासिल की हुई आदत अर्थात् आतु-रता का भेद दिखलाने के लिये उदाहरण है। आतुरता खाने और पीने की हासिल की हुई आदत है और इससे सच्ची भूख और प्यास से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

मनुष्य तम्बाकू को किसी रूप में भोगने की चाहना अर्थात् आतुरता प्राप्त कर लेता है; वैसे ही शराब, पान, दोहरा, अफीम, चरस, गांजा, चंडू, कोकेन या ऐसे ही द्रव्यों की आदतें डाल लेता है और इनके लिए आतुर हो जाता है। और ऐसी आतुरता या आंदतें जब एक बार अच्छी तरह प्राप्त कर ली जाती हैं तब वह स्वाभाविक भूख और प्यास से भी प्रबल हो जाती हैं। क्योंकि ऐसे मनुष्य भी जाने गये हैं जो भूखों मर गये हैं क्योंकि उन्होंने अपना सब धन शराब आर नशे के लिये खर्च कर दिया था। मनुष्य ने पीने के लिये अपने बच्चों के कपड़े तक बेंच दिया है—अपनी नशा की आतुरता बुझाने के लिये चोरी और कतल तक कर डाला है। परन्तु इस भयंकर आतुरता की चाहना को भूख कहने की कौन कल्पना करेगा? परन्तु हम किसी वस्तु को पेट में डाल लेने की प्रबल चाहना अर्थात् आतुरता को भूख ही कहते और समझते हैं; हालां कि ऐसी बहुत सी चाहनायें वैसी ही आतुरता की चिन्ह हैं जैसे शराब और दूसरे नशे की चाहना होती है।

नीच जन्तु को स्वाभाविक भूख होती है जब तक कि वह सभ्य मनुष्य द्वारा मिठाई वगैरः खिला कर, जिसे झूठे ही भोजन कहते हैं, बहका न दिया जाय। छोटे बच्चे को भी स्वाभाविक ही भूख होती है जब तक वह भी बिगाड़ नहीं

दिया जाता। बच्चों में स्वाभाविक भूख के स्थान पर अस्वाभाविक चाहनायें, माता पिता की सम्पत्ति के अनुसार पैदा की जाती हैं—जितनी ही धन की अधिकता होगी उतनी ही आतुरता की अधिक प्राप्ति होगी। ज्यों ज्यों ऐसा बच्चा बढ़ता जाता है त्यों त्यों असली भूख के अर्थ को भूलता जाता है। सच तो यह है कि मनुष्य भूख को एक दुःखदायी चीज़ समझते हैं और उसे स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं समझते। जब कभी मनुष्य को बाहर पड़ाव डाल २ कर यात्रा करनी पड़ जाती है, तब खुली हवा, शारीरिक परिश्रम और स्वाभाविक जीवन से एक बार फिर असली भूख जाग उठती है, और तब वे छोटे लड़कों की भांति भोजन करते हैं और ऐसे स्वाद के साथ कि जिसे बरसों से वे नहीं जाने थे। उनको सचमुच भूख लग जाती है और वे खाना खाते हैं क्योंकि उनके शरीर में भोजन की मांग हैं; वे केवल आदत ही के कारण नहीं खाना खाते जैसा घर पर हुआ करता है कि पेट में लगातार खाने पर खाना भरा चला जाता है।

हमने हाल ही में धनी लोगों की एक मंडली के विषय में पढ़ा है कि वे आनन्द के लिये समुद्र की यात्रा कर रहे थे कि दुर्घटना वश असहाय स्थान में पड़ गये। विवश होकर उन्हें दस दिन तक बहुत ही सूक्ष्म भोजन से गुज़र करनी पड़ी। जब ये लोग बचाये गये तब वे स्वास्थ्य के रूप नज़र आते थे—गुलाबी रंग, चमकीली आँखें, और सब से बढ़ कर यह बात कि वे स्वाभाविक अच्छी भूख के बहुमूल्य पदार्थ को पा गये थे। उस मंडली के कुछ लोग बरसों से बदहज़मी

के रोग में मुबतला थे; परन्तु इन दस दिनों के अनुभव ने, जिसमें भोजन बहुत ही कम और बड़े परिश्रम से मिला, लोगों को बदहज़मी और अन्य रोगों से मुक्त कर दिया। उनको उचित रीति से पोषण करने के लिये तो काफ़ी मिल गया और देह में जो रद्दियात जमा हो गये थे और जिनसे शरीर विपाक्त हो रहा था वे पदार्थ निकल गये। अब वे बहुत दिन तक नीरोग रहें वा न रहें, यह बात उन्हीं के कर्मों पर अवलम्बित थी कि चाहें वे भूख का अनुसरण करें चाहे भोजनातुरता का।

स्वाभाविक भूख—स्वाभाविक प्यास की भांति—मुहँ और गले की नाड़ियों के द्वारा अपने को प्रगट करती है। जब मनुष्य भूखा होता है, तब भोजन का ख्याल वा नाम उसके मुहँ, गले और लार पैदा करने वाले अवयवों में एक विशेष सम्वेदना उत्पन्न करता है। उन भागों की नाड़ियों से एक विचित्र प्रकार की सम्वेदना प्रगट होती है, लार बह आती है, और वहाँ के सारे अवयव कार्य में लगने की उत्सुकता प्रगट करने लगते हैं। आमाशय कोई भी संकेत नहीं करता और ऐसे मौक़ों पर प्रगट भी नहीं होता। मनुष्य को मालूम होता है कि अच्छे पुष्टिदायक भोजन का स्वाद उसे सुखदायक होगा। थकावट, खालीपन, क्षीणता, भोजनाभाव आदि की वेदना आमाशय में नहीं होती। ये लक्षण तो भोजनातुरता की आदत के लक्षण हैं, जो हठ कर रहे हैं कि आदत जारी रक्खी जावे। क्या आपने कभी ख्याल किया है कि शराब की आदत भी ऐसे ही लक्षणों को प्रगट करती है। प्रबल चाहना और अभाव के लक्षण भोजनातुरता और पानातुरता

दोनों अस्वाभाविक बातों में प्रगट होते हैं। जो मनुष्य हुक्का पीना चाहता है वा तम्बाकू खाया चाहता है उसको भी इसी प्रकार की वेदनायें होती हैं।

मनुष्यों को प्राय: आश्चर्य होता है कि अब वैसा भोजन क्यों नहीं मिलता जैसा कि लड़कपन में "मा पकाया करती थी"। क्या आप जानते हैं कि वैसा भोजन क्यों नहीं मिलता? केवल इसी कारण से कि उस मनुष्य ने अपने शरीर में भूख के स्थान पर भोजनातुरता को जगह दे दिया है, जिससे कि पिछले सादे भोजन का स्वाद अब असम्भव हो गया है। यदि मनुष्य फिर भी अपनी स्वाभाविक रहन द्वारा भूख को उत्तेजित कर दे तो उसे फिर भी बचपन के भोजन का लाभ मिलने लगे—तब उसको सभी रसोइयां वैसे ही मालूम होने लगेंगे जैसी "माता" थी, क्योंकि वह फिर नवयुवक हो जावेगा।

आप को शायद आश्चर्य होगा कि इन सब बातों से हठयोग से क्या सम्बन्ध है। सम्बन्ध यह है: योगी ने भोजनातुरता को जीत लिया है; और उसके स्थान पर फिर भूख को पुन: स्थापित किया है। उसको प्रत्येक ग्रास में सुख मिलता है; यहाँ तक कि सूखी रोटी का टुकड़ा भी उसके लिये पोषण और सुख दोनों का देने वाला है। वह उसे इस भाँति खाता है कि आप को मालूम भी नहीं है, और जिसका वर्णन आगे चल कर किया जायगा। इसलिये योगी भूखा निराहारी व्रती नहीं रहता; वह खूब खाये, ठीक पुष्ट, भोजन का सुख उठाने वाला होता है; क्योंकि उसके आधीन सब चटनियों से स्वादिष्ट चटनी भूख है।

दसवाँ अध्याय।

भोजन से प्राण प्राप्त करने के विषय में योगी का विचार और अभ्यास।

बहुत से कार्यों को एक में मिलाने और आवश्यक कर्त्तव्यों को सुखकर बनाने (जिससे वह कार्य करने योग्य हो जायँ) की प्रकृति की चातुरी अनेक उदाहरणों में देखने में आती है। इस अध्याय में इस प्रकार का एक बहुत ही जाज्वल्यमान उदाहरण प्रकाशित किया जायगा। हम दिखलावेंगे कि वह कैसे अनेक बातें एक ही साथ पूरा करती है और कैसे वह शारीरिक संगठन के अधिकतम आवश्यक कर्त्तव्यों को सुखकर भी बना देती है।

भोजन से प्राण प्राप्त करने के विषय में जो योगियों के ख्याल हैं उन्हीं के विचार से प्रारम्भ कीजिये। योगियों का यह ख्याल है कि मनुष्य और नीच जन्तुओं के भोजन में प्राण का एक ऐसा रूप रहता है, जो मनुष्य के बल और शक्ति को कायम रखने के लिये नितान्त आवश्यक है, और प्राण का यह रूप मुख, जिह्वा और दाँतों की नाड़ियों द्वारा ग्रहण किया जाता है। कूँचने वा दाँतों से पीसने की क्रिया, जिससे भोजन के टुकड़े मिहीन २ कणों में पिस जाते हैं, इस प्राण को पृथक् कर देती है और प्राण के इतने परमाणुओं को जिह्वा, मुख और दाँतों के सम्मुख उपस्थित कर देती है

जितना सम्भव हो सकता है। भोजन के प्रत्येक परमाणु में भोजनप्राण या अन्न की शक्ति के अनेकों प्राणाणु होते हैं, जो प्राणाणु कि दाँतों से कूँचने की पिसावट की क्रिया द्वारा, और लार में के कतिपय द्रव्यों की रसायनिक क्रिया द्वारा पृथक् किये जाते हैं; इनके अस्तित्त्व का ज्ञान आधुनिक वैज्ञानिकों को अभी नहीं है, और न ये आज कल के रसायन शास्त्र की परीक्षाओं द्वारा प्रगटित किये जा सकते, यद्यपि भविष्यत् के खोजी लोग इनके विषय में वैज्ञानिक प्रमाण दे देवेंगे। जब यह भोजनप्राण एक बार भोजन में से स्वतन्त्र कर दिया जाता है तब यह जिह्वा, मुख और दाँतों की नाड़ियों के पास दौड़ जाता है, और माँस और हड्डियों में हो कर बहुत शीघ्रता से नाड़ी-जाल के अनेक केन्द्रों अर्थात् चक्रों में पहुँचता है, जहाँ से कि वह शरीर के प्रत्येक भागों में पहुँचाया जाता है और देहाणुओं को शक्ति और जीवट प्रदान करता है। यह योगी के कल्प की मोटी २ बातें हैं; इनका सविस्तर वर्णन हम आगे चल कर करेंगे।

शिष्य लोक आश्चर्य करेंगे कि जब हवा में इतना अधिक प्राण भरा हुआ है तब भोजन में से प्राण खींचने की क्या आवश्यकता है, और यह प्रकृति के विषय में समय का व्यर्थ खोना समझा जायगा कि इतना परिश्रम भोजन में से प्राण लेने के लिये किया जाय। परन्तु इसका समाधान यों है। जैसे सब विद्युत् विद्युत् हैं वैसे ही सब प्राण प्राण हैं—परन्तु जैसे विद्युत् की धार के अनेक रूप होते हैं, और मनुष्य के शरीर पर एक दूसरे से बहुत ही भिन्न असर डालते हैं, वैसे

ही प्राण के रूपों के भी अनेक प्रकार के विकाश होते हैं; पार्थिव शरीर में प्रत्येक रूप अपना निश्चित कार्य करता है; और भिन्न २ प्रकार के कार्यों के लिये सभी रूप के प्राण की आवश्यकता होती है। हवा में का प्राण एक किस्म का कार्य करता है, पानी में का दूसरे किस्म का और भोजन में से जो प्राण प्राप्त किया जाता है वह तीसरे और किस्म का कार्य सम्पादन करता है। योगियों के कल्प के सविस्तर वर्णन में जाना इस पुस्तक के उद्देश के बाहर की बात होगी, और हमको यहाँ साधारण वर्णन ही पर सन्तोष करना चाहिये। असली विषय हमारे सामने यही उपस्थित है कि भोजन में अन्नप्राण होता है, जिसकी मानव शरीर को आवश्यकता है, और जिसको ऊपर लिखी हुई रीति से ग्रहण कर सकता है, अर्थात् भोजन को दाँतों से खूब अच्छी तरह पीस डालने से और प्राण को दाँतों, जिह्वा और मुख की नाड़ियों द्वारा खींचने से।

अब भोजन को दाँतों से कूँचने और उसमें लार मिलाने की क्रिया से जो प्रकृति दोहरा काम लेती है उस पर विचार करना चाहिये। प्रथम तो प्रकृति का यह उद्देश है कि भोजन का प्रत्येक जर्रा अच्छी तरह से पीस डाला जाय और उसमें लार मिल जाय तब उसे भीतर घोंटा जाय; और इस विषय में कोई भी त्रुटि हुई कि पाचन में बाधा पड़ी। अच्छी तरह से कूँचना ही मनुष्य की स्वाभाविक आदत है, जो कि रहन सहन की कृत्रिम आदतों के तक़ाज़ा से, जो हमारी सभ्यता के कारण उपस्थित हो गये हैं, भुलवा दी गई है। भोजन का

दांतों से पिस जाना इसलिये आवश्यक है कि वह आसानी से घोंटा जा सकें और इसलिये भी कि उसमें लार तथा आमाशय और पतली अंतड़ियों के पाचकद्रव घुल सकें। इससे लार का स्राव बढ़ता है, जो पाचन-क्रिया-कलाप का बहुत जरूरी अंग है। भोजन में लार का घुल जाना पाचन-क्रिया का अंग है; और लार द्वारा कुछ ऐसा आवश्यक कार्य होता है जो अन्य द्रवों से नहीं हो सकता। आयुर्वैदिक लोग बहुत जोर देकर सिखलाते हैं कि अच्छी तरह से कूँचना और खूब लार मिलाना स्वाभाविक पाचन के लिये अनिवार्य है और पाचन-क्रिया के प्रधान अंग हैं। कुछ विशिष्टाचार्य लोग तो इस कूँचने और लार मिलाने की क्रिया को साधारण आयुर्वैदिकों की अपेक्षा और भी अधिक महत्व देते हैं। एक पश्चिमी आचार्य, जिनका नाम मिस्टर होरेस फ्लेचर है, जो अमेरिका निवासी हैं, इस विषय पर बड़ा जोर देकर लिखे हैं और भौतिक शरीर की इस क्रिया की प्रधानता पर आश्चर्य-जनक प्रमाण दिये हैं। असल बात यह है कि मिस्टर फ्लेचर एक खास तरीक़े से कूँचने की सलाह देते हैं, जो योगियों के तरीक़े से बहुत मिलता है; यद्यपि फ्लेचर साहब तो पाचन-क्रिया में उसके अद्भुत प्रभाव के लिहाज़ से उसका उपदेश करते हैं परन्तु योगी लोग वैसी ही क्रिया अन्न से प्राण खींचने के अभिप्राय से करते हैं। सच यों है कि वैसी क्रिया से दोनों मतलब हासिल होते हैं, क्योंकि प्रकृति के उद्देश का यह एक अंग है कि भोजन दांतों से खूब मसल कर खाया जाय। लार के मिलने से पाचन-क्रिया और साथ ही साथ प्राण की प्राप्ति

दोनों एक ही समय में हो जाती हैं—ध्यान देने योग्य परिश्रम की किफायत !

मनुष्य की स्वाभाविक दशा में भोजन का खूब मसल लेना एक सुखकर कार्य था और नीच जन्तुओं तथा मनुष्यों के बच्चों में अब भी है। जानवर अपने चारा को खूब मजे के साथ मसलता है; और मनुष्य का बच्चा भी चूसता है, कुचलता है और सभ्य युवा मनुष्य की अपेक्षा बहुत देर तक भोजन को अपने मुख में रक्खे रहता है; परन्तु पीछे अपने माता पिता का सबक सीखता है और शीघ्रता से भोजन निगल जाने के रिवाज को ग्रहण कर लेता है। मिस्टर फ्लेचर अपनी इस विषय की किताबों में यह बात स्थापित करते हैं कि वह स्वाद है जो इस कूचने और चूसने की क्रिया में सुख देता है। योगियों का यह ख्याल है कि स्वाद भी इस विषय में बहुत कुछ करता है, परन्तु इसके अतिरिक्त भी कोई और चीज़ है; भोजन को मुख में रक्खे रहने, उसे जिह्वा से इधर उधर फेरने, उसे दांतों से खूब मसलने, और धीरे २ उसे घुला कर अचेतित घोंट जाने में एक अनिर्वचनीय तुष्टि का बोध होता है। फ्लेचर साहब कहते हैं कि भोजन को मसलने में जब तक तनिक भी स्वाद का अंश प्रतीत हो तब तक समझना चाहिये कि अभी उसमें पोषण निकालने के लिये शेष है; और हमारा भी विश्वास है कि यह बात बहुत सही है। परन्तु हम लोग ऐसा विश्वास करते हैं कि उसमें, यदि हम अवसर दें तो, ऐसा बोध होता है, जो हमें भोजन को न निगल जाने में एक प्रकार का ऐसा तोष देता है जो

तब तक कायम रहता है जब तक कि भोजन में का कुल या क़रीब २ कुल प्राण नहीं खींच लिया जाता। आप देखेंगे, यदि आप योगी के भोजन के तरीक़े को ग्रहण करेंगे, कि आप का जी मुंह में से भोजन को हटाना न चाहेगा और उसे तुरन्त निगल जाने के स्थान पर आप उसे शनैः २ मुँह में घुलाते रहेंगे और अन्त में आप को यकबएक ज्ञात होगा कि सब ग्रास ग़ायब हो कर भीतर चला गया। यह मज़ा सादे से सादे भोजन में और उस भोजन में जो आपका बहुत ही प्रिय है एक समान प्रतीत होगा।

इस मज़ा का वर्णन करना असम्भव सा है क्योंकि इस मज़ा का अनुभव ही साधारण लोग नहीं कर सके हैं। इसके समझाने में जो कुछ हम कर सकते हैं वह यह है कि इसकी उपमा हम अन्य ऐसी ही सम्वेदना से दें, यद्यपि हमें आशंका है कि इसे आप लोग हास्यजनक समझेंगे। आप उस सम्वेदना को जानते हैं जो ऐसे मनुष्य के पास बैठने से होती है जो बड़ा ओजस्वी है, और जिससे आप शक्ति अर्थात् जीवट ग्रहण कर रहे हैं। कुछ मनुष्यों के देह में इतना अधिक प्राण होता है कि वे लगातार उसका प्रवाह बहाया करते हैं, और उसे दूसरों को दिया करते हैं, जिसका यह परिणाम होता है कि दूसरे उसके सङ्ग बैठने को बहुत पसन्द करते हैं, और उस मनुष्य से पृथक् नहीं हुआ चाहते, क्योंकि उससे पृथक् होने को उनका जी ही नहीं चाहता। यह एक उदाहरण है। दूसरा उदाहरण उस मनुष्य के पास बैठने का है जिस पर आप का प्रेम हो। ऐसी दशा में परस्पर ओजस (प्राणभरित भाव) का

परिवर्त्तन होता है जो बहुत ही आल्हादकर होता है। प्यारे का चुम्बन ओजस से इतना भरा रहता है कि उससे मनुष्य शिर से पैर तक पुलकित हो जाता है। हम जिस बात का वर्णन किया चाहते हैं उसका यह भी अपूर्ण ही उदाहरण है। जो सुख हमें मुनासिब और स्वाभाविक तरीक़े से भोजन करने में मिलता है वह केवल स्वाद ही का सुख नहीं है, किन्तु अधिकतर उस सम्वेदना से उत्पन्न हुआ है जो कि प्राण के ग्रहण करने में होती है, और जो बहुत कुछ ऊपर दिये हुए उदाहरणों से समता रखती है; यद्यपि हम जानते हैं कि जब तक आप शक्ति के दोनों विकाशों की समता का अनुभव स्वयं न कर लेंगे तब तक आप इस उदाहरण पर हँसी करेंगे।

जब आप मिथ्या भोजनातुरता को (जिसे भूल से भूख समझा जाता है) दमन कर लेंगे तब आप बिना छाँटे हुए गेहूँ की रोटी के सूखे टुकड़े को भी खूब मसल २ कर खावेंगे, और उसमें भरे हुए पोषण के कारण उसके क़ेवल स्वाद ही से सन्तोष न पावेंगे, किन्तु, उस सम्वेदना का भी सुख उठावेंगे जिसके विषय में हमने इतना जी लगा कर वर्णन किया है। मिथ्या भोजनातुरता की आदत छोड़ने और प्रकृति के उद्देश पर आने में थोड़े अभ्यास की ज़रूरत है। जो भोजन जितना ही अधिक पुष्टिकारक होगा, वह स्वाभाविक रुचि को उतना ही अधिक तृप्तिकारी होगा; और यह भी एक बात स्मरण करने के योग्य है कि भोजन में जितनी ही पोषण शक्ति होगी उतना ही उसमें अन्नप्राण भी होगा—प्रकृति की चातुरी का एक और उदाहरण।

योगी बहुत धीरे २ अपना भोजन खाता है, प्रत्येक ग्रास को तब तक मसलता रहता है जब तक उसमें उसे तृप्ति मिलती रहती है। अधिकांश दशा में तब तक उसे तृप्ति मिलती रहती है जब तक उसके मुँह में भोजन रहता है, क्योंकि प्रकृति की अचेतित क्रियायें भोजन को शनैः २ घुला कर भीतर छोड़ देती हैं। योगी अपने जबड़ों को धीरे २ घुमाता है, और जिह्वा को अवसर देता है कि वह भोजन को खूब आलिंगन करे, और दाँत प्रेम से भोजन में डूबें; वह जानता है कि हम भोजन से अपने मुँह, जिह्वा और दाँतों की नाड़ियों द्वारा अन्न-प्राण खींच रहे हैं, और हम उत्तेजित और शक्तिमान् हो रहे हैं, और अपने शक्ति-भंडार को भर रहे हैं। साथ ही साथ वह यह भी जानता है कि हम भोजन को समुचित रीति से आमाशय और पतली अँतड़ियों के पाचन योग्य बना रहे हैं और शरीर को उसकी रचना के लिये अच्छी सामग्री दे रहे हैं।

वे लोग जो योगियों के तरीक़े से भोजन करते हैं, अपने भोजन में से साधारण मनुष्यों की अपेक्षा पोषण की अधिकतर मात्रा पावेंगे; क्योंकि प्रत्येक ग्रास से अधिक से अधिक पोषण खींचा जाता है; और उस मनुष्य के मामले में, जो अपने भोजन को अधूरा कुचल कर और अधूरा लार मिश्रित करके निगल जाता है, उसका भोजन बहुत सा बर्बाद जाता है और सड़ती गलती हुई दशा में शरीर से बाहर कर दिया जाता है। योगी के तरीक़े में कोई चीज़ रद्दी बना कर नहीं फेंकी जाती जब तक वह दर असल रद्दी नहीं हो जाती; भोजन

में से पोषण का एक २ ज़र्रा तक खींच लिया जाता है, और अधिकांश अन्नप्राण उसके परमाणुओं ही से खींचा जाता है। भोजन चबाने से ज़र्रे २ हो जाता है और लार का द्रव उसके अंग २ में घुल जाता है, लार के पाचनकारी अंग अपना आवश्यक कार्य करते हैं, और अन्य द्रव (जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है) अन्न पर ऐसा असर डालते हैं कि उसमें का प्राण स्वतन्त्र हो जाता है और नाड़ी-जाल द्वारा खींच लिया जाता है। जबड़ों, जिह्वा और गालों की क्रिया से जो भोजन संचालित होता है, वह नाड़ियों के सम्मुख प्राण के नये २ अणुओं को पेश करता जाता है और नाड़ियां उन्हें खींचती जाती हैं। योगी लोग भोजन को एक अर्से तक मुख में रक्खे रहते हैं, उसे धीरे २ अच्छी तरह से मसला करते हैं, और उसे ऊपर कही हुई अनिच्छापूर्व क्रिया से भीतर जाने का अवसर देते हैं, और प्राण ग्रहण से जो मज़ा मिलता है उसका पूरा सुख उठाते हैं। आप इसकी भावना तब कर सकते हैं जब आपको इस प्रयोग के करने का अवसर मिले और आप कुछ खाने की थोड़ी चीज अपने मुख में ले लें और धीरे २ उसे मसलने लगें और उसे अवसर दें कि वह शनैः २ आपके मुँह में शक्कर की भाँति गल कर भीतर गायब हो जाय। आप यह देख कर आश्चर्यित होंगे कि यह अनिच्छापूर्व घोंटने की क्रिया कैसी खूबी के साथ हुई है—भोजन शनैः २ अपने अन्नप्राण को नाड़ियों को देकर आप गल जाता है और धीरे २ आमाशय में पहुँच जाता है। उदाहरण के लिये रोटी का एक टुकड़ा लीजिये और यह विचार

करके उसे खूब मसलिये कि देखें विना निगले वह कितनी देर तक मुँह में ठहरता है। आप को मालूम हो जायगा कि यदि आप उसे बहुत देर तक मसलते रहेंगे तो आपको उसके निगलने का कष्ट उठाना ही न पड़ेगा; और वह पतली लेई की भाँति होकर ऊपर लिखे हुए तरीके से धीरे २ आप से आप भीतर चला जायगा। और रोटी का वह छोटा टुकड़ा, अपने ही बरावर के दूसरे टुकड़े की अपेक्षा जो मामूली तौर से थोड़ा बहुत कूँच कांच कर निगल लिया गया है, दूना पोषण और तिगुना प्राण देगा।

दूसरा मनोरंजक उदाहरण दूध का लीजिये। दूध द्रव होता है और इसलिये इसके मसलने की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती जैसी कि ठोस भोजन के लिये हुआ करती है। परन्तु बात वही रही (और सावधानी से तजरबा करने पर अच्छी तरह से प्रमाणित हुई) कि यदि एक अधसेरा दूध गले में से होकर पेट में वहा दिया जाय तो वह उस उतने ही दूध की अपेक्षा, जो धीरे २ चूसा गया है और क्षण भर मुँह में रख कर जीभ से चुभलाया गया है, आधे से अधिक पोषण और अन्नप्राण कभी नहीं देता। बच्चा मा के स्तन अथवा बोतल से जब दूध खींचता है तो वह मुँह और जीभ को चुभला २ कर दूध खींचता है और उसके मुँह के भीतर की झिल्लियों से द्रव स्रवा करता है जो दूध में के प्राण को छुटकारा देता जाता है और दूध में मिश्रित होकर रसायनिक क्रिया से उसे पाचन योग्य बनाता जाता है; बच्चा कभी दूध को बिना चुभलाये नहीं निगलता; यद्यपि यह बात ठीक

है कि जब तक बच्चे के मुँह में दाँत नहीं निकलते तब तक उसके मुँह से सच्चा लार नहीं स्रवता।

हम अपने शिष्यों को सलाह देते हैं कि ऊपर लिखी हुई रीति से जाँच करें। जब आपको मौका मिले थोड़ा समय निकाल लीजिये; तब धीरे २ भोजन को मसलते हुए उसे मुख ही में गल जाने का अवसर दीजिये; और भोजन को तुरत निगल न जाइये। यह भोजन का गलने देना तभी सम्भव होगा, जब कुचलते २ वह मलाई की भाँति हो जायगा, और बहुत अच्छी तरह से लार से मिल जायगा; और उसके कण अर्ध पाचित दशा को पहुँच जायँगे और उनमें से अन्न-प्राण कुल निकल जायगा। एक बार एक सेब या कोई फल इसी प्रकार खाने का यत्न कीजिये, उसी थोड़े ही खाने में आपको काफ़ी भोजन खाने की तृप्ति हो जायगी, और आपको कुछ कुछ बढ़ी हुई शक्ति का अनुभव होगा।

हम समझते हैं कि योगी के लिये भोजन में इतना समय लेना और इस प्रकार खाना दूसरी बात है, और कामकाजी गृहस्थ के लिये ऐसा करना दूसरी बात है; और हम अपने पाठकों से यह आशा नहीं करते कि वे अपनी बरसों की आदत को एक दम बदल देंगे। परन्तु हमें निश्चय है कि इस प्रकार भोजन करने में थोड़ा सा भी अभ्यास करने से मनुष्य के ऊपर परिवर्त्तन आ जायगा; और हम जानते हैं कि इसी तरह थोड़ा २ यत्न करते रहने से प्रतिदिन के भोजन के मसलने वाले तरीके में एक खासी उन्नति हो जायगी। हम यह भी जानते हैं कि शिष्य को एक नई खुशी मालूम होगी–

भोजन में अधिक स्वाद मिलेगा–और शिष्य "प्रेम" से भोजन करना सीख लेगा, और ग्रास को यों ही झट से निगल न जायगा। जो मनुष्य इस तरीके का कुछ दिन अनुसरण करेगा उसको स्वाद की एक नई दुनियाँ खुल जायगी, और पहले की अपेक्षा अब भोजन करने में उसे बहुत अधिक सुख मिलेगा; उसके भोजन का पाचन बहुत अच्छा होने लगेगा और उसका जीवट बढ़ जायगा; क्योंकि उसको अधिक मात्रा में पोषण और अन्नप्राण मिलेंगे।

जिनके पास समय और अवसर है कि इस तरीके को पूरा २ बर्त सकें उनके लिये सम्भव है कि वे थोड़े भोजन से बहुत अधिक ताकत और पोषण प्राप्त कर सकें; क्योंकि उनका खाया हुआ अन्न बर्बाद न होगा; इसकी परीक्षा उनके मल की जाँच से हो सकती है। जो बदहजमी और नाताकती के रोगी हैं वे तो अवश्य २ इस तरीके को पालन करके इसका लाभ उठावें।

योगियों को लोग अल्पभोजी जानते हैं; परन्तु वे ही पूरे तौर से पूर्ण पोषण की महिमा और आवश्यकता समझते हैं, और शरीर को सर्वदा पुष्ट और रचनाकारी सामग्रियों से युक्त रखते हैं। इसका रहस्य यह है कि वे भोजन में के पोषण को बर्बाद नहीं करते, उसके सब पोषण को खींच लेते हैं। वे अपने शरीर में रद्दी पदार्थों का बोझा नहीं लादे रहते, जो शरीर की कल की गति में अवरोध डाले अथवा उसके दूर करने में शक्ति का नाश हो। वे थोड़े से थोड़े भोजन से अधिक से अधिक पोषण प्राप्त करते हैं–थोड़ी सामग्री से अधिक अन्नप्राण खींचते हैं।

यदि आप पूरा २ इस विधान को न वर्त सकें तौ भी आप ऊपर दिये हुए तरीकों से बहुत कुछ उन्नति कर सकते हैं। हमने साधारण मोटी २ बातें लिख दी हैं—शेष आप स्वयं ही कर लीजिये—अपने लिये जांच कर लीजिये—यही तरीका किसी बात को किसी तरह सीखने का है।

हमने इस किताव में कई जगहों पर बतलाया है कि प्राण के खींचने में मानसिक अवस्था का प्रधान प्रभाव पड़ता है। यह बात हवा ही से प्राण खींचने के विषय में नहीं है, वल्कि, भोजन से भी प्राण खींचने के विषय में भी है। भोजन करते समय सर्वदा यह ख्याल वना रहे कि "हम भोजन के ग्रास का कुल प्राण खींचे लेते हैं" और इस प्राण की भावना के साथ साथ पोषण की भावना भी रखिये तव आप को ऐसा करने से, न करने की अपेक्षा, बहुत अधिक लाभ होगा।

गेरहवाँ अध्याय।

भोजन।

खाद्याखाद्य का विचार हम बिलकुल अपने शिष्यों के पसन्द पर छोड़ देते हैं। अपने लिये तो हम खास तौर का भोजन पसन्द करते हैं, यह विश्वास करके उस के खाने से उत्तम से उत्तम फल प्राप्त होता है। हम जानते हैं कि जिन्दगी भर की क्या कई पीढ़ियों की, पड़ी हुई आदत एक दिन में नहीं बदल सकती; और मनुष्य को अपने ही तजर्बे और ज्ञान से काम करना, दूसरों की आज्ञा से काम करने की अपेक्षा अधिक अच्छा है। योगी लोग निरामिष भोजन पसन्द करते हैं, स्वास्थ्य के हित के लिये और मांस भोजन से पूर्वी पर्हेज के कारण भी अच्छे कामिल योगी फल आदि और विना कूटे हुये गेहूँ की सादी रोटी अधिक पसन्द करते हैं। परन्तु जब वे उन लोगों की संगति में पड़ जाते हैं, जिनकी भोजन-विधि और ही है, तब वे अवसर के अनुकूल अपने को थोड़ा बहुत बना लेने में बहुत पशोपेश नहीं करते; और अपने को किसी के ऊपर भार नहीं बनाते; क्योंकि वे जानते हैं कि यदि हम भली भांति मसल कर खाना खायँगे तो हमारा आमाशय हमारे भोजन की अच्छी सुधि ले लेगा। सच बात तो यह है कि वर्तमान भोजनों की कुछ दुष्पाच्य चीजें भी खाई जा सकती हैं। यदि ऊपर लिखी हुई विधियों का अच्छी तरह से प्रयोग किया जाय।

हम इस अध्याय को मुसाफ़िर योगी के भाव में लिखते हैं। हमारी इच्छा अपने शिष्यों पर भोजन विषयक अधिक दवाव डालने की नहीं है। मनुष्य को स्वयं अपनी बुद्धि और तजर्वे से काम करना चाहिये, ऊपर से दवाव डालना ठीक नहीं। यदि कोई मनुष्य जिन्दगी भर से मांस खाता आता हो तो उसके लिये विना मांस का भोजन करना वहुत ही कठिन हो जायगा; वैसे ही जो मनुष्य पकाया हुआ भोजन करता आया है उसके लिये विना पकाया भोजन फल आदि का खाना भी वहुत कठिन पड़ जायगा। आप से हमें सिर्फ़ इतना ही कहना है कि आप इस विषय पर थोड़ा ग़ौर करलें फिर जैसी आप की प्रवृत्ति कहे वैसा करें; पर हां, यदि भोजन को वदलते जाँय तो वहुत अच्छा है। यदि आप अपनी प्रवृत्ति ही पर भरोसा करेंगे तो वह प्रायः आप से वही वस्तु पसन्द करावेगी जो उस समय आप के लिये आवश्यक होगी; और हम प्रवृत्ति पर भरोसा करना, खाद्याखाद्य के कठिन नियमों के पालन की अपेक्षा अच्छा समझते हैं। जितना आप को भावे आप खाइये परन्तु उसे धीरे २ खूव मसलिये और अपने पसन्द का प्रयोग वहुतसी चीजों में कीजिये। हम इस अध्याय में कुछ ऐसी वातों का ज़िक्र करेंगे जिन्हें वुद्धिमान मनुष्य स्वयं छोड़ देंगे; परन्तु हम केवल साधारण सलाह की भांति कहेंगे। मांस भोजन के विषय में हम लोगों का विश्वास है कि शनैः शनैः मनुष्य को मालूम हो जायगा कि मांस उसका स्वाभाविक भोजन नहीं है; परन्तु हम लोगों का विश्वास है कि मांस का खाना वा त्याग करना मनुष्य की

अपनी ही प्रवृत्ति से उपजना चाहिये न कि ऊपर से दवाव डाल कर उससे कराना चाहिये। क्योंकि जब उसकी प्रवल इच्छा मांस खाने की हो गई तो वह वस्तुतः मांस खाने के समान ही हो गया। जब मनुष्य की गति और आगे होगी तो उसकी मांस खाने की इच्छा समाप्त हो जायगी; परन्तु जब तक वह समय न आवे तब तक दवाव डाल कर उससे मांस का खाना छुड़वा देना कोई लाभ न करेगा। हम जानते हैं कि हमारे इस कथन को बहुत स पाठक प्रचलित मत का विपक्ष समझेंगे, पर हम करें क्या—तजर्वे से हमारे कथन की पुष्टि होगी।

यदि हमारे पाठकों का जी अनेक प्रकार के भोजनों के हानि लाभ के विचारने में लगता हो तो उन्हें इस विषय की कुछ उन अच्छी किताबों को पढ़ना चाहिये जो हाल ही में प्रकाशित हुई हैं। परन्तु उन्हें इस विषय को खूब चारो ओर से सोच लेना चाहिये और किसी लेखक के ख़ास प्रवर्तित मत पर अन्धे की भांति न विश्वास कर लेना चाहिये, हमारे सामने जो भोजन आते हैं उनकी हानि लाभ के विषय में अच्छी किताबों के पढ़ने से शिक्षा ही मिलेगी और ऐसी शिक्षा से शनैः शनैः हमारे भोजन-द्रव्य भी परिवर्तित होने लगेंगे। परन्तु ऐसे परिवर्तन विचारों और तजर्वों के द्वारा होने चाहिये न कि किसी मतवादी के केवल कह देने से। हमारी यह राय है कि हमारे शिष्य इन प्रश्नों पर अक्सर विचार किया करें कि हम अधिक मांस तो नहीं खा रहे हैं? हम अधिक चर्बी तो नहीं खा रहे हैं? हम काफ़ी फल खाते हैं

कि नहीं ? क्या हमारे भोजन में विना कूटे गेहूं की कुछ रोटी रहे तो अच्छा न होगा ? क्या हम बहुत पेचीदा तरीकों से पकाये लतीफ़ और लज़ीज़ खानों की ओर तो नहीं झुकते जा रहे हैं ? यदि हमसे कोई खाने के विषय में सलाह पूछे तो हम तो यही कहेंगे कि अनेक प्रकार का भोजन करो, पर पेचीदा रीतियों से पकाये हुए खाने से बच कर रहो, बहुत चर्बी मत खाओ, तलने वाली कड़ाही से खबर्दार रहो, बहुत मांस मत खाओ, खास कर सूअर और गाय का मांस तो कभी मत खाओ; धीरे धीरे अपने भोजन की प्रवृत्ति को सीधे सादे खाने की ओर झुकाओ, खमीर से बनी हुई रोटियों आदि को कम करो; गरम चपातियों को तो अपने भोजन से खारिज ही कर दो; खाते वक्त खूब धीरे धीरे मसलो जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं; भोजन से डरो मत, यदि तुम उसे उचित रीति से खाओगे तो वह तुम्हारी हानि न करेगा बशर्ते कि तुम उससे डरोगे नहीं।

बेहतर होगा कि सुबह का पहला भोजन हलका हो क्योंकि सवेरे शरीर में मरम्मत होने की बहुत आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि शरीर रात भर आराम करता रहा है। यदि सम्भव हो तो नाश्ता के पहले कुछ व्यायाम करलो।

यदि आप उचित रीति से मसलने की स्वाभाविक रीति को धारण कर लेंगे और उचित भोजन का मज़ा पा जायँगे तो अस्वाभाविक भोजनातुरता की जो आदत पड़ गयी है वह आप ही छुट जायगी और स्वाभाविक भूख लौट आवेगी। जब स्वाभाविक भूख लौट आवेगी तो प्रवृत्ति केवल पोषण-

कारी ही भोजनों को चुनेगी; और तुम उसी वस्तु को चाहोगे जिसकी तुम्हें उस वक़ पोषण के लिये अत्यन्त आवश्यकता होगी। मनुष्य की प्रवृत्ति, यदि व्यर्थ के उन पकवानों द्वारा विगाड़ न दी जाय, जो केवल भोजनातुरता उत्पन्न करते हैं, तो वह बड़ी अच्छी पथदर्शिका होती है।

अगर आप की तबीयत कुछ खराब हो तो एक वक्त भोजन न करने में पशोपेश मत कीजिये, आमाशय को अवसर दीजिये कि जो कुछ उस में है उसी को दूर करे। विना खाये हुये मनुष्य कई दिन तक विना किसी भय के रह सकता है, परन्तु हम बहुत लम्बे उपवास की सलाह नहीं देते। हमारी यह राय है कि तबीयत ख़राब होने पर आमाशय को थोड़ा आराम दे देना बुद्धिमानी है; इस से मरम्मत करने वाली शक्ति को अवसर मिलता है कि वह उस रद्दी पदार्थ को निकाल बाहर करे जो दुःख दे रहा है। आप देखेंगे कि जानवर जब बीमार पड़ते हैं तो खाना छोड़ देते हैं और तब तक पड़े रहते हैं जब तक स्वास्थ्य न आजाय; और स्वस्थ होने पर वे खाने लगते हैं। हम उनसे यह पाठ सीख कर फ़ायदा उठा सकते हैं।

हम अपने शिष्यों को भोजन के विषय में ऐसा भीरु नहीं बनाया चाहते कि वे प्रत्येक ग्रास तौलें, नापें और उस का तत्व निर्णय करें। हम इसको अस्वाभाविक तरीक़ा समझते हैं; हमारा विश्वास है कि ऐसे तरीक़े से भोजन से भय उत्पन्न होता है और प्रवृत्ति-मानस ग़लत ग़लत भावनाओं से भर जाता है। हम इसी तरीक़े को अच्छा समझते हैं कि

भोजन के पसन्द के विषय में साधारण सावधानी और विचार से काम लिया जाय और तब उस विषय से निश्चिन्त हो जाया जाय; और पोषण तथा ताक़त का ध्यान करते भोजन किया जाय, भोजन को उसी प्रकार मसला जाय जैसे हम कह आये हैं और यह जानते रहें कि प्रकृति अपने काम को अच्छी भांति कर लेगी।

जहां तक सम्भव हो प्रकृति के मार्ग ही पर बने रहो, उससे दूर न जाओ; उसी के उद्देश को उचित और अनुचित के पहचान में अपना प्रमाण बनाओ। बलवान स्वस्थ मनुष्य अपने भोजन से डरता नहीं; उसी प्रकार जो मनुष्य स्वस्थ बनना चाहता है उसे भी अपने भोजन से डरना न चाहिये। प्रसन्न रहो, ठीक सांस लो, ठीक रीति से भोजन करो, उचित रीति से रहो तो तुम्हें प्रत्येक ग्रास पर भोजन की रसायनिक परीक्षा करने का मौक़ा ही न मिलेगा। अपनी प्रवृत्ति पर भरोसा करने में डरो मत, क्योंकि स्वाभाविक मनुष्य की वह पथ-प्रदर्शिका है।

बारहवाँ अध्याय।

देह की सिंचाई।

हठयोग शास्त्र का प्रधान नियम एक यह है कि जीवों के लिये जो प्रकृति का महत् दान जल है, उसका विचार पूर्वक प्रयोग किया जाय। मनुष्य की स्वाभाविक तन्दुरुस्ती को कायम रखने के लिये पानी एक प्रधान साधन है, इस बात पर मनुष्य के ध्यान को आकर्षित करने की आवश्यकता भी न होती परन्तु मनुष्य कृत्रिम सामानों, आदतों, रेवाजों आदि का ऐसा दास बन गया है कि वह प्रकृति के नियमों को भूल गया। वह प्रकृति के मार्ग पर लौट आवे तभी वह कुछ आशा कर सकता है। छोटा बच्चा अपनी प्रवृत्ति द्वारा पानी के लाभ को जानता है, और पानी पाने के लिये बड़ी चाह दिखलाता है; परन्तु ज्यों ज्यों वह बड़ा होता है त्यों त्यों स्वाभाविक आदत से दूर होता जाता है, और अपने इर्द गिर्द के बड़े लोगों की ग़लत आदतों में पड़ जाता है। यह बात विशेष करके उन लोगों के सम्बन्ध में ठीक ठीक घटती है, जो लोग बड़े बड़े नगरों में रहते हैं, जहां की कलों का गरम पानी बेस्वाद होता है, और इस प्रकार वे शनैः शनैः पानी के स्वाभाविक प्रयोग से पृथक् हो जाते हैं। ऐसे मनुष्य पानी पीने (या यों कहिये कि न पीने) का और प्रकृति की मांग को मुलतवी कर देने की नई आदतों को धारण कर लेते हैं; और

अन्त में प्रकृति की मांग की उन्हें चेतना तक नहीं होती। हम मनुष्यों को ऐसा कहते अक्सर सुनते हैं कि "हमें पानी क्यों पीना चाहिये; हमें तो प्यास नहीं लगती"। परन्तु यदि वे प्रकृति के मार्ग पर बने रहते तो उन्हें अवश्य प्यास लगती; और उन्हें प्रकृति की मांग सुनाई क्यों नहीं देती, इसका एकमात्र कारण यह है कि उन्हों ने प्रकृति की मांग पर इतने दिन ध्यान नहीं दिया इस लिये प्रकृति वेदिल होकर उतना ज़ोर से पानी नहीं मांगती; इसके अतिरिक्त उनका ध्यान और बातों में रहता है इसलिये उनको प्रकृति की मांग की पहचान ही नहीं होती। यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि मनुष्य ने जीवन के इस प्रधान व्यापार को भुला दिया है। बहुत से लोग तो शायद ही कभी कोई द्रव पीते हों और वे कहते भी हैं कि "हम नहीं समझते कि हमारे लिये यह अच्छा है" यह बात यहां तक बढ़ गई है कि हमने एक ऐसे भी, कहने को, स्वास्थ्याचार्य को जाना है जो ऐसा अद्भुत उपदेश करते हैं कि "प्यास एक बीमारी है" और लोगों को सलाह देते हैं कि द्रव पदार्थों को पियें ही नहीं क्योंकि पानी का इस्तेमाल अस्वाभाविक है। हम ऐसे उपदेशकों के साथ विवाद करना नहीं चाहते–इनकी मूर्खता उन लोगों पर अवश्य विदित हो जायगी जो मनुष्य और नीच जन्तुओं के स्वाभाविक जीवन पर ध्यान देगें। मनुष्य को प्रकृति के मार्ग पर लौट जाने दीजिये तो वह चारों ओर, जीवन के सब रूपों में, पौधों से लेकर दूध पीने वाले ऊंचे जानवरों तक, पानी पीना देखने लगेगा।

योगी पानी पीने के समुचित प्रयोग को इतनी प्रधानता देता है कि वह इसे स्वास्थ्य के प्रथम नियमों में समझता है। वह जानता है कि रोगी मनुष्यों में से अधिकांश जन ऐसे हैं जो उस द्रव के अभाव के कारण रोगी हुए हैं जिसकी आवश्यकता उनके शरीर को थी। जैसे पौधे को पानी और भूमि तथा हवा में से भोजन पाने की आवश्यकता होती है जिससे वह स्वस्थता को प्राप्त हो, वैसे ही मनुष्य को भी द्रव की काफ़ी मात्रा की आवश्यकता होती है कि वह स्वस्थ बना रहे या यदि अस्वस्थ हो गया है तो फिर स्वास्थ्य लाभ करे। ऐसा कौन खयाल करेगा कि पौधे को पानी न दिया जाय? ऐसा कौन मनुष्य होगा जो फर्मांवर्दार घोड़े को पूरी मिक़दार में पानी न देगा? परन्तु मनुष्य पौधे और जानवर को तो वह पदार्थ देता है जिसकी उनके लिये अपनी साधारण अक्ल से जरूरत समझता है, परन्तु अपने ही को जीवनदायक द्रव से वञ्चित रखता है; पर वह इसका फल वैसे ही भोगेगा जैसे विना पानी पाये पौधे और घोड़े फल भोगते हैं। जब आप पानी पीने के प्रश्न पर विचार करने लगें तो पौधे और घोड़े के इस उदाहरण को स्मरण रक्खें।

अब यह देखना चाहिये कि शरीर में पानी किस किस काम में आता है और तब विचारा जाय कि इस विषय में हम स्वाभाविक जीवन जी रहे हैं कि नहीं। प्रथम तो हमारे शरीर का ७० प्रति सैकड़ा भाग पानी है। इस पानी का कुछ भाग हमारे संगठन में प्रयुक्त होता है, और लगातार हमारे शरीर से पृथक् होता रहता है; और जितना पानी खर्च हो

जाता है उतना ही पानी फिर शरीर में भर देना चाहिये, यदि शरीर को स्वाभाविक दशा में रखना स्वीकार हो।

यह शरीर यंत्र चमड़े के अगणित छिद्रों द्वारा देहवाष्प और पसीने के रूप में लगातार जल छोड़ रहा है। पसीना उस शारीरिक द्रव मल को कहते हैं जो चमड़े के छिद्रों से इतनी शीघ्रता से फेंका जाता है कि बिन्दुओं के रूप में एकत्रित हो जाता है। देहवाष्प उसे कहते हैं जो पानी शरीर के छिद्रों से लगातार और अज्ञात रूप से वाष्परूप में निकला करता है। जांच से मालूम हुआ है कि यदि चमड़े से वाष्प निकलना बन्द कर दिया जावे तो जन्तु मर जाय। पुराने, रोम के एक त्यौहार में एक लड़का सोने के पत्रों से सिर से पैर तक आच्छादित करके एक देवता की मूर्ति बनाया गया था—सोने के पत्रों के हटाने के पहले ही लड़का मर गया क्योंकि वार्निश और स्वर्ण-पत्रों के कारण उसके देह का वाष्प निकल न सका। प्रकृति की क्रिया में बाधा पहुंची और शरीर उचित रीति से कार्य न कर सका इसलिये जीव ने उस मांस कुटी को छोड़ दिया।

पसीने और देहवाष्प के रसायनिक विश्लेषण से जाना गया है कि ये देहयंत्र के रद्दी पदार्थों से भरे हुए होते हैं—मल और परित्यक्त कण से भरपूर होते हैं—जो, यदि देहयंत्र में काफ़ी पानी न पहुँचाया जाय तो शरीर ही में रह जायँ, उसमें विष उत्पन्न कर दें और परिणाम में रोग तथा मृत्यु को बुला लें। शरीर की मरम्मत का काम सर्वदा हुआ करता है, बेकार और रद्दी रेशे हटाये जाया करते हैं और उनके

स्थान में नई ताज़ी सामग्री उस रुधिर में से, जिसने भोजन में से नई सामग्री संग्रह की है, जुटाई जाती है। यह रद्दी अवश्यमेव शरीर से बाहर निकाली जानी चाहिये, और प्रकृति इसे निकालने में खूब सावधान रहती है—वह देहयंत्र में कूड़े करकट का रखना कभी भी पसन्द नहीं करती। यदि यह रद्दी पदार्थ देहयंत्र ही में रहने दिया जाय तो वह विष हो जाता है और रोग की अवस्था उत्पन्न कर देता है। यह, कीटाणु, उनके वीज, अंडे बच्चे इत्यादि का उत्पत्तिस्थान और चरागाह वन जाता है। कीटाणु स्वच्छ और स्वस्थ शरीर यंत्र को अधिक हानि नहीं पहुँचाते; परन्तु ज्योंही ये जलद्वेषी-मनुष्य के सम्पर्क में आते हैं, और उसके शरीर को रद्दी और कूड़े करकट तथा नाना प्रकार की गंदगियों से भरा पाते हैं, त्योंही वे वहां ही डेरा डालकर अपनी कार्रवाई शुरू कर देते हैं। हम इस विषय में कुछ और बातें भी स्नान के विषय के साथ वतलावेंगे।

हठयोग के प्रति दिन के जीवन में पानी सर्वप्रधान कार्य करता है। योगी इसे भीतर और बाहर दोनों भांति प्रयोग करता है। वह स्वास्थ्य को क़ायम रखने के लिये इसका प्रयोग करता है, और जहां रोग ने शरीर की स्वाभाविक क्रिया को निर्बल कर दिया है, वहां पर फिर भी स्वास्थ्य स्थापित करने वाले इसके गुणों की महिमा की शिक्षा देता है। हम इस किताब के कई भागों में पानी के प्रयोग का ज़िक्र करेंगे। हम इस विषय की मुख्यता को अपने शिष्यों के हृदय में अङ्कित कर दिया चाहते हैं; और उनसे आग्रह के

साथ निवेदन करते हैं कि इस विषय को बहुत ही सीधा सादा जान कर तुच्छ न समझ बैठें और इसे छोड़ न जांय। हमारे प्रति दस पाठकों में से सात को इस सलाह की बड़ी आवश्यकता है। इसे छोड़ न जाइये। सुना आपने? हम आप ही से कहते हैं।

देहवाष्प और पसीना दोनो इसलिये भी आवश्यक हैं कि उनके साथ साथ देह की अतिशय गर्मी भी निकलती जाय, और शरीर का ताप उचित दर्जे का बना रहे। जैसा हम ऊपर कह आये हैं, देहवाष्प और पसीना दोनों देह-यन्त्र के निकम्मे पदार्थों को निकाल कर फेंकने में भी सहायक होते हैं। चमड़ा गुर्दों को सहायता पहुंचाने का अवयव है। विना पानी के चमड़ा इस काम को करने के लिये अशक्त हो जाता है।

स्वाभाविक युवक १½ पाइन्ट से लेकर २ पाइन्ट तक पानी २४ घंटे में पसीना और देहवाष्प के रूप में छोड़ता है; परन्तु जो मनुष्य बहुत शारीरिक परिश्रम का काम करते हैं, वे और भी अधिक पसीना छोड़ते हैं। आर्द्र वायुमंडल की अपेक्षा शुष्क वायुमंडल में मनुष्य अधिक गर्मी सहन कर सकता है क्योंकि शुष्क वायुमंडल में देहवाष्प इतनी शीघ्रता से उड़ जाता है कि गर्मी बहुत जल्द और तत्परता से ख़ारिज हो जाती है। फेफड़ों की राह से भी बहुत सा पानी प्रश्वास-द्वारा बाहर फेंका जाता है। मूत्रेन्द्रियां तो अपना कार्य करने में बहुत ही ज़ियादा पानी बाहर निकालती हैं; स्वस्थ युवक ३ पाइन्ट पानी इस प्रकार ख़ारिज करता है। इतना पानी

फिर भी भरना होगा तभी शारीरिक यंत्र उचित रीति से कार्य कर सकता है।

कई कार्यों के लिये शरीर में पानी आवश्यक होता है। उसका एक कार्य तो यह है (जैसा ऊपर वर्णन किया गया है) कि शरीर में जो लगातार ज्वलन क्रिया हो रही है उस की अधिकता को रोके और उसको नियामित दर्जे में रक्खे, यह ज्वलन क्रिया, फेफड़ों द्वारा खींचे हुये हवा के आक्सीजन के भोजन के कार्बन के सम्पर्क में आने से होती है। लाखों करोड़ों देहाणुओं में यह ज्वलन क्रिया होती रहती है और यही देहताप उत्पन्न करती है। पानी जब देहयंत्र में होकर गुज़रा करता है तब तापसाम्य को स्थापित रख सकता है और ताप का बढ़ाव नहीं होने पाता।

शरीर बारबर्दारी के लिये भी पानी को काम में लाता है। यह रुधिरोपवाहक और रुधिरापवाहक धमनियों और शिराओं में हो कर बहा करता है, और रुधिराणुओं तथा अन्य पोषण पदार्थों को शरीर के भिन्न भिन्न अवयवों और भागों में पहुँचाया करता है कि जिससे ये रचना के कामों में, जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है, लाये जाँय। शरीयंत्र में द्रव की कमी के कारण रुधिर में भी कमी आजायगी। रुधिर की वापसी यात्रा में, जब वह रुधिरोपवाहक शिराओं द्वारा लौटता है, द्रव निकम्मी रद्दियों को ग्रहण करता आया है (इन रद्दियों का अधिकांश विष हो जाता यदि शरीर ही में पड़ा रहता) और उन्हें गुर्दों के मलत्यागी अवयवों, चमड़े के छिद्रों और फेफड़ों के हवाले करता है जहां से विषैली मृतक सामग्री

और निकम्मी रद्दियां वाहर फेंक दी जाती हैं। विना पुष्कल द्रव के, यह कार्य प्रकृति के उद्देश के अनुसार नहीं सिद्ध हो सकता। और विना काफी पानी के, खाये हुये भोजन की सीठी, शरीर यंत्र की राख, पुरीष अर्थात् मैला अच्छी तरह गीला नहीं रह सकता कि आसानी से मलाशय में से शरीर के वाहर निकल जाय; और परिणाम में कोष्ठवद्ध और उसकी संगिनी बीमारियां हो जाती हैं। योगी लोग जानते हैं कि नव दशमांश जीर्ण वद्धकोष्ठ की बीमारियां इसी कारण होती हैं-वे यह भी जानते हैं कि नव दशमांश जीर्ण बद्धकोष्ठ की बीमारियां वहुत शीघ्र दूर हो जाँय यदि मनुष्य पानी पीने की स्वाभाविक आदत पर आजाय। हम इस विषय का वर्णन एक पूरे अध्याय में करेंगे, परन्तु इस विषय पर हम अपने शिष्यों का ध्यान वार बार आकर्षित किया चाहते हैं।

पानी की काफी मिक़दार, रुधिर की उचित उत्तेजना और उसके पूरे संचार के लिये भी चाहिये-शरीर के निकम्मे द्रव्यों को दूर करने में भी जल चाहिये-शरीर द्रव ही भोजन रस को खींचता और अपनाता है इस लिये भी जल की आवश्यकता है।

जो मनुष्य काफी पानी नहीं पीते उनके देह में रुधिर के एकत्रित होने में भी खामी रहती है—वे विना रुधिर के सूखे व पीले नजर आते हैं-उनका चमड़ा सूखा ज्वराक्रांत सा दिखाई देता है और उनके शरीर से देहवाष्प बहुत कम निकलती है। उनकी सूरत अस्वस्थ मनुष्य की सी होती है जिसे देख कर

सूखे हुए फूल याद आ जाते हैं, जिन्हें खूब पानी में भिगोने की आवश्यकता होती है जिससे वे भरे और स्वाभाविक नज़र आवें। ऐसे मनुष्य करीब करीब सर्वदा बद्धकोष्ठ का रोग भोगा करते हैं—बद्धकोष्ठ के साथ साथ और भी अगणित रोग उसके संग चला करते हैं जैसा हम अन्य अध्याय में दिखलावेंगे। उनकी बड़ी अँतड़ी अर्थात् मलाशय गन्दा और मैले से भरा रहता है; और उनके शरीरयन्त्र में उसी मलाशय के एकत्रित मैले से रस पहुँचा करता है, जिसे कि बुरी और दुर्गन्ध श्वास द्वारा बाहर फेंकने का यत्न प्रकृति द्वारा किया जाता है; अथवा बदबूदार पसीना वा देहवाष्प या अस्वाभाविक मूत्र द्वारा बाहर निकालने की चेष्टा होती है। यह सुखकर पाठ नहीं है; परन्तु विना इन बातों के कहे आप का ध्यान इधर आवेहीगा नहीं इसलिये बेहतर है कि हम साफ़ शब्दों में इसे कह डालें। ये सब बातें केवल पानी की कमी के कारण होती हैं। ज़रा ख्याल तो कीजिये आप अपने शरीर के बाहरी भाग को साफ़ करने के लिये तो इतने उत्सुक रहें और भीतर इतना मैले से भरा रहे।

मानव शरीर के सब भीतरी भागों में पानी की आवश्यकता रहती है। उसे लगातार सिंचाई की ज़रूरत रहती है, और यदि यह सिंचाई देह को न दीजाय तो देह को उतना ही भोगना पड़ता है जितना सिंचाई के विना भूमि को भोगना पड़ता है। स्वस्थ रहने के लिये प्रत्येक देहाणु, रेशा और अवयव को पानी की ज़रूरत है। पानी सब पदार्थों को गला और घुला देनेवाला होता है इस लिये शरीरयंत्र को इस

योग्य बनाये रहता है कि वह पानी से घुले भोजन में से पोषण ग्रहण और वितरण कर सके और यंत्र के निकम्मे पदार्थों को दूर बहा सके। यह अकसर कहा जाता है कि रुधिर ही जीवन है, और यदि ऐसा है तो पानी को क्या कहना चाहिये, क्योंकि बिना पानी के खून भी कुछ नहीं।

गुर्दों के लिये भी पानी आवश्यक है कि वे अपना मूत्रोत्सर्जन का काम कर सकें। इस की जरूरत लार पित्त, पैनक्रियाटिक द्रव, आमाशयिक द्रव, और शरीर के अन्य द्रवों की बनावट में भी पड़ती है; और इन द्रवों के बिना पाचन-क्रिया बिलकुल असंभव है। आप पानी पीना बन्द कर दीजिये बस इन सब आवश्यक चीजों में कमी आ जायगी। अब आया आप के ध्यान में?

अगर आप इन बातों को योगियों की कल्पना समझ कर इन पर सन्देह करें तो आप को उचित है कि आप शारीरिक शास्त्र (Physiology) की किसी अच्छी वैज्ञानिक किताब को पढ़ें, जो किसी पश्चिमी धुरन्धर विद्वान की लिखी हो। आप को हमारे कथनों की पुष्टि और समर्थन मिल जायँगे। एक नामी शारीरिक विज्ञान वाले ने कहा है कि स्वाभाविक शरीर के रेशों में इतना पानी रहता है कि यह बात स्वयं-सिद्ध की भांति कही जा सकती है कि "सब देहाणु पानी ही में रहते हैं।" और यदि पानी ही नहीं है तो जीवन और स्वास्थ्य कैसे रह सकते हैं?

आपको यह बतलाया गया है कि २४ घंटे में गुर्दे ३ पाइंट मूत्र त्यागते हैं जिसमें शरीर के निकम्मे द्रव्य और विषैले

रसायनिक पदार्थ देह यंत्र से गुर्दों द्वारा खींच कर एकत्रित रहते हैं। इसके अलावे हम दिखला आये हैं कि चमड़े द्वारा भी डेढ़ पाइंट से २ पाइंट तक पानी पसीना और देहवाष्प के रूप में ख़ारिज किया जाता है। इतने ही २४ घंटे के समय में १० से १५ औंस पानी फेफड़े भी प्रश्वास द्वारा बाहर फेंकते हैं। मल के साथ मिश्रित भी कुछ पानी निकलता है। कुछ थोड़ा पानी आंसू, बलग़म आदि के रूप में और भी बाहर निकलता है। अब इतने बाहर निकले हुए पानी के स्थान में कितने पानी की जरूरत पड़ेगी? आइये देखा जाय। कुछ पानी तो भोजन में मिश्रित भीतर पहुंचता है; वह भी ख़ास करके ख़ास २ खानों में; परन्तु यह पानी उस पानी की अपेक्षा कम होता है जो मल के निकालने में जाता है। अच्छे अच्छे आचार्यों की सम्मति है कि २ कार्ट से ५ पाइण्ट तक पानी अवसत दर्जे नित्य पुरुष और स्त्री का स्वास्थ्य रखने के लिये आवश्यक है जिससे ख़ारिज हुए पानी की कमी पूरी होती रहे। यदि इतना पानी शरीर को न दिया जायगा तो शरीर अपने ही यंत्रों का पानी खींचने लगेगा और मनुष्य सूखी सूरत, जिसका ऊपर वर्णन हो चुका है, धारण करने लगेगा। परिणाम यह होगा कि शारी-रिक सब क्रियायें निर्बल होने लगेगीं और मनुष्य भीतर और बाहर दोनों ओर से सूखने लगेगा, शरीर के कलपुर्जों में आर्द्रता और सफ़ाई की बहुत कमी हो जायगी।

दो कार्ट रोज़! ज़रा इसे ख्याल तो कीजिये। आप लोग तो केवल एक पाइण्ट या इससे भी कम पानी रोज़ पीते हैं।

अब भी आप को आश्चर्य है कि क्यों आप इतनी शारीरिक पीड़ाओं को भोगते हैं? अब जो आप बदहज़मी, बद्धकोष्ट, रुधिराभाव, निर्बल नाड़ी आदि अनेक रोगों को भोगते हैं तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है। आपका शरीर उन अनेक प्रकार के विषैले द्रव्यों से भर गया है, जिनको पानी की कमी के कारण प्रकृति गुर्दों और चमड़ों के छिद्रों द्वारा बाहर न फेंक सकी। इसमें भी क्या आश्चर्य है कि आप का मलाशय पुराने जमे हुए सख्त मल से भरा हुआ है और आप के शरीर को विषाक्त कर रहा है, जिसको प्रकृति अपने नियमानुसार साफ़ न कर सकी क्योंकि आपने उसे पानी ही नहीं दिया जिस से वह मल की नालियों को साफ़ कर सके। आपके पास लार और आमाशयिक द्रव की कमी है तो इसमें भी क्या ताज्जुब है? विना पानी के प्रकृति उन्हें कैसे बना सकती है? आपका रुधिर अच्छा नहीं है तो इसमें भी क्या आश्चर्य? प्रकृति कहां से जल पावे कि अच्छा रुधिर बनावे? आप की नाड़ियां भी अस्वस्थ और अनरीत हैं तो क्या आश्चर्य जब सभी चीजें पानी विना विगड़ रही हैं? यद्यपि आप मूर्ख हो रहे हैं तो भी बेचारी प्रकृति, जहांतक कर सकती है, करने में नहीं चूकती। वह आपके शरीरही से थोड़ा पानी खींच लेती है कि जिससे कल बिलकुल बन्द न होनेपावे, परन्तु वह अधिक पानी खींचने की हिम्मत नहीं करती–इसलिये वह बीचका मार्ग पकड़ती है। वह वैसा ही करती है जैसा आप कुएं का पानी सूखने पर करते हैं अर्थात् जैसे आप थोड़े पानी से ज़ियादा काम लिया चाहते हैं और

अधूरा ही काम करके सब्र करते हैं वैसेही प्रकृति भी करती है।

योगी लोग खूब पुष्कल पानी नित्य पानी में तनिक भी नहीं डरते, वे इस बात से नहीं डरते कि अधिक पानी पीने से खून पतला हो जायगा, जैसा ये सूखे मनुष्य ख्याल किया करते हैं। यदि आवश्यकता से अधिक पानी कभी पी लिया जाय तो प्रकृति उसे तुरंत और शीघ्रता से निकाल देगी। योगी लोग वर्फ़ के पानी की जो सभ्यता का अस्वाभाविक मसाला है, चाहना नहीं करते—उनको ८० डिग्री तक का ठंढा पानी प्रिय है। वे जब प्यासे होते हैं तभी पानी पी लेते हैं—उनकी प्यास भी स्वाभाविक (अधिक) होती है, जिसको सूखे मनुष्यों की प्यास की भांति जगाना नहीं पड़ता। वे बार २ पानी पीते हैं, पर ख्याल रखिये कि वे एक ही बार बहुतसा पानी नहीं पी लेते। वे पानी को एकबारगी पेट में उड़ेल नहीं देते क्योंकि, वे जानते हैं कि ऐसा अभ्यास व्यतिक्रान्त, अस्वाभाविक और हानिकारक है। वे थोड़ा २ करके कई बार पानी पीते हैं। जब काम करते रहते हैं तब पानी भरा बर्तन पास रखते हैं, और बार २ उसमें से थोड़ा २ पानी पिया करते हैं।

जिन लोगों ने बहुत बरसों से अपनी प्रवृत्तियों पर ध्यान नहीं दिया है उन्होंने पानी पीने की प्राकृतिक आदत को भुलवा दिया है, और उसे फिर प्राप्त करने के लिये खासे अभ्यास की जरूरत है। थोड़े अभ्यास से बहुत जल्द पानी पीने की मांग पैदा हो जावेगी, और समय पाकर स्वाभाविक

प्यास जग उठेगी। अच्छा उपाय यह है कि एक ग्लास पानी अपने पास रखिये और थोड़ी २ देर पर उस में से पी लिया कीजिये और साथ ही यह ख्याल भी करते जाइये कि आप क्यों वह पानी पी रहे हैं। अपने मन में कहिये कि "मैं अपने शरीर को पानी दे रहा हूं जिसकी उसको अपना काम अच्छी तरह से करने की जरूरत है, और वह हमें शरीर की स्वाभाविक दशा को ला देगा—हमें अच्छा स्वास्थ्य और बल देगा और हमें बलवान्, स्वस्थ और स्वाभाविक मनुष्य बना देगा।"

रातको सोने के समय योगी लोग एक ग्लास पानी पी लेते हैं, इस पानी को देह-यंत्र खींच लेता है और रात में इसे शरीर की सफ़ाई के काम में लाता है; रद्दियात मूत्र के साथ सबेरे बाहर निकाल दिए जाते हैं। एक ग्लास पानी वे सबेरे जगते ही पी लेते हैं, इसका विचार यह है कि भोजन के पहले यह आमाशय को साफ़ कर देता है और जो तलछट और रद्दी उसमें रात को जमा हो रहते हैं उन्हें धो डालता है। वे प्रत्येक भोजन के पहले भी एक २ प्याला पानी पी लेते हैं और थोड़ी मुलायम कसरत भी कर लेते हैं, इससे यह विश्वास करते हैं कि पाचन अवयव भोजन के लिए तैयार हो जावेंगे और स्वाभाविक भूख जग उठेगी। भोजन के समय भी थोड़ा पानी पी लेने में वे नहीं डरते (इसको पढ़ते हुए बहुत से स्वास्थ्याचार्य भयभीत हो उठेंगे) परंतु इस बात से सावधान रहते हैं कि उनका भोजन पानी से धो न जाय। पानी से भोजन को भीतर निगलने में केवल लार ही जल-

मिश्रित नहीं हो जाता; किंतु, जब तक भोजन भीतर जाने के लिए तैयार नहीं रहता तभी भीतर चला जाता है और योगी की भोजन मसलने वाली क्रिया में बाधा पहुँचाता है (उस विषय के अध्याय को देखो) । योगियों का विश्वास है कि इसी भाँति भोजन के साथ पानी पिया हुआ हानिकारक होता है और इसी कारण से भी—नहीं तो प्रत्येक भोजन के साथ वे थोड़ा पानी पी लेते हैं कि आमाशय में भोजन मुलायम हो जाय और वह थोड़ा पानी आमाशयिक द्रव आदि को निर्बल नहीं बनाता ।

बहुत से हमारे पाठक गंदी अंतड़ियों के साफ करने में गरम पानी की महिमा को समझते होंगे । हम ऐसी आवश्यकता के अनुसार गरम पानी के प्रयोग को अच्छा समझते हैं, परन्तु हमारा ख्याल है कि अगर हमारे शिष्य जीवन के योगी विधान का सावधानी से बर्ताव, जैसा इस किताब में दिया गया है, करेंगे तो उनका आमाशय गंदा ही न होगा कि उसे साफ करने की आवश्यकता पड़े उनका आमाशय अच्छा स्वस्थ रहेगा । विचार पूर्वक भोजन करने की आदत के प्रारंभ में गंदे आमाशय वाले मनुष्य को इस प्रकार गरम पानी के प्रयोग से लाभ हो जायगा । इसका सर्वोत्तम तरीका यह है कि एक पाइंट पानी सबेरे नाश्ता के पहले अथवा दूसरे भोजनों के एक घंटा पहले धीरे धीरे चूसकर पी लिया जाय, यह पाचन के अवयवों में मांस पेशियों की क्रिया को उत्तेजित करेगा, जिससे देह यंत्र में एकत्रित हुआ मल उसमें से बाहर निकलने की चेष्टा करेगा जिसको

गरम पानी ने ढीला और पतला कर दिया है। परंतु यह अल्प ही काल के लिए उपाय है। प्रकृति का उद्देश सर्वदा गरम पानी पीने का नहीं है और स्वस्थ दशा में वह साधारण ठंढा पानी चाहती है—और स्वास्थ्य को कायम रखने के लिए वैसे ही पानी की जरूरत है—परंतु जब प्रकृति के नियमों के उल्लंघन से स्वास्थ्य बिगड़ गया हो, तो गरम पानी अच्छा है कि फिर प्राकृतिक मार्ग पर आने के पहले सफ़ाई कर ली जाय।

हम इस अध्याय के अन्य भागों में स्नान और पानी के ऊपरी प्रयोग के विषय में और अधिक कहेंगे—यह अध्याय पानी के भीतरी ही प्रयोग के विषय में है।

पानी के ऊपर लिखे हुए गुणों, कार्यों और प्रयोगों के अतिरिक्त हम यह भी कहेंगे कि पानी में प्राण की मात्रा भी अधिक हुआ करती है, जिसके एक भाग को वह शरीर में छोड़ देता है, यदि शरीर को आवश्यकता हो और शरीर तलब करे। कभी २ मनुष्य को एक प्याला पानी की आवश्यकता केवल उत्तेजना ही के लिये हो जाती है-कारण यह है कि किसी वजह से प्राण की साधारण मुहइया कम पड़ जाती है और प्रकृति यह समझ कर कि जल से शीघ्रता और आसानी से प्राण मिल सकता है, पानी माँगती है। आप सब लोग स्मरण करेंगे कि कभी कभी एक प्याला पानी पी लेने से चित्त कैसा उत्तेजित और ताज़ा हो जाता है और कैसे आप फिर अपने काम में लग जाने के योग्य हो जाते हैं। जब आप सुस्ती मालूम करें तो पानी को न भूलें।

यदि योगियों की श्वास क्रिया के संबंध में इसका प्रयोग किया जाय तो यह मनुष्य को अन्य उपायों की अपेक्षा शीघ्र-तर ताजी शक्ति देगा।

पानी चूसने के समय क्षण भर उसे मुँह ही में थाम्म लीजिये और तब पी जाइये। जिह्वा और मुँह की नाड़ियां सब से प्रथम और शीघ्रता से प्राण खींचने वाली होती हैं, और यह तरीक़ा बहुत लाभदायक होगा विशेष करके जब मनुष्य थक गया हो। यह स्मरण रखने योग्य बात है।

तेरहवाँ अध्याय ।

शरीर यंत्र की राख और फ़ुज़ला ।

यह अध्याय आप लोगों में से उन मनुष्यों को जो अब भी शरीर या उसके किसी अंग की नापाकीज़गी और अश्लीलता के ख़याळात से बद्ध हैं—यदि हमारे शिष्यों में भी संयोग से ऐसे मनुष्य हों—यह अध्याय अरुचिकर जँचेगा। आप लोगों में से वे मनुष्य जो पार्थिव शरीर की कुछ प्रधान क्रियाओं के अस्तित्व पर ध्यान देना नहीं चाहते, और इस ख्याल पर कि कुछ शारीरिक क्रियाएं प्रतिदिन के जीवन की एक अंग हैं लज्जा मानते हैं, उनको यह अध्याय अरुचि कर प्रतीत होगा, और वे इस अध्याय को इस पुस्तक का कलंक समझेंगे। ऐसी बात कि जिसको छोड़ ही देना अच्छा था जिस पर ध्यान ही नहीं देना उचित था। उन लोगों में से हमारा यह कहना है कि हम पुरानी कहानी के उस शुतरमुर्ग की राय के अनुसरण करने में कोई लाभ नहीं देखते (किन्तु बड़ी हानि देखते हैं) जिसने अपने व्याधों के भय से अपने सिर को बालू में गाड़ दिया था, और अनिष्ट बात को आंख की ओट कर दिया था, और उनकी उपस्थिति पर ध्यान ही नहीं दिया था कि व्याधे उसके पास पहुंच गये और उसे पकड़ लिये। हम लोग कुल शरीर और उसके कुल भागों तथा क्रियाओं का इतना आदर करते हैं कि उनमें

कोई नापाक या अस्वच्छ बात नहीं देखते। और हम इन क्रियाओं के विषय में विचार करने या बातचीत करने में घृणा करने की राय में सिवा मूर्खता के और कुछ नहीं देखते। असुखकर विषयों से मुँह फेर लेने के रिवाज का यह परिणाम हुआ है कि मानव जाति के बहुत से मनुष्य उन बीमारियों और अस्वस्थ दशाओं को भोग रहे हैं, जो उनकी इसी मूर्खता के कारण उपस्थित हो गई हैं। जो लोग इस अध्याय को पढ़ेंगे उनमें से बहुतों को हमारा कथन एक नये ज्ञान का उदय होगा—दूसरे लोग जो इन बातों से पहले ही से अभिज्ञ हैं, वे इस किताब में सच्ची बातों के उद्घाटन का स्वागत करेंगे, यह समझते हुए कि बहुतों का ध्यान इस विषय की ओर आकर्षित होने से उनका भला हो जायगा। हमारा अभिप्राय देहयंत्र की राख, शरीर से निकले हुए पुरीष के विषय में साफ २ बातें करने का है।

ऐसी साफ़ २ बातों की आवश्यकता है, यह बात इसीसे प्रमाणित होती है कि आज कल के मनुष्यों के तीन चौथाई, थोड़ा या बहुत बद्धकोष्ट की बीमारी और उसके दुःखदायी परिणामों को भोगते हैं। यह बात प्रकृति के विपरीत है और इसका कारण इतनी आसानी से दूर किया जाता है कि मनुष्य आश्चर्य करने लगता है कि क्यों ऐसी दशा क़ायम रक्खी जाती है। इसका एकही उत्तर हो सकता है इसके कारण और इस के निवारण से अनभिज्ञता। यदि हम मनुष्य की इस विपत्ति के दूर करने के कार्य में सहायक हो सकें, और इस प्रकार मनुष्यों को प्रकृति के मार्ग पर पुनः लौटा लाने से स्वाभाविक

दशा के स्थापित करने में समर्थ हो सकें तो हम उन लोगों के, जो इस अध्याय से घृणा करते हैं और इससे मुँह फेर लेते हैं, घृणाव्यजंक नाक भौं सिकोड़ने पर ध्यान न देंगे–और इन्हीं मनुष्यों को इस विषय के उपदेश की सब से अधिक आवश्यकता है।

जो लोग इस पुस्तक के पाचनेंद्रियों संबंधी अध्याय को पढ़े हैं, वे स्मरण करेंगे कि हमने इस विषय को उस स्थान पर छोड़ दिया था, जहां भोजन पतली अँतड़ियों में पहुँच गया था और उसमें का रस देह यंत्र द्वारा खींचा जा रहा था। अब आगे हम इस बात को देखेंगे कि जब देहयंत्र यथासाध्य कुल पोपणकारी रस को खींच लेता है तब भोजन की सीठी का क्या होता है–उस पदार्थ का जिसे देह यंत्र काम में नहीं ला सकता।

ठीक इसी जगह यह कह देना मुनासिब होगा कि जो लोग योगियों के तरीक़े से अपने भोजन को खाते हैं, जैसा इस किताब के अन्य अध्यायों में बतलाया गया है, उनके भोजन की सीठी उन मनुष्यों की सीठी की अपेक्षा जिनका भोजन थोड़ा ही बहुत पाचन और अपनाने के योग्य बन कर आमाशय में पहुंचाता है, मिक़दार में बहुत कम होगी। मामूली मनुष्य अपने भोजन का कम से कम आधा भाग सीठी के रूप में निकाल देता है—परन्तु जो लोग योगी तरीक़े का अनुसरण करते हैं उनकी सीठी बहुत ही थोड़ी और मामूली मनुष्यों की सीठी की अपेक्षा बहुत कम बदबूदार होती है।

अपने विषय को खूब समझने के लिये हमें शरीर के उन अवयवों को अच्छी तरह जान लेना चाहिये जिन्हें यह काम करना पड़ता है। बड़ी अंतड़ी या मलाशय वह अंग है जिस पर ध्यान देना होगा। मलाशय एक लम्बी नाली है, जो करीब २ पाँच फीट लम्बी होती है और जो पेट में दाहिनी और नीचे से ऊपर उठती है और ऊपर ही ऊपर बाईं ओर ऊपर जाती है, तब बाईं ही ओर नीचे जाती है और यहाँ पर यह मोड़ खाती है और कुछ पतली हो जाती है और अन्त में मल फेंकने के द्वार, गुदा में समाप्त हो जाती है।

पतली अँतड़ी खाये हुए भोजन की लुगदी को इस बड़ी अँतड़ी या मलाशय में, दाहिनी ओर नीचे की तरफ़ एक किवाड़दार द्वार से छोड़ देती है; यह किवाड़दार द्वार ऐसा बना रहता है कि उसमें से चीजें निकल तो सकती हैं पर उसमें प्रवेश नहीं पा सकतीं। कीड़े की शकल का मांसखंड, जहाँ एपेंडिसिटिस नामक बीमारी होती है, इसी द्वार के नीचे रहता है। पेट में दहनी ओर मलाशय सीधा ऊपर जाता है, तब मुड़ कर ऊपर ही ऊपर बाईं ओर जाता है, तब बाईं ही ओर सीधा नीचे आता है, जहाँ एक विशेष प्रकार का मोड़ होता है, वहाँ से कुछ पतला हो कर (जिसे पतली नाली कहते हैं) गुदा में पहुँचता है, यही शरीर का वह छिद्र है जहाँ से मल बाहर हो जाता है।

मलाशय एक बड़ी मलवाहिनी नाली है, इस मल को साफ़ तौर से बाहर निकाल बहाना चाहिये। प्रकृति का उद्देश है कि मल बहुत जल्द निकाल दिया जाय और मनुष्य अपनी

नैसर्गिक अवस्था में, जानवरों की भाँति, इस मल को बहुत शीघ्र ही निकाल बहाता है। परन्तु ज्यों २ वह अधिक सभ्य होता जाता है, त्यों त्यों उसे मल के बहा देने में कम सुविधा होती जाती है और इस लिये वह प्रकृति के हुक्म की पाबन्दी को मुल्तवी कर देता है; अन्त में वह हुक्म देते २ थक जाती है तब अपने अनेक कामों में से किसी दूसरे काम में लग जाती है। मनुष्य इस अस्वाभाविक अवस्था को, पानी पीना कम कर के और भी बढ़ा देता है और मल को मुलायम, नर्म, ढीला बनाने के निमित्त ही आवश्यक पानी में कमी नहीं करता, किन्तु, शरीर भर में पानी की इतनी कमी कर देता है कि प्रकृति निराश हो कर शरीर के अन्य भागों में थोड़ा बहुत पानी पहुँचाने के लिये इसी मलाशय के रहे सहे थोड़े पानी को मलाशय की दीवारों द्वारा खींचने लगती है। जब चश्मे का पानी नहीं पाती तब गन्दी मोरियों ही के पानी से काम निकालती है। नतीजे की कल्पना आप ही कीजिये। मनुष्य जो इस मलाशय के मल को, पानी कम कर देने के कारण, निकाल नहीं सकता उसी का परिणाम बद्ध-कोष्ठ होता है और यह बद्ध-कोष्ठ अनेक अस्वस्थताओं का उत्पत्ति स्थान है, जिसकी वास्तविक दशा पर किसी का ध्यान नहीं पहुँचता। बहुत से मनुष्य, जिनका प्रतिदिन मलविसर्जन भी होता है, कोष्ठ-बद्ध के रोग में फँसे रहते हैं यद्यपि उनको इसकी ख़बर भी नहीं रहती। मलाशय की दीवारों में जमा हुआ सख्त मल जकड़ कर चिपट जाता है और कुछ तो वहाँ बहुत दिनों से चिपटा पड़ा है; जकड़ कर चिपटे हुए मल के

वीच में एक छोटे छिद्र द्वारा प्रति दिन के मल का थोड़ा भाग वाहर निकल जाया करता है। वद्ध-कोष्ठ उस रोग को कहते हैं, जिसमें, मलाशय पूरा साफ़ और चिपटे हुए मल के कारण निर्बाध नहीं रहता।

जव मलाशय पुराने चिपटे हुए मल से भर जाता है, या अंश मात्र भी भर जाता है तो वह कुल शरीर के लिये विष उत्पन्न करता है। मलाशय की दीवारें होती हैं, जो मलाशय की चीज़ों का रस खींचा करती हैं। डाक्टरी के वर्तावों से प्रत्यक्ष है कि मलाशय में दवा छोड़ने से वह सव शरीर में पहुंच जाती है। इस प्रकार दवा छोड़ी हुई शरीर यंत्र के दूसरे भागों में पहुंच जाती है और जैसा पहले कहा गया है, मल के द्रव भाग को देहयंत्र खींच लेता है; मोरी का गंदा जल प्रकृति के काम में, शरीर में स्वच्छ जल कम पहुंचाने के कारण, लाया जाता है। कोष्ठवद्ध मलाशय में कितने दिनों तक पुराना मल ठहरेगा, जल्दी विश्वास में नहीं आता। ऐसी घटनाएं लिखी हुई मिलती हैं कि जव मलाशय की सफ़ाई की गई है तव उस में से वहुत महीनों पहले खाये हुए फलों के बीज मल के साथ निकले हैं। रेचक औषधियों से ऐसे पुराने और सख्त लिपटे हुये मल नहीं निकलते, क्योंकि रेचक औषधियां केवल आमाशय और पतली अँतड़ियों के द्रव्यों को ढीला करती हैं, और मलाशय में चिपटे हुए पुराने सख्त मल के वीच से होकर उन्हें निकाल देती हैं। कुछ मनुष्यों के मलाशय में तो पुराने मल जमा होकर मुलायम पत्थर के कोयले की भांति सख्त होगये रहते हैं यहां तक कि

उनका पेट भी फूल जाता और सख्त हो जाता है। यह पुराना मल कभी इतना बुरा हो जाता है कि इस में कीड़े पड़ जाते हैं और उसी में अंडे देते और वृद्धि करते हैं। जो मल पतली अंतड़ियों से मलाशय में आता है वह गाढ़ी लेई की भांति होता है और यदि मलाशय साफ़ और चिकना हुआ और गति स्वाभाविक हुई तो जरा सा और ठोस और हलके रंग का होकर उसे शरीर के बाहर हो जाना चाहिए था। मलाशय में जितनी ही देर मल रहता है उतना ही सख्त और सूखा होता जाता है और उतनाही उसका रंग भी गाढ़ा हो जाता है। जब काफी पानी नहीं पिया जाता और प्रकृति के तक़ाज़े को फ़ुरसत के वक्त के लिये मुलतवी कर दिया जाता है और फिर भुला दिया जाता है तब सूखने और सख्त होने की क्रिया प्रारंभ होजाती है। और जब बहुत देर के पश्चात् मल त्यागने की रस्म अदा की जाती है तो मल का एक भाग बाहर जाता है, शेष मलाशय में चिपटने के लिये रह जाता है। दूसरे दिन थोड़ा और भी मल इस में चिपट जाता है और इसी भांति हुआ करता है जब तक कि जीर्ण बद्धकोष्ट की बीमारी नहीं हो जाती, और उसके अनुयायी रोग जैसे बदहज़मी, पित्ताधिकता, यकृत्‌रोग, गुर्दे की बीमारियां आदि नहीं हो जातीं--वस्तुतः इस मलाशय की गंदी अवस्था से सभी बीमारियों को तेजी पहुंचती है और बहुत सी बीमारियां तो ख़ास इसी कारण से पैदा ही होती हैं। स्त्री रोगों में आधे तो इसी अवस्था द्वारा संवर्धित या उत्पन्न होते हैं।

इस मल को देह यंत्र के रुधिर में खिच जाने के दो

तरीक़े होते हैं, पहले तो देह यंत्र की पानी पाने की इच्छा; दूसरे प्रकृति का जी तोड़ कर उद्योग कि मल को खींच कर पसीने, गुर्दों और फेफड़ों की राह निकाल दे। प्रकृति के इस प्रकार उस मल के दूर करने के उद्योग का, जो मलाशय द्वारा दूर होना चाहिये था, परिणाम दुर्गंध पसीना और दुर्गंध सांस हुआ करते हैं। प्रकृति इस मल के भीतर रहने की बुराइयों को जानती है, और इस लिये इस मल को दूसरे मार्गों से निकालने का प्रखर उद्योग करती है, चाहे इस उद्योग से रुधिर और शरीर अर्द्धविषाक्त ही क्यों न हो जायं। मलाशय की इस दुरवस्था ही के कारण अनेक बीमारियां और पीड़ायें उत्पन्न हो जाती हैं इसका सर्वोत्तम प्रमाण यह है कि जब कारण एक बार दूर कर दिया जाता है (अर्थात् मलाशय साफ़ कर दिया जाता है) तो मनुष्य ऐसी २ बीमारियों से अच्छे होने लगते हैं जिनका ज़ाहिरा कुछ भी सम्बन्ध कारण से नहीं था। मलाशय की दुरवस्था के कारण जो बीमारियां पैदा होती और बढ़ती हैं उनके अलावे यह बात भी बहुत ही सत्य है कि ऐसे मलाशयवाले के शरीर में छूत की बीमारियां और टीफाइड ज्वर आदि की बीमारियां बहुत दौड़ती हैं; क्योंकि उनका ऐसा बुरा मलाशय इन बीमारियों के कीटाणुओं के अनुकूल शरीर को बना देता है। जो मनुष्य अपने मलाशय को साफ़ रखता है उसको इन बीमारियों में पड़ने का बहुत ही कम भय रहता है। तनिक कल्पना तो कीजिए कि यदि हम म्यूनिसिपेलिटी की गंदी मलप्रवाहिनी मोरियों की गंदगी को

अपने शरीर के भीतर भर लें तो क्या परिणाम हो—क्या यह कोई आश्चर्य की बात है कि जिस गंदगी के बाहर पड़े रहने से बीमारियां फैलती हैं वही गंदगी नस २ में फैली रहे और बीमारी न हो । मेरे दोस्तो, अक़िल से काम लीजिये ।

अब हम समझते हैं कि हमने बहुत सी विपत्तियों के कारण (गंदे मलाशय) के विषय में बहुत कुछ कह दिया, (हम इस विषय में और भी कड़ी २ बातों से सैकड़ों सफ़े भर दें पर) शायद आप ऐसी दशा में आ गये हैं कि पूछें—"अच्छा मैं विश्वास करता हूँ कि ये सब बातें सही हैं और जो बात मुझे तकलीफ़ दे रही है, वह बात बहुत समझ में आ गई, परन्तु इस गंदगी को दूर करने और स्वाभाविक दशा प्राप्त करने के लिये हमें क्या करना चाहिये ?" अच्छा, हमारा उत्तर यह है—"पहले तो आप मल के अस्वाभाविक जखीरे को दूर कीजिये तब प्रकृति के पथ का अनुसरण कर के अपने को मधुर, साफ़ और स्वस्थ बनाइये । हम इन दोनों बातों के करने की तरकीब बताने का यत्न करेंगे ।

यदि मलाशय में थोड़ा मल जमा है तो मनुष्य उसे पानी पीने में अधिकता कर के और मल त्यागने की स्वाभाविक गति, इच्छा और आदत को उत्तेजित करने से और मलाशय के देहाणुओं की चेतनता पर असर पहुँचाने से (जैसा आगे वर्णन होगा) दूर कर सकता है । परन्तु उन मनुष्यों में से जो मनहीं मन हम से यह प्रश्न कर रहे हैं आधे से अधिक ऐसे हैं जिनके मलाशय थोड़ा बहुत पुराने, सख्त, चिपटे हुए, हरे रंग के उस मल से भरे हुए हैं जो वहाँ महीनों, बल्कि

और भी अधिक समय से पड़ा है; इनके लिये तो विशेष उपाय बतलाना पड़ेगा। इस विपत्ति को बुलाने में चूँकि वे प्रकृति के पथ से दूर चले गये हैं, इसलिये हमें पहले प्रकृति को सहायता पहुँचानी चाहिये जिससे अब तो उसे काम करने के लिये साफ़ मलाशय मिले। उपाय के इशारे के लिये जानवर योनि में ढूँढ़ना चाहिये। सैकड़ों वर्ष हुए कि भारतवर्ष के निवासियों ने देखा कि एक प्रकार की लम्बी टांगों वाली चिड़िया—जिसके बड़े २ चोंच थे—बड़ी दूर की यात्रा कर के बड़ी बुरी अवस्था में लौट आई थी, जिसका कारण या तो कोष्ठबद्ध उत्पन्न करने वाले फलों का खाना या जहाँ गई थी वहाँ पीने के पानी की कमी थी—सम्भव है कि दोनों बातें रही हों। ऐसी चिड़िया बहुत ही थकी हुई दशा में नदी के तीर पर पहुँची, जो निर्बलता के कारण अब उड़ भी न सकती थी। चिड़िया ने तब अपने चोंच और मुँह को नदी के पानी से भर लिया और तब चोच को गुदा में डाल कर उसमें पानी भरने लगी, जिससे थोड़े ही अर्से में उसे आराम मिलने लगा। इस क्रिया को चिड़िया ने कई बार किया जब तक उसकी अँतड़ी बिलकुल साफ़ न हो गई। तब अच्छी तरह बैठ कर आराम करने लगी जब तक उसमें फिर जीवट न आ गया; फिर नदी से खूब पानी पी कर दृढ़ और चंचल बन कर उड़ गई।

कुलपतियों और पुरोहितों ने जब इस घटना को और चिड़ियों पर उसके आश्चर्यजनक प्रभाव को देखा तो इस विषय में विचार करने लगे और किसी ने कहा कि

इसकी परीक्षा वृद्ध मनुष्यों में से किसी पर की जानी चाहिये, जो परिश्रम की कमी और बैठे रहने की आदत से प्रकृति के सीधे मार्ग से विचलित हो गये थे और कोष्ठबद्ध के रोग में पड़ गये थे। अब उन लोगों ने पिचकारी की भाँति का एक औज़ार डंटी में सूराख़ वाली घास का बनाया और इसके द्वारा कोष्ठबद्ध वाले वृद्धों की अंतड़ी में पानी छोड़ने लगे। परिणाम बड़ा आश्चर्यजनक हुआ। वृद्ध मनुष्यों को मानों जीवन का नया पट्टा मिल गया, उन लोगों ने नई दुलहिन से विवाह किया और वे कुल के उद्यमों में लग गये और फिर उन्होंने कुलपति का भार अपने सिर ले लिया जिस से नवयुवकों को बड़ा आश्चर्य हुआ जो इनके जीवन से पहले बहुत निराश हो चुके थे। दूसरे कुलों के वृद्ध मनुष्यों तक ये समाचार पहुँचे और वे नवयुवकों के कंधों पर चढ़ कर इनके पास आने लगे—और जब लौटे तब बिना सहायता के पैदल गये। तब का जो वर्णन सुनने में आता है उससे अनुमान होता है कि उनकी पिचकारी की क्रिया बड़ी हिम्मत की रही होगी, क्योंकि उसमें बहुत अधिक पानी का वर्णन किया जाता है, और प्रयोग के समाप्त होने तक उनका मलाशय अच्छी तरह साफ़ हो जाता रहा होगा और ऐसी दशा का हो जाता रहा होगा कि उसमें अब फिर विष का भय न रह जाता रहा होगा। परन्तु हम उतने अधिक पानी के प्रयोग का उपदेश नहीं करते—स्मरण रखिये हम लोग तब के पुराने कुल वाले मनुष्य नहीं हैं।

हाँ, अस्वाभाविक दशा के कारण मलाशय के इन गंदे

द्रव्यों को दूर करने के लिये प्रकृति को अस्थायी सहायता की आवश्यकता पड़ती है और, जमे मल को दूर करने के लिये लम्बी चोंचों वाली चिड़ियों और हिन्दू कुलपतियों के उदाहरण को, इस बीसवीं शताब्दी के परिष्कृत औजारों द्वारा, अनुसरण करना ही सर्वोत्तम उपाय है। जिस वस्तु की आवश्यकता है वह एक रबर की सस्ती पिचकारी है। यदि आपके पास एनिमा नामक पिचकारी हो तो और भी अच्छी बात है, नहीं तो मामूली ही पिचकारी से, जिसमें रबर का चुल्ला लगा हो, काम निकल सकता है। एक पाइंट गरम पानी लीजिये—इतना गरम हो कि जिसे हाथ आराम से सह सके। पानी को पिचकारी द्वारा मलाशय में छोड़िये। कुछ अर्से तक मलाशय में पानी को रोके रहिये और तब शरीर से निकाल डालिये। इस अभ्यास के लिये रात का समय बहुत अच्छा है। दूसरी रात दो पाइंट गरम पानी लीजिये और उसका भी वैसे ही प्रयोग कीजिये। तब एक रात नागा कर दीजिये और बाद वाली रात में तीन पाइंट पानी लीजिये। तब दो रात नागा कीजिये और तीसरी रात को ४ पाइंट पानी लीजिये। शनैः २ आपको मलाशय में पानी रोकने का अभ्यास हो जायगा और अधिक पानी से मलाशय खासी तौर से साफ़ हो जायगा, थोड़ा पानी पहले से ढीले मल को धो डालेगा और सख्त मल को दीवारों से छुड़ा कर उसे खंड २ कर देगा। चार पाइंट अर्थात् दो कार्ट पानी से भय मत खाइये। आपका मलाशय इससे भी अधिक पानी धारण कर सकता है; कोई २ मनुष्य तो चार कार्ट पानी ले

लेते हैं, परन्तु हम इतने पानी को अतिशय समझते हैं। पानी लेने के पहले और पीछे पेट को मलिये और जब क्रिया समाप्त हो जाय तो योगी की पूरी साँस का अभ्यास कर डालिये जिस से आपको उत्तेजना मिल जाय और रुधिर संचार में सौम्य आ जाय।

इन प्रयोगों से जो मल निकलेगा वह नाज़ुक दिमाग़ वालों को वहुत ही अरुचिकर होगा, परन्तु, प्रश्न तो मल को सर्वदा के लिये दूर कर देने का है। इस प्रयोग से जो मल पहले आता है वह वहुत ही दुर्गंध और घृणोत्पादक होता है, परन्तु, जैसा कैसा क्यों न हो, शरीर के भीतर रखने की अपेक्षा तो इसे वाहर ही निकाल देना अच्छा है। यह भीतर रहेगा तो भी तो उतना ही खराव रहेगा जितना वाहर निकलने पर है। हम ऐसी घटनाओं को भी जाने हुए हैं जिन में वहुत मल के वड़े २ टुकड़, सख्त और हरे, जैसे तूतिया के खंड हों, मनुष्यों के शरीर से निकले हैं, और इतनी वदवू उसमें से निकली है कि जिससे पक्का प्रमाण मिल गया है कि इसके भीतर रहने से कितनी हानि हो गई होगी। नहीं, यह चित्त प्रसन्न करने वाला पाठ नहीं है, परन्तु यह पाठ भी आवश्यक है कि आप भीतरी सफ़ाई की महिमा को समझ जायँ। आप को ऐसा जान पड़ेगा कि जिस सप्ताह में आपने मलाशय को साफ़ किया है उस सप्ताह में आप को स्वाभाविक मल त्यागने की हाजत कम या विल्कुल नहीं हुई है। इसकी कुछ चिन्ता नहीं है, क्योंकि पानी ने उस मल को धो वहाया है जिसे आप मल त्यागने के समय निकालते।

जब मल की सफ़ाई की क्रिया समाप्त हो जावेगी तो उसके दो या तीन दिन पश्चात् आप को स्वाभाविक रीति से मल त्यागने की इच्छा होने लगेगी।

अब इसी जगह हम आप का ध्यान इस बात की ओर दिलाते हैं कि हम सर्वदा लगातार पिचकारी के प्रयोग का उपदेश नहीं देते—हम इसको स्वाभाविक आदत नहीं समझते, और हमारा यह विश्वास है कि यदि स्वाभाविक आदतों ही का अवलम्बन किया जायगा तो स्वाभाविक रीति से मल का त्यागना हुआ करेगा और पिचकारी के प्रयोग की आवश्यकता ही न पड़ेगी। हम पिछले ही जमा हुए मल की सफ़ाई के लिये पिचकारी के प्रयोग का उपदेश करते हैं। महीने में एक वार यदि मलके बटुरने को रोकने के लिये पिचकारी ले ली जाय तो उसमें हम हानि नहीं देखते। अमेरिका में बहुत से ऐसे स्वास्थ्यसम्प्रदाय हैं जो सर्वदा पिचकारी के प्रयोग करने का उपदेश देते हैं। हम उनसे सहमत नहीं हो सकते, क्योंकि हमारा सिद्धान्त यह है कि "प्रकृति के पथ पर लौट आओ" और हमारा विश्वास है कि प्रकृति नित्य का पिचकारी का प्रयोग नहीं चाहती। योगियों का विश्वास है कि काफ़ी ताज़ा शुद्ध पानी पिया जाय और नियमानुकूल मल त्यागा जाय और मलाशय से कुछ "बात कह" ली जाय तो बद्ध-कोष्ठ से बचे रहने के लिये जो कुछ आवश्यक है सभी हो जाय।

एक हफ़्ते की पिचकारी (धौति) क्रिया के पश्चात् (और उससे पहले भी) अच्छी तरह से पानी पीना प्रारंभ करो,

जैसा हम उस विषय के अध्याय में कह आये हैं। प्रतिदिन दो क्वार्ट पानी पिया करो इससे तुम्हें उन्नति दिखाई देने लगेगी। समय नियत करके उसी समय पर नित्य मल त्यागने के निमित्त जाया करो चाहे हाजत मालूम होती हो या न मालूम होती हो। धीरे २ आप की आदत स्थिर हो जायगी, और प्रकृति आदत डालने की बड़ी उत्सुक रहती है। सम्भव है कि आप को मल त्यागने की आवश्यकता हो पर वह आप को मालूम न पड़ती हो क्योंकि आप ने तो बार २ लापरवाही कर के वहां की चेतना नाड़ी को मृतप्राय कर दिया है, इस लिये आप को नये सिरे से फिर प्रारम्भ करना पड़ेगा। इस बात को भूलिये मत—यह सीधी परन्तु कारगर बात है।

जब आप पानी पीने लगें तब स्वतः सूचना दिया करें तो उसे लाभकर पावेंगे। मन ही मन यों कहिये, "हम इस पानी को इसलिये पी रहे हैं कि यह हमारे शरीर यंत्र में आवश्यक द्रव उपस्थित करे। यह हमारी अंतड़ियों को प्रकृति के उद्देश के अनुसार स्वतंत्रता से और नियमितरूप पर संचालित करेगा।" आप अपने देह यंत्र में जो कार्य साधा चाहते हों उसका ध्यान बनाये रखिये तो जल्द ही फल सिद्ध होगा।

अब एक ऐसी बात है जो आपको, जब तक आप उसके पूरे विवरण को न समझेंगे, फ़जूल सी मालूम हो सकती है। (हम यहां उसकी क्रिया मात्र देते हैं, और उसके विवरण को आगे अन्य अध्याय में समझावेंगे)। यह मलाशय से "बात कहना" है। पेटपर, मलाशय के स्थानों पर हाथ से मुलायम थापियां दो और उससे कहो, (हां, बातें

करो) "देखो मलाशय, हमने तुम्हारी अच्छी तरह से सफ़ाई कर दी है, और तुम्हें साफ़ और ताज़ा बना दिया है—हम तुम्हें उचित रीति से अपना काम करने के लिये पानी दे रहे हैं—हम नियमित आदतें डाल रहे हैं कि जिससे तुम्हें काम करने का पूरा अवसर मिले–और अब तुम्हें काम करने में लग जाना चाहिये"। मलाशय के स्थान पर कई बार थापियां दीजिये और कहा कीजिये "अब तुम्हें करना ही पड़ेगा।" और तुम्हें मालूम होगा कि मलाशय उसे कर डालेगा। शायद यह बात आपको लड़कों की खेल सी प्रतीत होती है–आप इसके अर्थ को तब समझेंगे जब आप अस्वायत्त अवयवों के शासन विषयक अध्याय को पढ़ेंगे। यह वैज्ञानिक बात के सिद्ध करने का सीधा उपाय है–प्रबलशक्ति को प्रचालित करने की सरल रीति है।

अब मेरे मित्रो, यदि आप कोष्ठबद्ध के रोग को भोगे हैं, और कौन नहीं भोगे हैं, तो आप ऊपर लिखी सलाह को लाभदायक पावेंगे। इससे फिर वही गुलाबी कपोल और सुन्दर चमड़े हो जायंगे–इससे सूखापन, वह खारदार ज़बान वह दुर्गंध श्वास वह दुःखदायी यकृत् और भरे मलाशय से जो जो बीमारियों का परिवार उठ खड़ा होता है–वह अवरोधित नाली जो सब दोषों की मूल है–सब दूर हो जावेंगे। इस क्रिया की परीक्षा कीजिये तो आप जीवन का सुख भोगने लगेंगे और स्वाभाविक स्वच्छ तथा स्वस्थ मनुष्य हो जायंगे। अब समाप्ति के समय अपने ग्लास को चमकते साफ़ ठंढे पानी से भर लीजिये और इस स्वास्थ्य प्रार्थना में सम्मिलित

हो जाइये "यह स्वास्थ्य के लिये-पुष्कल स्वास्थ्य के लिये है।" और ज्यों २ धीरे २ पानी को पीजिये मन ही मन यों कहते जाइये "यह पानी हमारे लिये स्वास्थ्य और बल का लाने वाला है-यह स्वयं प्रकृतिदत्त पुष्टिकर औषधि है।"

चौदहवाँ अध्याय।

योगियों की श्वासक्रिया।

जीवन बिलकुल श्वास लेने की क्रिया पर अवलम्बित है। "श्वास ही जीवन है।"

पूर्वीय और पश्चिमीय लोग विचारों और नामावलियों में चाहे कितना ही, भेद करें पर इन मूल-तत्त्वों में दोनों सहमत हैं।

श्वास ही लेना जीना है, और श्वास के बिना जीवन नहीं है। केवल उच्च योनि ही के जन्तु जीवन और स्वास्थ्य के लिये श्वास पर अवलम्बित नहीं रहते, किन्तु नीच योनि के जन्तुओं को भी जीवन के लिए श्वास लेना पड़ता है, और पौधों को भी अपनी लगातार सत्ता रखने के लिये हवा के आश्रित होना पड़ता है।

नवजात शिशु एक लम्बी गहरी सांस खींचता है, उसे एक क्षण उसकी प्राणदायिनी शक्ति ग्रहण करने के लिये रोक रखता है, और तब फिर लम्बी प्रश्वास द्वारा उसे बाहर निकाल देता है, और अहा! उसका इस पृथ्वी पर का जीवन शुरू हो जाता है। वृद्ध मनुष्य निर्बल श्वास देता है, श्वास लेना बन्द कर देता है और उसका जीवन समाप्त हो जाता है। नवजात शिशु की पहली सांस से लेकर मरते हुए मनुष्य की अन्तिम सांस तक सांस लेने की लगातार कहानी रहती है। जीवन श्वासों ही की एक शृंखला है।

श्वास लेना, शरीर की क्रियाओं में से सर्व प्रधान क्रिया समझी जा सकती है, क्योंकि वस्तुतः अन्य सभी क्रियायें इसी के आश्रित रहती हैं। मनुष्य विना खाये कुछ समय तक रह सकता है; उससे भी लघुतर समय तक विना पानी पिये रह सकता है; परन्तु विना श्वास लिये उसका जीवन केवल कतिपय क्षण ही द्वारा नापा जा सकता है।

मनुष्य जीवन के लिये श्वास पर ही अवलम्बित नहीं रहता, किन्तु वह सही सांस लेने की आदत पर अवलम्ब करता है कि जिससे लगातार जीवट और रोगों से छुटकारा बना रहे। अपने श्वास लेने की शक्ति पर विचार पूर्वक अधिकार रखने से इस भूमि पर के हमारे आयु के दिन बढ़ जायंगे, क्योंकि हमें अधिक जीवट और रोगों से मुक़ाबिला करने की शक्ति मिलती रहेगी; और इसके विपरीत अविचार और असावधानी की सांस से जीवट घट जाने के कारण और रोगों के लिये द्वार खुले रहने से आयु के दिन घट जाते हैं।

मनुष्य को उसकी स्वाभाविक अवस्था में श्वासक्रिया की शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। नीच जन्तुओं और बच्चों की भांति; वह स्वाभाविक और उचित रीति से सांस लेता था, परन्तु सभ्यता ने उसे इस और अन्य विषयों में बिलकुल बदल दिया है। उसने चलने, खड़ा होने और बैठने की अनुचित रीतियों को धारण कर लिया है, जिन्होंने उसके स्वाभाविक और सही तरीके से सांस लेने के नैसर्गिक अधिकार को उससे छीन लिया है। उसने सभ्यता का महँगा

मूल्य दिया है। जंगली मनुष्य आज भी स्वाभाविक रीति से सांस लेता है, यदि सभ्य मनुष्य की सभ्यता की छूत से वह भी कलंकित न हो गया हो।

उन सभ्य मनुष्यों की औसत, जो सही सांस लेते हैं, बहुत थोड़ी है, और इसका परिणाम संकुचित छातियों, झुके हुए कंधों, और श्वास लेने के अवयवों की भयंकर बीमारियों की वृद्धि में, जिसमें वह संघातक राक्षस भी शामिल है, जिसे क्षयी कहते हैं, द्योतित होता है। प्रख्यात प्रमाण पुरुषों ने कहा है कि सही सांस लेने वालों की एक पीढ़ी भी मानव-जाति का उद्धार कर दे, और बीमारी इतनी विरल हो जाय कि वह आश्चर्य की दृष्टि से देखी जाने लगे, चाहे यह पूर्वी या पश्चिमी दृष्टि से देखा जाय, सही सांस लेने और स्वास्थ्य का संबंध तुरत देखने में और समझ में आ जाता है।

पश्चिमी शिक्षा बतलाती है कि शारीरिक स्वास्थ्य बहुत कुछ सही सांस लेने पर अवलंबित है। पूर्वी आचार्य केवल यही नहीं स्वीकार करते कि उनके पश्चिमी भाई सही हैं, किंतु कहते हैं कि उचित सांस लेने की आदत से शारीरिक लाभों के अतिरिक्त मनुष्य की मानसिक शक्ति, उसका सुख आत्माधिकार स्वच्छ दृष्टि, सदाचार, और यहां तक कि उस की आध्यात्मिक उन्नति भी श्वास विज्ञान को समझ लेने से हो सकती है। पूर्वीय दर्शन के संप्रदाय के संप्रदाय इस विज्ञान के आधार पर स्थापित हुए हैं, और इस विद्या को यदि पश्चिमीय जातियां ग्रहण करेंगी और अपने विशेष गुण के कारण इसे कार्यरूप में परिणत करेंगी तो उनमें आश्चर्य-

उनके परिणाम उत्पन्न कर देंगी। पूर्व देश के मंत्र पश्चिम के प्रयोग से जब मिलेंगे तो बड़ा ही उत्तम फल होगा।

इस जगह योगियों के श्वास विज्ञान का वर्णन किया जायगा जिसमें केवल उतनी ही विद्या नहीं है, जो पश्चिमी शरीर शास्त्रियों और स्वास्थ्याचार्यों को ज्ञात है, किन्तु, इसमें योग का गूढ़ विषय भी है। यह केवल शारीरिक स्वास्थ्य के मार्ग को उसी तरीक़े से नहीं बतलाती, जिसे पश्चिमी वैज्ञानिक गहरी सांस आदि कहते हैं, परंतु ऐसी तहों में भी प्रवेश करती है, जो बहुत कम लोगों को ज्ञात हैं।

योगी ऐसे अभ्यासों को करता है, जिससे उसे शरीर पर अधिकार प्राप्त हो जाता है और वह इस योग्य हो जाता है कि किसी इन्द्रिय या भाग में जीवनशक्ति या प्राण को अधिक प्रवाह के साथ भेज सकता है. और उस इन्द्रिय या भाग को अधिक दृढ़ और बलवान् बना सकता है। वह सही साँस लेने के विषय में उन सब बातों को जानता है जिन्हें उसके पश्चिमी भाई जानते हैं, परन्तु, वह यह भी जानता है कि हवा में आक्सीजन, हैड्रोजन और नैट्रोजन के अलावे कुछ चीज और भी है, और रुधिर में केवल आक्सीजन मिश्रित करने के सिवाय कुछ और बात भी सिद्ध की जाती है। वह प्राण के विषय में भी कुछ जानता है, जिससे उसका पश्चिमी भाई अनभिज्ञ है, और वह उस महत्शक्ति तत्त्व के प्रयोग की प्रकृति और रीति को बहुत अच्छी तरह जानता है, और उसे पूरा ज्ञान है कि उस प्राण का प्रभाव मानव शरीर और मन पर कैसा पड़ता है। वह जानता है कि ताल युक्त श्वास

(प्राणायाम) द्वारा मनुष्य प्रकृति के कम्प में अपने को मिला सकता है और अपनी गुप्त शक्तियों के विकाश में सहायता पहुँचा सकता है । वह जानता है कि सुनियमित श्वास द्वारा वह अपनी और अन्यों की केवल बीमारियों ही को नहीं दूर कर सकता, किन्तु, भय और क्रोध आदि दुर्वृत्तियों को भी दूर कर सकता है ।

श्वास के विषय के विचार में पहले हम को उस यन्त्र की कारीगरीयुक्त रचना पर ध्यान देना होगा, जिसके द्वारा श्वास की गति संचालित होती है । श्वासक्रिया की कारीगरी, (१) फेफड़ों की आकुञ्चन और प्रसारण की गति और (२) छाती के उस खोखले की बग़लों और तह की क्रिया से, जिसमें फेंफड़े रहते हैं, द्योतित होती है । छाती, गले और पेट के बीच के पिण्ड का वह भाग है जिसके खोखले में (जिसे छाती का खोखला कहते हैं) हृदय और फेफड़े होते हैं। यह रीढ़ की हड्डी, पँसलियों और उनको जोड़ने वाली मुलायम हड्डियों (कुर्री), सीने की हड्डी और नीचे पेट और छाती को पृथक् करने वाली माँस की चद्दर से घिरी होती है । इसकी उपमा सब ओर से बन्द कुब्बेदार बकस से दी गई है, जिसका कुब्बा ऊपर की ओर होता है, पीछा रीढ़ की हड्डी से बनता है, आगा छाती की हड्डी से और बग़लें पसलियों से बनती हैं।

पसलियाँ संख्या में २४ होती हैं, प्रत्येक बग़ल में बारह २, और रीढ़ की हड्डी की दोनों ओर से निकलती हैं। ऊपरी ७ जोड़ियाँ तो सच्ची पसलियाँ कही जाती हैं, जो सीधे छाती की

हड्डी से जुटी होती हैं; और निचली पाँच जोड़ियाँ झूठी पसलियाँ या हिलने डोलने वाली पसलियाँ कही जाती हैं, क्योंकि ये उस प्रकार जुटी नहीं होतीं; इनमें की भी दो ऊपर वाली तो मुलायम हड्डी (कुर्री) द्वारा अन्य पँसलियों से जुटी होती हैं; शेष में कुर्री भी नहीं होती और उनके अगले सिरे बिलकुल छुट्टे होते हैं।

श्वासक्रिया में पसलियाँ ऊपरी दो तह मांस पेशियों से सञ्चालित होती हैं। छाती और पेट के बीच वाली मांस की चद्दर, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है, छाती के खोखले को पेट से पृथक् करती है।

श्वास भीतर खींचने की क्रिया में मांसपेशियाँ फेंफड़ों को फैला देती हैं. जिससे फेफड़ों में रिक्त स्थान उत्पन्न हो जाता है, और उस स्थान को भरने के लिये प्रख्यात भौतिक नियम के अनुसार बाहर से हवा भीतर जाती है। श्वास लेने में जिन मांसपेशियों का काम पड़ता है, उन्हीं पर प्रत्येक श्वास-विषयक बात अवलम्बित है, इसलिये उन मांसपेशियों को हम सुविधा के लिये "श्वास वाली मांसपेशियाँ" कह सकते हैं। बिना इन मांसपेशियों की सहायता के फेफड़े फैल नहीं सकते, और इन्हीं मांसपेशियों के उचित प्रयोग और उन्हें अपने आयत्त में रखने पर, श्वास-विज्ञान अधिकतर अवलम्बित है। इन मांसपेशियों को उचित रीति से अपने आयत्त में रखने से फेफड़ों को उनकी चरमसीमा तक फैला सकते हैं और इस तरह हवा के प्राणदायक गुणों को अधिक से अधिक मात्रा में इस देह यन्त्र के लिये ग्रहण कर सकते हैं।

योगी लोग श्वासक्रिया को चार साधारण तरीक़ों में बाँटते हैं, अर्थात्:—

(१) उच्च श्वासक्रिया ।

(२) मध्य श्वासक्रिया ।

(३) नीची श्वासक्रिया ।

(४) योगी की पूर्ण श्वासक्रिया ।

हम पहले तीन तरीक़ों को साधारण वर्णन कर देंगे और चौथे तरीक़े का, जिसके आधार पर योगी का श्वास-विज्ञान स्थापित है, अधिक विस्तार से वर्णन करेंगे ।

(१ ऊंची सांसक्रिया ।)

इस प्रकार की सांस को पश्चिमी लोग हँसली की हड्डी की सांस कहते हैं । इस प्रकार से सांस लेने वाला मनुष्य पंसलियों को उठा देता और हंसली की हड्डी और कंधों को ऊपर उभाड़ देता है, साथही पेट को भीतर खींच लेता है, और उसमें की चीज़ों को ऊपर खींच कर छाती और पेट को पृथक् करने वाली चद्दर से भिड़ा देता है, जो चद्दर भी ऊपर खिंच जाती है ।

छाती और फेफड़ों का ऊपरी भाग, जो सब से छोटा होता है, काम में लाया जाता है, और इसलिये कम से कम मात्रा में हवा फेफड़ों में जाती है । इसके अतिरिक्त मांस की चद्दर का ऊपर उठ जाने से उस ओर फैलाव नहीं हो सकता । छाती की बनावट को अध्ययन करने से मनुष्य के चित्त पर यह बात बैठ जावेगी कि इस प्रकार श्वास लेने में

अधिक से अधिक परिश्रम के प्रयोग से कम से कम लाभ होता है।

ऊँची श्वास क्रिया मनुष्य की जानी हुई क्रियाओं में से सबसे निकृष्ट है और इससे अधिक से अधिक शक्ति ख़रच करने की आवश्यकता पड़ती है और थोड़ा से थोड़ा लाभ होता है। यह शक्ति बरबाद करनेवाला और कम लाभ देनेवाला तरीक़ा है। यह पश्चिमी जातियों में बहुत प्रचलित है; बहुत सी औरतें इसी श्वास में मुब्तला हैं; और गवैये, पादरी वकील और दूसरे लोग, जिन्हें बेहतर ज्ञान होना चाहिए था, वे भी मूर्खता से इसी तरीक़े को वर्तते हैं।

शब्दोत्पादक अवयवों और श्वास के अवयवों की बहुत सी बीमारियां इसी बुरे तरीक़े से सांस लेने का सीधा नतीजा है; और इस रीति से सांस लेने में नाज़ुक अवयवों पर जो जो तनाव पड़ता है, उस से वे कड़ी और बुरी आवाजें पैदा होती हैं, जो चारो ओर सुनाई दिया करती हैं। बहुत से मनुष्य, जो इस प्रकार सांस लेते हैं, मुंह से सांस लेने की बुरी आदत में पड़ जाते हैं, जिसका वर्णन आगे चलकर किया जायगा।

यदि शिष्य को कुछ भी संदेह इस प्रकार साँस लेने के विषय में कही हुई बातों पर हो तो उसे स्वयम् परीक्षा कर लेनी चाहिए पहले वह फेफड़ों में से सब हवा निकाल दे, तब सीधा खड़े होकर, जिसमें हाथ बग़लों में लटकते रहें, कंधों और हंसली की हड्डी को ऊपर उठावे और फिर सांस ले। उसे मालूम होगा की सांस ली हुई हवा की मेक़दार

मामूली मेक़दार से बहुत ही कम है। अब फिर कंधों और हंसली की हड्डी को गिराकर सांस ले तब उसे श्वास लेने में ऐसी स्पष्ट शिक्षा मिल जायगी जिसे वह छपे और बोले हुए शब्दों द्वारा प्राप्त शिक्षा की अपेक्षा बहुत दिन तक स्मरण रख सकेगा।

(२) मध्य सांस क्रिया।

सांस लेने के इस तरीक़े को पश्चिमी विद्वान् पँसली की सांस कहते हैं; और यह यद्यपि ऊंची सांस की अपेक्षा कम आपत्तिजनक है तो भी नीची सांस और योगी की पूर्ण सांस की अपेक्षा तो बहुत ही खराब है। मध्य श्वास में छाती और पेट के बीच की चद्दर ऊपर खिंच जाती है, और पेट भीतर खिंच जाता है। पसलियां कुछ ऊपर उठती हैं और छाती कुछ थोड़ी फैल जाती है। यह तरीक़ा उन मनुष्यों में पाया जाता है जिन्होंने इस विषय का अध्ययन नहीं किया है। चूंकि इससे बेहतर दो तरीक़े और हैं इसलिये इस तरीक़े का बहुत थोड़ा ही वर्णन किया गया है और वह भी इसलिये कि आप का ध्यान उस की त्रुटियों पर आकर्षित हो।

(३) नीची सांस।

सांस लेने का यह तरीक़ा पहले कहे हुए दोनों तरीक़ों से बहुत ही अच्छा है और हाल सालों में बहुत से पश्चिमी लेखकों ने इसकी बड़ी महिमा गायी है और इसकी प्रशंसा "पेट की सांस" "गहरी सांस" आदि नामों से की है; और लोगों का ध्यान इसकी ओर आकर्षित होने से लाभ भी बहुत हुआ

है, क्योंकि बहुत से लोग जो पहले ऊपर लिखी हुई दोनों रीतियों से सांस लेते थे, अब इस रीति से सांस लेने लगे। इसी नीची सांस के आधार पर बहुत से नये तरीक़े निकाले गये और शिष्यों को इन नये (?) तरीकों के लिये कड़ी क़ीमतें भी देनी पड़ीं। परन्तु, जैसा हम कह आये हैं, इससे लाभ बहुत हुआ है, और अन्त में उन शिष्यों को, जिन्हों ने मंहगी क़ीमतें दीं, और निकृष्ट रीति को त्याग कर अच्छी रीतियों को धारण किया, क़ीमत के अनुसार लाभ मिल गया।

यद्यपि बहुत से पश्चिमी विद्वान इस तरीक़े को सर्वोत्तम तरीक़ा लिखते और कहते हैं, परन्तु योगी इसे जानते हैं कि यह उस तरीक़े का एक अंग मात्र है, जिसे वे सैकड़ों वर्ष से अभ्यास करते आते हैं, और जिसे "योगी की पूरी सांस" कहते हैं। यह बात स्वीकार करने के योग्य है कि पूरी सांस को समझने के पहले नीची सांस से अभिज्ञ हो जाना ही चाहिये।

एक बार फिर पेट और छाती को पृथक् करने वाली चद्दर पर ध्यान दीजिये। यह क्या है ? हम लोग देख आये हैं कि यह एक मांसपेशी है जो पेट और उस के पदार्थों को छाती और उस के पदार्थों से पृथक् करती है। जब यह स्थिर रहती है तो पेट की ओर से देखने में आसमान की भांति या छाता की तरह दिखलाई देती है; इसलिये यदि ऊपर छाती की ओर से इस पर दृष्टि डाली जाय तो यह कुब्बेदार अर्थात् उभड़े हुए टीले की भांति दिखाई देती है। जब यह चद्दर काम करने लगती है तो कुब्बा नीचे को दबता

है और चद्दर पेट के अवयवों को दबाती है जिससे पेट कुछ आगे उभड़ आता है।

नीची सांस लेने में ऊपर लिखे हुए पहले तरीक़ों से सांस लेने की अपेक्षा फेफड़ों को और भी स्वतंत्रता से काम करना पड़ता है जिसका परिणाम यह होता है कि अधिक हवा सांस में जाती है। इसीसे अधिकतर पश्चिमी विद्वान् इसी नीची सांस को (जिसे वे पेट की सांस कहते हैं) वैज्ञानिक सर्वोत्तम तरीक़ा कहते और लिखते हैं। परन्तु पूर्वीय योगी बहुत दिनों से इससे भी अच्छे तरीक़े को जानता है और कुछ पश्चिमी लेखक भी अब इस बात को समझने लगे हैं। योगी की पूरी सांस को छोड़ कर अन्य रीतियों में यह एक बड़ा दोष है कि किसी तरीक़े में भी फेफड़ा हवा से भर नहीं जाता—ज़ियादा से ज़ियादा फेफड़ों का एक भाग मात्र भरता है—यहां तक कि नीची सांस में भी। ऊंची सांस से फेफड़ों का ऊपरी भाग भरता है; मध्य सांस से मध्य भाग और कुछ ऊपरी भाग भरता है; नीची सांस से नीचे वाले और बीच वाले हिस्से भरते हैं। यह बात प्रगट है कि जिस तरीक़े से सारा फेफड़ा हवा से भर जाय वह तरीक़ा अन्य तरीक़ों की अपेक्षा अधिक पसन्द करने के योग्य है। जिस तरीक़े से सारा फेफड़ा हवा से भर जाय वह तरीक़ा अधिक से अधिक आक्सीजन उपस्थित करने और अधिक से अधिक प्राण संचित करने के कारण मनुष्य के लिये अत्यन्त हितकर है। योगी लोग जानते हैं कि पूरी सांस की रीति विज्ञान की जानी हुई सब रीतियों में सर्वोत्तम है।

(४) योगी की पूरी सांस।

योगी की पूरी सांस में ऊंची, मध्य और नीची तीनों प्रकार की सांसों के अच्छे गुण हैं और यह सांस तीनों प्रकार की सांसों के दोषों से बची हुई है। यह रीति सांस लेने के सारे यंत्र, फेफड़ों के प्रत्येक भाग हवा की प्रत्येक कोठरी, और श्वास की प्रत्येक मांसपेशी को काम में लगा देती है। समस्त श्वास लेने का यंत्र, सांस की इस रीति से संचालित हो जाता है; और कम से कम शक्ति के व्यय से अधिक से अधिक लाभ होता है। छाती का खोखला चारो ओर अपनी चरमसीमा तक फैल जाता है, और यंत्र के सब भाग अपने २ स्वाभाविक कर्त्तव्यों और क्रियाओं को करते हैं।

इस प्रकार सांस लेने में सब से बड़ा यह गुण है कि श्वास लेने की मांसपेशियां पूरे तौर से काम में लगाई जाती हैं; और अन्य तरीक़ों में उनके एक भाग मात्र प्रयोग में आते हैं। पूरी सांस लेने में और मांसपेशियों में वे मांसपेशियां जिनका अधिकार पसलियों पर रहता है, ज़ोर से काम करती हैं, जिससे अवकाश बढ़ जाता है कि फेफड़े फैल सकें, और अवयवों को मुनासिब सहारा, आवश्यकता पड़ने पर, मिल जाता है। कुछ मांसपेशियां तो निचली पसलियों को उनके स्थान पर पकड़े रहती हैं, और कुछ उन्हें बाहर की ओर दबाती हैं।

और फिर इस रीति में पेट और छाती के बीचवाली चद्दर पूरे आयत्त में रहती है और अपने कार्यों को उचित रूप पर और इसभाँति करती है कि अधिक से अधिक कार्य हो सके।

ऊपर लिखी हुई पसलियों की क्रिया में नीचे की पसलियां इसी चद्दर द्वारा अधिकृत रहती हैं, जो उन्हें थोड़ा नीचे खींचती है और अन्य मांसपेशियां उन्हें अपने स्थान पर पकड़े रहती हैं और पसलियों के बीच की मांसपेशिया उन्हें बाहर की ओर प्रेरित करती हैं; इस संयुक्त क्रिया से छाती के बीच का खोखला पूरा २ बढ़ जाता है। इस मांसपेशीक्रिया के अतिरिक्त ऊपर की पसलियां भी पसलियों की बीचवाली मांसपेशियों द्वारा ऊपर को उठाई और बाहर की ओर फैलाई जाती हैं जिससे ऊपरी छाती का विस्तार भी पूरी हद तक फैल जाता है।

यदि आपने चारों प्रकार की श्वास क्रियाओं की विशेषताओं को अच्छी तरह अध्ययन कर लिया है, तो आपको तुरत मालूम हो जायगा कि पूरी सांस में शेष तीनों प्रकार की क्रियाओं की खूबियाँ आ जाती हैं और इनके अतिरिक्त यह लाभ होता है कि छाती के ऊपरी, मध्य, और नीचे वाले भागों की संयुक्त क्रिया से और भी लाभ बढ़ जाता है और स्वाभाविक ताल प्राप्त हो जाता है।

योगियों की पूरी सांस समस्त श्वास विज्ञान की मूलाधार श्वासक्रिया है और शिष्य को इससे भलीभाँति अभिज्ञ हो जाना चाहिये और इसे पूरी तरह से सिद्ध कर लेना चाहिये तभी वह आगे लिखी हुई अन्य क्रियाओं से फल प्राप्त करने की आशा कर सकता है। इसे अधूरा ही करने से संतुष्ट न हो जाना चाहिये, परंतु जी लगा कर अभ्यास करते रहना चाहिये, जब तक कि यह श्वास लेने का स्वाभाविक तरीक़ा न बन जाय। इसमें मिहनत, समय और धैर्य की आवश्यकता

होगी; परंतु इन बातों के विना तो कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता। श्वासविज्ञान का दूसरा कोई राजपथ नहीं है और शिष्य यदि फल उठाना चाहता है तो उसे जी लगा कर इस क्रिया का अध्ययन और अभ्यास कर लेना चाहिये। श्वासविज्ञान की क्रियाओं को सिद्ध कर लेने से महत् फल प्राप्त होता है और जिसने इस क्रिया को प्राप्त कर लिया है, वह इच्छापूर्वक अन्य तरीक़ों में फिर कभी न जायगा और अपने मित्रों से यही कहेगा कि "हमें अपने परिश्रम का पूरा फल मिल गया"। हम इन बातों को अभी कह देते हैं कि आप इस योगीश्वास-क्रिया के सिद्ध करने की आवश्यकता और मुख्यता को पूरी तरह से समझ जायँ, और इसे छोड़ कर इस किताब की आगे लिखी हुई क्रियाओं में से किसी चित्ताकर्षक क्रिया में न लिपट जायँ। हम फिर आपसे कहते हैं कि सही रीति से कार्य आरंभ कीजिये तो सही नतीजा मिलेगा; परंतु यदि आप नींव ही के साथ लापरवाही करेंगे तो आपका सारा भवन, शीघ्र ही या देर में ढह जायगा।

योगियों की पूरी सांस कैसे प्राप्त की जाय इसकी शिक्षा देने के लिये यह बेहतर होगा कि पहले केवल श्वास ही के विषय में सरल उपदेश दे दिये जावें और तब इसके पश्चात् उसके संबंध में साधारण ध्यान देने योग्य बातें बतलावें और तब आगे चलकर छाती, मांसपेशियों और फेफड़ों को, जो अधूरी सांस लेने से संकुचित दशा में पड़े हुए हैं, पूरा विकसित करने के लिये अभ्यास अर्थात् कसरतें दें। ठीक इसी स्थान पर हम यह कह दिया चाहते हैं कि यह पूरी सांस ज़बरदस्ती

की, या अस्वाभाविक बात नहीं है, किंतु, इसके विपरीत मूल नियमों पर लौटना, प्रकृति के मार्ग पर वापस आना है। स्वस्थ युवक जंगली और स्वस्थ सभ्यता का बच्चा दोनों इसी प्रकार सांस लेते हैं; परन्तु सभ्य मनुष्य ने जीवन की अस्वाभाविक रीतियों को रहन, चलन और वस्त्र पहिनने आदि में ग्रहण कर लिया है और अपनी नैसर्गिक स्थिति को खो दिया है। और हम पाठकों को यह भी स्मरण दिलाया चाहते हैं कि पूरी सांस का अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक श्वास में फेफड़े पूरी तरह से हवा से भरे जायँ। मनुष्य श्वास द्वारा हवा की साधारण ही मात्रा, इस पूरी सांस की क्रिया द्वारा खींच कर, चाहे हवा की मात्रा थोड़ी हो या बहुत हो, फेफड़े के सब भागों में वितरित कर सकता है। परन्तु दिन में कई वार तो अवश्य, जब २ अवसर मिले, शरीरयंत्र को अच्छी तरतीब और दशा में रखने के निमित्त खूब हवा भर कर पूरी २ सांस लेना ही होगा।

नीची लिखी हुई सादी कसरत से आप को साफ़ विदित हो जायगा कि पूरी सांस क्या चीज़ है:—

(१) अँकड़ कर सीधे खड़े हो जाओ या बैठो। नाक के द्वारा धीरे २ हवा भीतर खींचो, पहले फेफड़ों के नीचे वाले भाग को हवा से भरो, जो पेट और छाती को पृथक् करनेवाली चद्दर को काम में लाने से होता है, जिससे पेट के अवयवों पर थोड़ा दबाव पड़ता है और पेट का अगला भाग ज़रा बाहर आगे की ओर निकल आता है, तब फेफड़ों के मध्य भाग में, निचे वाली पसलियों, छाती की हड्डी और छाती को फैला कर

हवा भरो। फिर ऊपरी छाती को आगे निकाल कर, और इस तरह से छाती को ऊपर उठा कर जिसके साथ ऊपरी ६ या ७ जोड़े पसलियों के भी हों, फेफड़ों के ऊपरी भाग में हवा भरो। अन्तिम क्रिया में पेट का नीचे वाला भाग कुछ भीतर की ओर दव जायगा, जिस गति से फेफड़ों को आधार मिल जायगा और फेफड़ों के ऊंचे से ऊंचे वाले भाग के भरने में भी सहायता मिल जायगी।

पहले पढ़ने में तो ऐसा मालूम होगा कि इस श्वास में पृथक् २ तीन गति हैं। परन्तु यह बात सही नहीं है। श्वास का खींचना लगातार होता रहता है, छाती का पूरा खोखला, नीचे दबी हुई पूर्व कथित चद्दर से लेकर ऊपर छाती के सब से ऊपर वाले भाग तक, जो हंसली की हड्डी के स्थान में है, समगति से फैलता जाता है। हिचक २ कर सांस मत खींचना। धीमी लगातार एक क्रिया बनाने का यत्न करो। अभ्यास द्वारा, इस सांस की क्रिया को तीन भागों में बांटने की इच्छा हट जायगी और एक रस लगातार सांस हो जायगी। थोड़े ही अभ्यास के बाद आप दो सेकंड में पूरी सांस भीतर खींच सकेंगे।

(२) श्वास को भीतर ही कुछ क्षण तक रोक रक्खो।

(३) छाती को स्थिर दशा में रख कर धीरे २ श्वास बाहर निकालो, श्वास बाहर निकलते समय ज्यों २ हवा बाहर निकले त्यों २ पेट भीतर दबता जाय, जब हवा कुल निकल जाय छाती और पेट को ढीला कर दो। थोड़े अभ्यास से कसरत का यह भाग आसान हो जायगा; और जब एक बार गति

प्राप्त हो जायगी तब पश्चात् तनिक इच्छा करने से यह आप से आप हुआ करेगी।

यह बात देखने में आवेगी कि सांस के इस तरीक़े से श्वास लेने का सारा यंत्र काम में लाया जाता है, और फेफड़ों के कुल भागों को जिन में दूर से दूर की भी हवा की कोठरी शामिल है, कसरत मिल जाती है। छाती का खोखला चारो ओर फैल जाता है। आप यह भी देखेंगे कि पूरी सांस वस्तुतः नीची, मध्य और ऊंची तीनों सांसों की मिलावट है जो ऊपर दिये हुए क्रम से एक दूसरे के पश्चात् शीघ्रता से इस तरह जारी रहती हैं कि जिस से एक सम, लगातार, पूरी सांस बन जाती है।

यदि आप बड़े शीशे के सन्मुख इस श्वास का अभ्यास करेंगे तो आप को बड़ी सहायता मिल जावेगी, और यदि आप हाथों को पेट के ऊपर रक्खे रहेंगे तो आप को गति भी मालूम देगी। श्वास खींचने के अन्त में कभी कभी कन्धों को थोड़ा ऊपर उठा देना अच्छा होता है, इस तरह हंसली की हड्डी के उठ जाने से दहने फेंफड़े की ऊपरी छोटी ललरी में भी हवा प्रवेश कर जाती है; यही स्थान कभी २ टयूबरक्यूलोसिस (Tuber culosis) नामक बीमारी के फैलने की जगह है।

अभ्यास के शुरु में पूरी सांस को प्राप्त करने में कुछ थोड़ी बहुत दिक्कत मालूम देगी, परन्तु थोड़े ही अभ्यास से आप पक्के हो जायंगे; और जब आप इसे एक बार प्राप्त कर लेंगे तब फिर सांस की पुरानी रीतियों में न जायंगे।

पन्द्रहवां अध्याय ।

सही सांस लेने का प्रभाव ।

पूरी सांस लेने से जो लाभ होते हैं उनकी महिमा जितनी ही कही जाय थोड़ी है । जिस शिष्य ने पहले के सफ़हों को ध्यान से पढ़ लिया है उसको तो हम समझते हैं कि इन लाभों को गिनाने की शायद ही आवश्यकता हो ।

पूरी सांस के अभ्यास से पुरुष या स्त्री क्षयी रोग और अन्य फेफड़ों के रोगों से निर्भय हो जाते हैं, सर्दी जुकाम होने की सम्भावना ही नहीं रहती और इसी प्रकार श्वास की नालियों के रोगों का भय जाता रहता है । क्षयी रोग क्षीण जीवट के कारण, जो श्वास में कम हवा खींचने से हो जाता है, होता है । जीवट की क्षीणता से शरीरयंत्र, कीटाणुओं के हमलों के लिये अपना द्वार खोल देता है । अधूरी सांस लेने से फेफड़ों का एक बड़ा भाग निष्क्रिय हो जाता है, और ऐसे ही भाग कीटाणुओं को न्योता देते हैं, जो पहले निर्बल रेशों पर हमला करके बहुत शीघ्र बर्बादी की धूम मचा देते हैं । फेफड़ों के अच्छे स्वस्थ रेशे कीटाणुओं से लड़ जाते हैं, और फेफड़ों के रेशों को अच्छे और स्वस्थ बनाने का एक मात्र उपाय यहीं है कि फेंफड़ों से समुचित कार्य लिया जाय।

क्षयी रोग वाले मनुष्य प्रायः सब संकीर्ण छाती के होते हैं । इसका क्या अर्थ है ? इसका केवल यही अर्थ है कि ये

मनुष्य अनुचित रीति से सांस लेने की आदत में पड़ गये थे और इसलिये इनकी छाती न तो विकसित हो सकी और न फैल सकी। जो मनुष्य पूरी सांस का अभ्यास रखता है उसकी पूरी चौड़ी छाती होती है, संकीर्ण छाती वाला मनुष्य भी यदि इस रीति सांस लेने का अभ्यास करेगा तो उसकी छाती भी विकसित होकर स्वाभाविक विस्तार को पहुंच जावेगी। ऐसे मनुष्य यदि अपने जीवन का आदर करते हैं तो उन्हें छाती के खोखले को विकसित करना चाहिये। जब कभी आप को मालूम हो कि आप अनुचित रीति से सर्दी खा रहे हैं और ज़ुकाम होने की संभावना है तो आप खूब ज़ोर से पूरी सांस का अभ्यास करके ज़ुकाम को रोक सकते हैं। यदि बहुत सर्दी खा गये हों तो कुछ मिनट तक खूब अच्छी तरह पूरी सांस लीजिये जिससे आप का सारा शरीर तमतमा जायगा। बहुत से ज़ुकाम पूरी सांस और अधूरे भोजन द्वारा अच्छे किये जा सकते हैं।

रुधिर की उत्तमता अधिकांश उसकी फेफड़ों में उचित रीति से आक्सीजन से मिश्रित होने पर अवलंबित है, यदि उसमें आक्सीजन थोड़ी मात्रा में मिलता है तो वह ख़राब हो जाता है, और अनेक प्रकार की गंदगियों से भर जाता है, और शरीरयंत्र पोषण के अभाव से हानि उठाता है और रुधिर से गंदगियों के न दूर होने के कारण वस्तुतः विषैला हो जाता है। चूंकि सारा शरीर, प्रत्येक इंद्रिय और प्रत्येक अवयव पोषण के लिये रुधिर पर अवलंबित हैं, इस लिये अस्वच्छ रुधिर का प्रभाव सारे शरीर यंत्र पर अवश्य

बहुत बुरा असर डालेगा । उपाय बहुत सरल है-योगी की पूरी सांस का अभ्यास कीजिये ।

अनुचित सांस लेने से आमाशय और अन्य पोषण के अवयव हानि उठाते हैं । आक्सीजन की कमी के कारण केवल वे अपुष्ट ही नहीं रहते, किन्तु, चूंकि पचने और शरीर में अपनाये जाने के पहले भोजन का रुधिर में से आक्सीजन लेना अत्यन्त आवश्यक है, इसलिये यह बात स्पष्ट है कि अधूरी सांस से पाचन और अपनाने की क्रियायें कितनी निर्बल हो जाती हैं । और जब अपनाना अर्थात् रसग्रहण की क्रिया स्वाभाविक और ठीक नहीं रहती, तब शरीर के पोषण में दिन पर दिन कमी होती जाती है, भूख मंद पड़ जाती है, शारीरिक बल घट जाता है और शक्ति क्षीण हो जाती है और मनुष्य सूखने और हीन होने लगता है। ये सब बातें उचित सांस के अभाव से होती हैं ।

अनुचित सांस से नाड़ियां अर्थात् ज्ञान और शक्ति के तंतु भी हानि उठाते हैं क्योंकि मस्तिष्क, मेरुदंड, नाड़ी-केंद्र और स्वयं नाड़ियां भी, जब रुधिर द्वारा अधूरा पोषण पाती हैं तब शक्ति की धाराओं को उत्पन्न करने, संचय करने और प्रवाहित करने का अयोग्य औजार बन जाती हैं । और यदि पुष्कल आक्सीजन फेफड़ों द्वारा ग्रहण न किया जायगा तो वे अवश्य अपुष्ट रह जावेंगी । इस विषय का एक और भी पटल है कि यदि उचित सांस न ली जायगी तो नाड़ियों की शक्ति धारायें, बल्कि यों कहिये कि स्वयं वह शक्तियां जिनसे कि धारायें उत्पन्न होती हैं, क्षीण हो जाती

हैं; परंतु यह एक पृथक् ही विषय है जिसका वर्णन इस किताब के अन्य अध्यायों में किया गया है; और यहां हमारा यह अभिप्राय है कि आप के ध्यान को इस बात की ओर आकर्षित करें कि अनुचित सांस के कारण नाड़ीजाल की कारीगरी शक्ति संचालन करने की क्रिया में असमर्थ होती जाती हैं।

पूरी सांस के अभ्यास करने के अभ्यास में श्वास द्वारा हवा भीतर खींचते समय, छाती और पेट को पृथक् करने वाली चद्दर सिकुड़ती है और यकृत्, आमाशय तथा अन्य अवयवों पर हलका दवाव डालती है; जो क्रिया फेंफड़ों की गति के ताल से मिलकर इन अवयवों को मुलायमियत से मर्दन किया करती है, और उनकी क्रियाओं को उत्तेजित करती है। और उनके स्वाभाविक कार्य्यों को उत्साहित करती हैं। प्रत्येक श्वास का खींचना इस भीतरी कसरत में सहायता पहुंचाता है और पोषण तथा मलत्याग के अवयवों में स्वाभाविक रुधिर संचार करके मदद करता है। ऊंची और मध्य सांसों में इस भीतरी मर्दन के लाभों से अवयव वंचित ही रह जाते हैं।

आज कल पश्चिमी संसार शारीरिक शिक्षा की ओर बहुत ध्यान दे रहा है, यह बड़ी अच्छी बात है। परन्तु अपने इस प्रबल उत्साह में वह इस बात को न भूल जाय कि बाहरी ही मांसपेशियों की कसरत ही सब कुछ नहीं है। भीतरी अवयवों को भी व्यायाम की आवश्यकता है, और इस व्यायाम के लिये प्रकृति का उद्देश पूरी सांस का लेना है।

प्रकृति का प्रधान औज़ार, इस व्यायाम के लिये, छाती और पेट के बीच वाली मांस की चद्दर है। इसकी गति से पोषण और मलत्याग के प्रधान २ अवयव संचालित होते रहते हैं; और यह प्रत्येक श्वास और प्रश्वास में उन्हें दबाती और मर्दन करती है, उनमें रुधिर प्रवाहित करती और फिर निचोड़ डालती है, जिससे अवयवों में शक्ति भरी रहती है। कोई अवयव या शरीर का भाग क्यों न हो, यदि उसका व्यायाम न होगा तो वह शनैः २ बेकाम हो जायगा, और अपना काम न करेगा; और चद्दर की क्रिया द्वारा भीतरी व्यायाम को न कराने से बीमारी की दशा उत्पन्न हो जाती है, पूरी सांस कथित चद्दर को मुनासिब हरकत देती है और मध्य तथा ऊपरी छाती को काम देती है। यह अपनी क्रियाओं द्वारा सचमुच "पूरी" है।

केवल पश्चिमीही शरीर शास्त्र की दृष्टि से, बिना पूर्वीय विज्ञान और दर्शनों के संबंध के, यह योगियों की पूरी सांस की क्रिया, प्रत्येक पुरुष, स्त्री और बच्चे के लिये, जो स्वास्थ्य को प्राप्त और संचित किया चाहता है, अत्यन्त आवश्यक है। इसकी सरलता ही के कारण सहस्रों मनुष्य इस पर ध्यान नहीं देते, और पेचीदे तथा खर्चीले तरीक़ों से स्वास्थ्य की तलाश में भंडार का भंडार धन खर्च कर देते हैं। स्वास्थ्य तो द्वार पर उपस्थित है, और वे ध्यान नहीं देते। सच है जिस पत्थर को थवई अस्वीकार करता है, वही पत्थर स्वास्थ्य-मंदिर के प्रधान कोने पर का पत्थर है।

सोलहवां अध्याय ।

श्वास के अभ्यास ।

हम नीचे श्वास की तीन रीतियां बतलाते हैं, जो योगियों को बहुत प्यारी हैं। पहली तो विख्यात योगियों की, साफ़ करने वाली श्वासक्रिया है जिसके द्वारा योगियों के फेंफड़े इतने सुदृढ़ और बलवान हो जाते हैं। वे लोग इस साफ़ करने वाली श्वासक्रिया द्वारा प्रत्येक श्वास के अभ्यास को समाप्त करते हैं, और हमने इस किताब में इसी तरीक़े को अनुसरण किया है। हम योगियों के उस अभ्यास को भी देते हैं, जिससे नाड़ियों में शक्ति संचालित होती है, और जो अभ्यास युगों से उनमें प्रचलित चला आता है, और जिस में पश्चिमी स्वास्थ्याचार्य लोग कुछ भी अधिक न जोड़ सके, यद्यपि कुछ लोगों ने योगाचार्यों से लेकर इसे अपनी पद्धति में मिला लिया है। हम योगियों की आवाज़ साफ़ करने वाली कसरत को भी देते हैं, जो अच्छे पूर्वी योगियों की मधुर और प्रबलवाणी का कारण है। हम तो यह समझते हैं कि यदि इस किताब में इन तीन कसरतों के अलावह और कुछ न होता तो भी यह किताब हमारे शिष्यों के लिये बहुमूल्य होती। इन कसरतों को हमारी ओर से उपहार या प्रसाद समझ कर ग्रहण कीजिये और इनका अभ्यास कीजिये।

योगी की साफ़ करने वाली श्वासक्रिया।

योगी लोग एक प्रकार की श्वासक्रिया का, बड़े मन से, उस समय अभ्यास करते हैं जब उन्हें फेफड़ों को साफ़ करने या फेफड़ों में हवा को प्रवाहित कर देने की आवश्यकता होती है। वे अपनी और श्वास क्रियाओं के प्रत्येक अभ्यासों के अन्त में भी इसे करते हैं, और हमने इस किताब में इसी रीति का अनुसरण किया है। यह सफ़ाई की श्वास क्रिया फेफड़ों को साफ़ करती है और उनमें हवा प्रवाहित कर देती है; और यह फेफड़ों की हवा वाली कोठरियों को उत्तेजित करती है और श्वास लेने के अवयवों को चौकन्ना बना कर उनको स्वस्थ दशा में रखने की चेष्टा करती है। इन बातों के अतिरिक्त यह क्रिया सारे शरीर को बहुत ताजा कर देने वाली पाई गई है। वक्ता लोगों और गवैयों के जब श्वास के अवयव थक जावें तब इसे वे बहुत सुख दायिनी पावेंगे।

(१) पूरी सांस भीतर खींचो।

(२) कुछ सेकण्ड तक हवा को भीतर ही रोक रक्खो।

(३) अपने ओठों को वैसा बना लो जैसा सीटी बजाने में बजाने में बनाते हो (परन्तु गालों को मत फुलाओ) तब ओठों के बीच वाले छिद्र से बड़े ज़ोर से थोड़ी हवा बाहर फेंको। क्षण भर ठहर जाओ, हवा रोके रहो, और फिर थोड़ी और हवा ज़ोर से फेंको। तब तक थोड़ा रुक २ कर यही क्रिया करते जाओ, जब तक कुल हवा निकल न जाय। याद रक्खो कि ओठों के बीच के छिद्र से हवा निकालने में बहुत बड़ा ज़ोर लगाना चाहिये।

जब मनुष्य थक कर सुस्त हो गया हो उस समय यह क्रिया बहुत ही ताज़गी देने वाली पाई जायगी। एक बार परीक्षा करने से शिष्य इसके गुणों को भली भांति समझ जायगा। इस कसरत का तब तक अभ्यास करते जाओ जब तक यह स्वाभाविक रीति से और सरलता पूर्वक न होने लगे; क्योंकि यह इस किताब में दी हुई अनेकों कसरतों में प्रत्येक के अन्त में की जाती है, और इस लिये इसे बहुत अच्छी तरह से सिद्ध कर लेना चाहिये।

योगियों की नाड़ीबलविधायिनी श्वासक्रिया।

यह योगियों की भली भांति जानी हुई कसरत है; वे इसे मनुष्य के लिये सबसे बड़ी नाड़ियों को उत्तेजित करने वाली और शक्ति देने वाली क्रिया (महौषधि) समझते हैं। इसका अभिप्राय नाड़ीजाल को उत्तेजित करना और नाड़ी बल शक्ति, तथा जीवट को विकसित और पुष्ट करना है। इस अभ्यास से नाड़ीकेन्द्रों में उत्तेजक दबाव का प्रभाव पड़ता है; जिससे सारा नाड़ीजाल उत्तेजित और शक्तिसम्पन्न हो जाता है, और जिससे सारे शरीर में नाड़ीबल का अधिक प्रवाह फैल जाता है।

(१) सीधे खड़े हो।

(२) पूरी सांस खींचो और उसे रोक रक्खो।

(३) अपनी भुजाओं को अपने सामने सीधा फैलाओ, वे कुछ ढीली रहें, बहुत तनी न रहें, उनमें केवल इतना ही बल दिया जाय कि वे फैली रहें।

(४) धीरे २ हाथों को कंधों की ओर खींचो, शनैः २ मांस पेशियों को संकुचित करते जाओ और उनमें बल देते जाओ, जिससे कि कंधों तक पहुँचते २ मुट्ठियां इतनी कड़ी बँध जायँ कि उनमें कँपकँपी की गति आ जाय।

(५) तब मांस पेशियों को कड़ी ही रक्खे हुए, मुट्ठियों को धीरे २ आगे फैलाओ, और बड़ी तेजी से पीछे लाओ (कड़ी ही रक्खे हुए) ऐसा कई बार करो।

(६) मुँह की राह जोर से हवा छोड़ दो।

(७) फेफड़ों को साफ़ करने वाली श्वासक्रिया कर डालो।

इस कसरत की खूबी मुट्ठियों की पीछे खींचने वाली तेजी पर, मांस पेशियों में लगाये हुए ज़ोर पर और फेफड़ों को हवा से भरे रहने पर अवलम्बित है। इस कसरत की परीक्षा ही करने से इसकी महिमा का अनुभव होगा। यह विश्राम देने में अद्वितीय है, जैसा कि पश्चिमी मित्र कहा करते हैं।

योगियों की वाणीविधायिनी श्वासक्रिया।

योगी लोग वाणी शुद्ध करने के लिये भी एक रीति की श्वास-क्रिया करते हैं। वे अपनी आश्चर्यजनक आवाज़ के लिये विख्यात होते हैं, जो दृढ़, सुचिक्कन, साफ़ और तुरही के शब्द की भांति दूर तक पहुँचने वाली होती है। वे इसी विशेष रूप की श्वासक्रिया का अभ्यास किये हुए हैं जिससे उनकी आवाज़ मधुर, सुन्दर लोचदार हो गई है और उसमें वह वर्णनातीत विशेष प्रवाहिनी होने का गुण आ गया है

और इतनी शक्ति भर गई है। नीचे दी हुई कसरत एक समय में उन सब गुणों को देवेगी यदि शिष्य जी लगा कर इस क्रिया का अभ्यास करेंगे। यह बात समझ रखना चाहिये कि इस रीति की श्वासक्रिया का कभी ही कभी अभ्यास करना चाहिये और इसे श्वास लेने का एक तरीक़ा ही न बना लेना चाहिये।

(१) पूरी सांस बहुत धीरे २ पर लगातार नाक द्वारा खींचो, और श्वास खींचने में जितना समय लेते बने, लो।

(२) कुछ सेकंड तक उसे रोक रक्खो।

(३) बड़े ज़ोर से एक ही झोंके में कुल हवा खूब मुँह फैला कर छोड़ दो।

(४) साफ़ करनेवाली श्वासक्रिया द्वारा फेफड़ों को आराम दे दो।

बोलने और गाने में कैसे शब्द उत्पन्न किया जाता है, उसके विषय में योगियों के गहन विचारों में प्रवेश न करके हम यह कहना चाहते हैं कि तजरबे से उन्हें विदित हुआ है कि आवाज़ का सुर, राग और शक्ति केवल गले के शाब्दिक अवयवों ही पर अवलम्बित नहीं हैं, किन्तु, चेहरे की मांस-पेशियां आदि भी इस विषय में अधिक प्रभाव रखती हैं। बहुत से चौड़ी छातीवाले केवल धीमी आवाज़ पैदा करते हैं और अन्य छोटी छातीवाले आश्चर्यजनक बल और गुण की आवाज़ पैदा करते हैं। यह एक मनोरंजक उदाहरण परीक्षा करने के योग्य है। एक आइने के सामने खड़े हो, और मुंह बटोर कर सीटी बजाओ और मुंह की सूरत और चेहरे की

आकृति को स्मरण रक्खो, तब बोलो अथवा गाओ, जैसा तुम स्वभावतः बोला या गाया करते हो और तब उनके अन्तर पर ध्यान दो। तब फिर कुछ क्षण तक सीटी बजाओ और तब बिना ओठों और चेहरे की स्थिति बदले हुए कुछ गाओ और देखो कि कैसा लचीला, मधुर, साफ़ और सुन्दर स्वर उत्पन्न होता है।

नीचे लिखी हुई योगियों की सात कसरतें फेफड़ों, मांस-पेशियों, ग्रंथियों और हवा की कोठरियों आदि को विकसित करनेवाली हैं। वे बहुत ही सरल पर आश्चर्यजनक रीतिसे लाभदायिनी हैं। इसकी सरलता के कारण तुम इनसे विमुख मत हो, क्योंकि ये योगियों की सावधानी की परीक्षाओं और अभ्यासों का प्रतिफल हैं और अनेक पेचीदा कसरतों का सारांश हैं; अनेक कसरतों के अनावश्यक भागों को छोड़ कर केवल आवश्यक भागों से ही ये कसरतें बनी हैं।

(१) श्वास का रोकना।

यह बहुत ही मुख्य कसरत है जो श्वास लेनेवाले अवयवों और फेफड़ों को विकसित और पुष्ट करती है और इसके अधिक अभ्यास से छाती भी फैलती है। योगियों को यह बात विदित हुई है कि कभी २ फेफड़ों को हवा से खूब भर कर श्वास को रोक रखने से बड़ा ही लाभ होता है, केवल श्वास ही लेने के अवयवों को नहीं, किन्तु, पोषण के अवयवों, नाड़ीजाल और रुधिर को भी ; उन्हें यह विदित हो गया है कि श्वास को समय २ पर रोक रखने से उस हवा की सफ़ाई

हो जाती है जो पहली सांसों की हवा फेफड़ों में शेष रह गई रहती है; और रुधिर में अच्छी तरह से आक्सीजन मिश्रित हो जाता है। वे यह भी जानते हैं कि इस प्रकार से रोकी हुई हवा कुल रद्दी पदार्थों को बटोर लेती है और जब श्वास बाहर निकाली जाती है तो अपने साथ शरीर यन्त्र के इन निकम्मे द्रव्यों को बाहर लिये जाती है और फेफड़ों को उसी प्रकार साफ़ करती है जैसे अँतड़ियों को जुल्लाब साफ़ करता है। योगी लोग इस कसरत का उपदेश आमाशय, यकृत् और रुधिर के अनेक विकारों में करते हैं, और यह भी जाना गया है कि इससे सांस का बदबूपन, जो फेफड़ों में कम हवा जाने से उत्पन्न होता है, दूर हो जाता है। हम शिष्यों से आग्रह करते हैं कि वे इस अभ्यास पर अच्छी तरह से ध्यान दें क्योंकि इसमें बड़े २ गुण हैं। नीचे लिखी हुई शिक्षाओं से इस क्रिया का साफ़ अनुभव होगा:—

(१) सीधे खड़े हो।

(२) पूरी सांस भीतर खींचो।

(३) तब तक श्वास को भीतर ही रोके रहो जब तक उसे आराम से रोक सको।

(४) खुले मुँह से श्वास को बाहर निकाल दो।

(५) साफ़ करनेवाली सांस की क्रिया कर डालो।

पहले तुम बहुत थोड़े अर्से तक श्वास को भीतर रोक सकोगे, परन्तु थोड़े अभ्यास से तुम्हें बहुत उन्नति जान पड़ेगी। यदि अपनी उन्नति जानना चाहते हो तो घड़ी ले लो।

(२) फेफड़ों की कोठरियों को उत्तेजित करना।

यह कसरत फेफड़ों की हवा वाली कोठरियों को उत्तेजित करने के अभिप्राय से की जाती है; परन्तु प्रारम्भिक शिष्यों को इसमें अधिकता न करनी चाहिये और बड़े ज़ोर से तो इसे कभी भी न करना चाहिये। किसी २ को पहले इस क्रिया से चक्कर आने लगेगा, ऐसी दशा में उन्हें कसरत छोड़ कर थोड़ा उसी जगह टहल लेना चाहिये।

(१) सीधे खड़े हो।

(२) धीरे २ शनैः २ श्वास भीतर खींचो।

(३) श्वास भीतर खींचते समय हाथों की अंगुलियों के छोरों से छाती को ज़रा २ ठोंकते जाओ और ठोकने के स्थान को बदलते रहो।

(४) जब फेफड़े भर जावें हवा को भीतर रोक रक्खो और छाती पर हथेलियों से धीरे २ थापी दो।

(५) साफ़ करनेवाली क्रिया कर डालो।

यह कसरत सारे शरीर को सुख देने वाली और उत्तेजित करने वाली है और यह योगियों का विख्यात अभ्यास है। अधूरी सांस लेने से फेफड़ों की बहुत सी हवा की कोठरियां क्रियाहीन हो जाती हैं और इसी से मृतप्राय हो जाती हैं। जिसने बरसों से अधूरी सांस लिया है उसे इन सब बिगड़ी हुई हवा की कोठरियों से पूरी सांस द्वारा एकबारगी पूरा काम लेना और उन्हें कार्य में उत्तेजित करना बहुत सरल न होगा, परन्तु इस कसरत से धीरे २ वह अभीष्ट सिद्ध हो जायगा। यह कसरत अध्ययन और अभ्यास के योग्य है।

(३) पसलियों को लचीली बनाना।

हम समझा आए हैं कि पसलियां मुलायम हड्डी (कुर्री) द्वारा जोड़ी गई हैं, जिनमें बहुत फैलाव हो सकता है। उचित सांस लेने में पसलियां प्रधान काम करती हैं, और उन्हें कभी कभी विशेष अभ्यास दे देने से और उनके लचीलेपन को ठीक रखने से अच्छा ही होगा। अस्वाभाविक रीति से और बैठने और खड़े होने के कारण, जैसा कि रिवाज होगया है, पसलियां सख्त और वे लचीली हो जाती हैं। इस कसरत से वह दोष दूर हो जायगा।

(१) सीधे खड़े हो।

(२) हाथों को दोनों बग़लों पर एक २ करके इतने ऊंचे कांखों के पास रक्खो जितने ऊंचे आराम से रख सको, अंगूठे पीछे की ओर हों, हथेलियाँ छाती की बगलों पर हों और अँगुलियां आगे की ओर छाती पर हों।

(३) पूरी सांस भीतर खींचो।

(४) हवा को भीतर ही थोड़ी देर रोक रक्खो।

(५) तब धीरे २ छाती को दबाना शुरू करो और साथ ही श्वास को भी छोड़ते जाओ।

(६) सफ़ाई की क्रिया कर डालो।

इस अभ्यास को थोड़ा ही करना, इसमें अधिकता न करना।

(४) छाती का फैलाना।

अपने काम पर झुके रहने से छाती संकीर्ण हो जाया

करती है, इस कसरत से स्वाभाविक दशा प्राप्त होती है और छाती फैलती है।

(१) सीधे खड़े हो।

(२) पूरी सांस भीतर खींचो।

(३) हवा को भीतर ही रोक रक्खो।

(४) दोनों हाथों को आगे फैलाओ और दोनों बन्द मुट्ठियों को कंधों की उंचाई के समान उंचाई पर रक्खो।

(५) खूब झोंका देकर भुजाओं को सीधा पीछे बगलों की ओर कंधों की सीध में लाओ।

(६) तब फिर स्थिति ४ में लाओ; फिर स्थिति ५ में ले जाओ। ऐसा कई बार करो।

(७) खुले मुँह से ज़ोर से सांस छोड़ दो।

(८) सफ़ाई की क्रिया कर डालो।

इसका कम ही कम अभ्यास करना, अतिशय न करना।

(५) टहलने वाली कसरत।

(१) सिर ऊँचा, ठुड्डी तनिक भीतर खिंची हुई, कंधे पीछे दबे हों ऐसी स्थिति में बराबर क़दमों से टहलो।

(२) पूरी सांस भीतर खींचो, गिनते जाओ (मनही मन) १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, एक गिनती एक क़दम पर जिससे ८ की गिनती तक श्वास का खींचना पूरा हो जाय।

(३) नाक द्वारा धीरे हवा को छोड़ो, पहले की भांति गिनते जाओ–१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८–एक क़दम पर एक गिनती।

(४) श्वासों के बीच में विना श्वास के रहो, चलना जारी रक्खो और गिनते जाओ १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ एक क़दम पर एक गिनती ।

(५) तब तक करते जाओ जब तक थकावट न मालूम होने लगे । फिर थोड़े अर्से तक आराम कर लो, और फिर खुशी हो तो शुरू करो । दिन में कई वार ऐसा करो ।

कोई कोई योगी १, २, ३, ४, की गिनती तक श्वास को भीतर ही रोके रहते हैं और फिर ८ तक की गिनती में छोड़ते हैं । जो तरीक़ा अधिक पसन्द पड़े उसी का अभ्यास करो ।

(६) *प्रातःकाल की कसरत ।*

(१) जंगी तरीक़े से सीधे खड़े हो, सिर ऊंचा, आंखे सामने कंधे पीछे दबे, घुटने कड़े और हाथ बग़लों में हों ।

(२) पैर की अँगुलियों पर धीरे २ अपने शरीर को उठाओ, साथ ही साथ पूरी सांस भी भीतर खींचते जाओ । (३) श्वास को भीतर ही कुछ सेकंड तक रोक रक्खो उसी स्थिति में बने रहो ।

(४) धीरे २ पहली स्थिति में आओ, साथही धीरे २ नाक द्वारा श्वास भी छोड़ते जाओ ।

(५) सफ़ाई वाली सांस की क्रिया कर डालो ।

(६) कई बार इस क्रिया को करो, कभी अकेली बाईं टांग से काम लो, कभी अकेली दहनी टांग से ।

(७) रुधिरसंचार का उत्तेजित करना ।

(१) सीधे खड़े हो ।

(२) पूरी सांस खींचो और रोको ।

(३) थोड़ा आगे झुको और एक छड़ी या बेंत को दृढ़ता से पकड़ो, और शनैः २ अपने कुल बल को उस पकड़ में लगादो ।

(४) पकड़ को छोड़ दो, पहली स्थिति में आ जाओ और धीरे २ श्वास को छोड़ो ।

(५) कई बार ऐसा करो ।

(६) सफ़ाई वाली क्रिया से समाप्त कर डालो ।

यह कसरत बिना छड़ी और बेंत के भी हो सकती है; केवल कल्पित छड़ी को पकड़ो परन्तु बल पूरा लगाओ । यह कसरत रुधिरसंचार को उत्तेजित करने के कारण योगियों को बहुत प्यारी है, क्योंकि इस से रुधिरापवाहक धमनियों का रुधिर छोरों की ओर दौड़ता है, और रुधिरोपवाहक शिराओं का रुधिर हृदय और फेफड़ों की ओर दौड़ता है, जिससे यह उस आक्सीजन को ग्रहण कर सके जो हवा के साथ श्वास द्वारा खींचा गया है । अधूरे संचार की दशा में फेफड़ों में पूरा रुधिर ही नहीं होगा कि जो आक्सीजन को ग्रहण कर सके और शरीर यंत्र पूरी सांस का पूरा लाभ नहीं उठा सकता । ऐसी दशाओं में विशेष करके, इस कसरत का कभी २ पूरी सांस की कसरत के साथ अभ्यास कर लेना बहुत लाभदायक होगा ।

सत्रहवाँ अध्याय ।

नाक द्वारा श्वास लेना और मुँह द्वारा श्वास लेना ।

योगियों के श्वासविज्ञान में पहली शिक्षाओं में सब से प्रधान शिक्षा यह है कि नाक द्वारा सर्वदा सांस लेना चाहिये, और मुँह के द्वारा सांस लेने की आदत छोड़ देना चाहिये ।

श्वास लेने के अवयव मनुष्य के शरीर में ऐसे बने हुए हैं कि वह नाक और मुँह दोनों द्वारों से सांस ले सकता है, परन्तु किस द्वार से वह सांस ले यह विषय बहुत ही प्रधान है, क्योंकि एक द्वार से सांस लेने से तो स्वास्थ्य और बल का लाभ होता है और दूसरे द्वार से सांस लेने से रोग और निर्बलता मिलती है ।

मनुष्य के लिये सांस लेने का उचित तरीक़ा नाकों ही द्वारा सांस लेने का है, इस बात की शिक्षा देने की आवश्यकता न पड़ती, परन्तु खेद है कि इस सीधी सादी बात में भी सभ्य मनुष्यों की मूर्खता आश्चर्यजनक है । हम सब प्रकार की जीविका के मनुष्यों में ऐसे मनुष्यों को पाते हैं जिनकी आदत मुँह ही से सांस लेने की है, और ये मनुष्य अपने बच्चों को भी मुँह से सांस लेने की पूरी इजाज़त सी दे देते हैं जिससे उन्हें भी मुँह ही से सांस लेने की आदत पड़ जाती है ।

सभ्य मनुष्यों की बहुत सी बीमारियां निश्चय इसी मुँह

से सांस लेने की प्रचलित रीति के कारण उत्पन्न हो जाती हैं। जिन बच्चों को मुँह से सांस लेने की सुविधा मिल जाती है, वे क्षीण जीवट और निर्बल संगठन के साथ वृद्धि पाते हैं, और यौवनावस्था में स्वास्थ्य में गिर जाते हैं और जीर्ण रोगी हो जाते हैं। वहशी मनुष्य की माता बेहतर वर्ताव करती है, क्योंकि वह स्वाभाविक प्रवृत्ति का अनुसरण करती है, और वह अपने बच्चों को ऐसी रीति से रखती है कि वे अपने छोटे ओठों को बन्द किये रहते हैं और नाक ही से सांस लेते हैं। जब बच्चा सो जाता है तो वह उसके सिर को आगे की ओर थोड़ा झुका देती है, जिस स्थिति से बच्चे का मुँह बन्द हो जाता है और उसे नथनों ही से सांस लेना आवश्यक हो जाता है। यदि हम लोगों की सभ्य माताएँ भी इसी तरकीब को ग्रहण कर लेतीं तो मनुष्य जाति का बड़ा उपकार हो जाता।

मुँह से साँस लेने की घृणित आदत से बहुत सी साम्पर्किक बीमारियां पैदा हो जाती हैं, इसी कारण से जुकाम और फेफड़े सम्बन्धी बीमारियां उत्पन्न होती पाई गई हैं। बहुत से मनुष्य जो दिखावट के लिये दिन को मुँह बन्द किये रहते हैं, रात को मुँह ही से सांस लेते हैं और इस तरह बहुधा बीमारी बुला लेते हैं। सावधानी से की गई वैज्ञानिक परीक्षाओं द्वारा जाना गया है कि वे जंगी सिपाही और जहाजी जो अपना मुँह खोल कर सोते हैं, साम्पर्मिक बीमारियों के आक्रमण में उन लोगों की अपेक्षा अधिक पड़ा करते हैं, जो नथनों द्वारा उचित सांस लेते हैं। एक उदाहरण में

यह वर्णन किया गया है कि एक बार एक जंगी जहाज में जो विदेश में था, शीतला की बीमारी वबा रूप में फैली, और इस बीमारी से जितनी मौतें हुई सब उन्हीं मनुष्यों की हुई जो मुँह से सांस लेने वाले थे, नाक से सांस लेने वाला एक मनुष्य भी न मरा।

श्वास लेने के अवयवों की रक्षा करने के साधन छन्ना और धूलनिवारक आदि नथनों ही में बने हैं। जब सांस मुँह से ली जाती है, तो मुँह से लेकर फेंफड़ों तक हवा को छानने वाली या हवा की धूल और अन्य पदार्थों को रोक रखने वाली कोई चीज़ नहीं है। मुँह से फेंफड़ों तक धूल धक्कड़ और गंदी चीजों के लिये साफ़ रास्ता है और श्वास लेने का सारा औज़ार अरक्षित है। इसके अतिरिक्त ऐसी अनुचित सांस से बहुत सर्द हवा भी फेफड़ों तक पहुंच जाती है। और उन्हें हानि पहुँचाती है। श्वास के अवयवों का सूझ जाना प्रायः मुँह से ठंडी हवा की सांस लेने से होता है। जो मनुष्य रात को मुँह से सांस लेता है वह सबेरे उठते ही मुँह में जलन और गले में सूखेपन का अनुभव करता है। वह प्रकृति के नियमों मे से एक प्रधान नियम का उल्लंघन कर रहा है और बीमारी का बीज बो रहा है।

एक बार फिर स्मरण कर लीजिये कि श्वास के अवयवों को रक्षित रखने के लिये मुँह में कोई साधन नहीं है; सर्द हवा, धूल धक्कड़, तरह २ की खराब चीजें और कीटाणु सरलता से उस द्वार में हो कर फेफड़ों तक पहुंच सकते हैं। इसके विपरीत नथनों और नाक के भीतर की नालियों में प्रकृति ने इस विषय के सम्बन्ध

में बड़ी सावधानी से इंतज़ाम कर दिया है। नथने बहुत संकीर्ण हुआ करते हैं और घूम घुमाव के साथ नालियों द्वारा बने हैं, और द्वार पर ऐसे खड़े २ अनगिनत बाल रखते हैं जो हवा को कूड़े करकट से साफ करने के लिये छन्ना और चलनी का काम देते हैं, जब श्वास बाहर आती है तब इस कूड़े करकट को लेती आती है। नथने केवल इसी मुख्य बात को नहीं करते, किन्तु, वे श्वास में ली हुई हवा को गरम कर देने का भी एक प्रधान काम करते हैं। लम्बी, तंग और टेढ़ी मेढ़ी नालियाँ गरम लसलसी झिल्ली से मढ़ी होती है, और जब हवा इनमें आती है तो गरम हो जाती है, जिस से वह गले और फेफड़ों के नाजुक अवयवों को हानि न पहुँचावे।

मनुष्य को छोड़ कर और कोई जानवर मुंह खोल कर नहीं सोता और न मुंह से सांस लेता, और असल में यह विश्वास किया जाता है कि केवल सभ्य ही मनुष्यों ने प्रकृति की क्रियाओं का अवहेलन किया है, और वहशी जातियां तो सर्वदा सही सांस लेती हैं। यह सम्भव है कि मनुष्यों ने यह अस्वाभाविक आदत अस्वाभाविक रहन, निर्बलकारी विलास और अधिक उष्णता के कारण प्राप्त की हो।

नथनों के साफ करने छानने और चालने वाले यंत्र के कारण हवा गले और फेफड़ों के नाजुक अवयवों में जाने के योग्य हो जाती है; क्योंकि जब तक वह प्रकृति के साफ करने वाले यंत्र से साफ नहीं की जाती तब तक वह इन अवयवों में पहुंचने के योग्य नहीं होती। जो कूड़ा करकट

नथनों की चलनियों और आर्द्र झिल्लियों द्वारा रोक लिये जाते हैं, वे बाहर आने वाली सांस के साथ बाहर निकाल दिये जाते हैं, और यदि वे बहुत शीघ्रता से एकत्र हो जायँ या चलनियों से बच कर भीतर चले जायं तो प्रकृति छींक पैदा करके, जो धक्का देकर इन्हें बाहर निकाल फेंकती है, हमारी रक्षा करती है।

हवा जब फेंफड़ों में प्रवेश करती है तो बाहरी हवा से उतना भिन्न हो जाती है, जितना भभके से साफ़ किया हुआ पानी चहबच्चे के पानी से भिन्न होता है। नथनों की पेचीदा साफ़ करने वाली कारीगरी, जो हवा की गन्दगियों और मैल को बाहर ही पकड़ कर रोक रखती है, उतनी ही प्रधान है, जितनी मुँह की क्रिया छोटे फलों के बीज और मछलियों के कांटों आदि को पकड़ कर आमाशय में जाने से रोक रखने में प्रधान है।

मुंह से श्वास लेने में और एक यह दोष है कि नथनों की नालियां कम व्यवहार में आने के कारण साफ़ और निष्कंटक नहीं रह सकतीं और वे मैली हो कर बन्द पड़ जाती हैं और बीमारी में मुब्तला हो जाती हैं। जैसे आवागमन न होने से सड़कों पर घास और झाड़ झंखाड़ उग आते हैं, वैसे ही व्यवहार में न लाये जाने से नथने भी कूड़े करकट से भर जाते हैं।

जिस मनुष्य को नाक ही से सांस लेने की आदत है वह बंद और जबदी हुई नाकों से दुःखी नहीं हो सकता; परन्तु उनके लाभ के लिये, जो थोड़ा बहुत मुंह से सांस लेने

के आदी हैं, और जो स्वाभाविक और सही तरीक़े से सांस लिया चाहते हैं नथनों के साफ़ करने का रास्ता बतला देना अच्छा होगा कि नथने साफ़ और कूड़ा करकट से रहित हो जायँ।

योगियों की प्रचलित रीति यह है कि नाक से थोड़ा पानी ऊपर को चढ़ा लें और उसे गले में उतार दें, जहां से वह मुंह की राह बाहर निकाल दिया जा सकता है! कोई हिन्दू योगी पानीभरे बर्तन में अपना चेहरा डुबो देते हैं और नाक से पानी खींचते हैं, परन्तु इस तरीक़े में अधिक अभ्यास की आवश्यकता है, और पहली रीति इससे अधिक आसान और इतनी ही लाभदायक है।

दूसरी अच्छी विधि यह है कि खिड़की खोल लें और उसके पास बैठ कर खूब स्वच्छन्दता से सांस लें, एक नथने को उँगली या अंगूठे से बन्द करके दूसरे से हवा भीतर खींचें, फिर उसे बन्द करके पहले से हवा खींचें। इसी प्रकार नथनों को बदलते हुए बड़ी देर तक सांस लेते रहें। यह रीति भी नथनों को बाधाओं से रहित बना देगी।

हमने शिष्यों से नाक द्वारा सांस लेने का, यदि उनकी आदत ऐसी न हो तो, आग्रह करते हैं और उन्हें समझाए देते हैं कि इस बात को बहुत छोटी बात समझ कर इसमें लापरवाही न करें।

अठरहवां अध्याय।

शरीर के अणुजीव।

हठयोग यह शिक्षा देता है कि जैसे भौतिक जड़ पदार्थ परमाणुओं से बने हैं वैसे ही यह शरीर देहाणुओं (Cells) से बना है, और प्रत्येक देहाणु अपने में एक अणुजीव धारण किए है, जो देहाणु की क्रियाओं पर शासन करता है। ये जीव, अल्पमात्रा में विकाश पाए हुए चैतन्य मानस के अल्प अंश को धारण करते हैं जिस की चेतना से प्रत्येक देहाणु अपना कार्य उचित रीति से करता है। ये चेतनांश मनुष्य के केन्द्रवर्ती मन के आधीन होते हैं, इसमें सन्देह नहीं; और जब कभी चेतनापूर्वक या अचेतनावस्था में सदर से आज्ञा होती है तो उसका पालन करते हैं। ये अणुजीव चेतनाएं अपने २ कार्यों में पूरी योग्यता दिखलाती हैं। इन देहाणुओं की चुननेवाली क्रिया, जिसके द्वारा ये रुधिर से आवश्यक पोषण को तो खींच लेते हैं, और अनावश्यक द्रव्यों को छोड़ देते हैं, इस चेतना का एक अच्छा उदाहरण है, पाचन और रसाकर्षण आदि की क्रिया देहाणुओं की चैतन्यता दिखलाती है, ये देहाणु चाहे पृथक् २ या अनेक समुदायों में गोल बांधे हों। क्षत अर्थात् जखम का पूरा करना, देहाणुओं का शरीर के उस ओर दौड़ना जहाँ उनकी अत्यन्त आवश्यकता है, और ऐसे सैकड़ों उदाहरण जो परीक्षा करने वालों को विदित हैं, योगियों को यह सूचित करते हैं

कि प्रत्येक देहाणु में जीव है। योगी की दृष्टि में प्रत्येक देहाणु एक जीवित वस्तु है जो अपना स्वतन्त्र जीवन निर्वाह कर रही है। ये देहाणु किसी अभिप्राय से समुदाय बांध लिया करते हैं, और प्रत्येक समुदाय अपनी सामुदायिक चैतन्यता दिखलाता है, जब तक कि वह समुदाय बँधा रहता है; ये समुदाय फिर एकत्रित होकर बड़े पेचीदा २ संगठन बनाते हैं, जिन संगठनों में कुछ उच्च कोटि की चेतनाएँ हुआ करती हैं।

जब पार्थिव शरीर की मृत्यु होती है तब ये देहाणु पृथक् और छिन्न भिन्न हो जाते हैं और तब सड़ना शुरू हो जाता है। वह बल, जिससे ये देहाणु एकत्र रक्खे गये थे, अब चला गया; और अब ये देहाणु स्वतन्त्र हो गये कि अपनी २ राह लें अथवा नये समूह स्थापित करें। कुछ तो आस पास के पौधों के शरीर में चले जाते हैं, और अन्त में घूम फिर कर किसी जानवर के शरीर में आ जाते हैं; दूसरे पौधों ही की देह में बने रहते हैं, कुछ ज़मीन में पड़े रहते हैं; परन्तु इन देहाणुओं के जीवन में अनन्त और अनवरत परिवर्तन हुआ करते हैं। एक नामी लेखक ने कहा है कि "मौत केवल जीवन का रूपान्तर है, और एक पार्थिव रूप का नाश होना दूसरे के बनने की प्रस्तावना है।" हम इस देहाणु जीवन की प्रकृति और क्रियाओं का संक्षिप्त वर्णन अपने शिष्यों को सुना देंगे कि शरीर के इन जीवाणुओं का जीवन कैसा होता है।

शरीर के देहाणुओं में तीन तत्व होते हैं:—(१) द्रव्य, जिसे वे मनुष्य के खाए हुए अन्न से प्राप्त करते हैं; (२) प्राण

अर्थात् जीवट शक्ति, जिससे वे कार्य करने में समर्थ होते हैं, और जिसे वे हमारे खाए हुए अन्न, पिए हुए पानी और सांस ली हुई हवा से लाभ उठाते हैं; (३) चेतना या चित्त जो सर्व व्यापक मन से ग्रहण किया जाता है। हम पहले इन अणुओं के जीवन के भौतिक अंग का वर्णन करेंगे।

जैसा हम ऊपर कह आये हैं, प्रत्येक जीवित शरीर नन्हे २ देहाणुओं का समूह है। यह शरीर के प्रत्येक भाग के सम्बन्ध में—सख्त हड्डियों से लेकर मुलायम से मुलायम रेशों तक—दांत की कड़ी मढ़न से लेकर आर्द्र झिल्ली के नाजुक भागों तक—सही है। इन देहाणुओं की भिन्न २ शकलें होतीं हैं, जो उनके विशेष कार्यों तथा क्रियाओं के अनुकूल होती हैं। प्रत्येक देहाणु, सब प्रकार से पृथक् २ व्यक्ति होते हैं, यद्यपि ये देहाणु समूह की चेतना के आधीन होते हैं; बड़ा समूह छोटे समूह पर शासन करता है; और अन्त में मनुष्य का केन्द्रस्थ मन सब के ऊपर निरीक्षण रखता है। संगठन का कार्य, या कम से कम उसका अधिकांश भाग, प्रवृत्तिमानस के अधिकार में होता है।

ये देहाणु सर्वदा कार्य में लगे रहते हैं, शरीर के सब कर्तव्यों का पालन किया करते हैं, प्रत्येक के ज़िम्मे अलग २ काम होता है जिसे वे अपनी योग्यतानुसार पूरा २ करते रहते हैं। कुछ देहाणु फ़ालतू रहते हैं और वे आज्ञा की प्रतीक्षा किया करते हैं और अकस्मात् जो कार्य आ जाय उसे करने के लिये तैयार रहते हैं। अन्य देहाणु क्रिया-शील काम काजी होते हैं और नाना प्रकार के स्रावों और

द्रवों को बनाया करते हैं, जिनकी आवश्यकता देह की भिन्न २ क्रियाओं में पड़ा करती है। कुछ देहाणु एक स्थानीय होते हैं-दूसरे आज्ञा की प्रतीक्षा में स्थायी रहते हैं पर आज्ञा पाते ही गमन कर देते हैं। कुछ देहाणु सर्वदा यात्रा किया करते हैं; इन में कुछ यात्रा ही करते काम करते हैं और कुछ अणु अन्तर दे २ कर यात्रा करते हैं। इन यात्री अणुओं में कुछ तो भारवाहक होते हैं, कुछ यात्रा किया करते हैं, और मार्ग में जहां आवश्यकता देखते हैं वहां कार्य करके फिर आगे बढ़ते हैं, कुछ सफ़ाई के काम में लगे रहते हैं; कुछ के जिम्मे पुलिस का काम रहता है। देहाणुओं का जीवन, जब उनके कुल समूहों पर दृष्टि डाली जाय तो एक उपनिवेश की गवर्नमेंट के समान दिखलाई पड़ता है, जो गवर्नमेंट कि सहकारिता और सहयोगिता के सिद्धान्तों पर चलाई गई हो। प्रत्येक देहाणु अपने कार्य को समूह भर के लाभ के लिये करता है, प्रत्येक अणु सब की भलाई के लिये काम करता है, और सब मिल कर परस्पर भलाई का काम करते हैं। नाड़ीजाल के देहाणु शरीर के प्रत्येक भाग की खबर मस्तिष्क को पहुंचाते हैं, और मस्तिष्क की आज्ञा शरीर के प्रत्येक आवश्यक भागों में पहुंचाते हैं, ये तारवर्क़ी के जीवित तार हैं। नाड़ियां नन्हे २ देहाणुओं से बनी हुई हैं, इन देहाणुओं में सूंड़ के सदृश कुछ भाग निकला रहता है, एक की सूंड़ दूसरे को और दूसरे की तीसरे को स्पर्श किए रहती है, इस प्रकार शृंखला बन जाती है और इसी शृंखला द्वारा प्राण गति करता है।

प्रत्येक मनुष्य के शरीर में लाखों २, करोड़ों २, देहाणु भारवाहक, चलते कामकाजी, पुलिसमैन, सिपाही आदि का काम करते रहते हैं; यह अनुमान किया गया है कि एक घन इंच रुधिर में कम से कम ७५०००००००० केवल लाल २ देहाणु हैं। औरों के लेखे को छोड़िए! यह बड़ी विस्तृत जाति है।

रुधिर के लाल देहाणु जो, भारवाहक होते हैं, रुधिराप-वाहक धमनियों और रुधिरोपवाहक शिराओं में बहा करते हैं, फेफड़ों से आक्सीजन लेकर शरीर के अंगों और प्रत्यंगों में पहुंचाया करते हैं, जिससे उन अंगों प्रत्यंगों को जीवन और शक्ति मिला करती है। जब रुधिरोपवाहक शिराओं द्वारा ये वापस आते हैं तो देह-यंत्र के निकम्मे द्रव्यों को लेते आते हैं, जिन्हें फेफड़ा बाहर फेंक देता है। तिजारती जहाज़ की भांति ये जाते और आते दोनों सफ़र में बोझा लादते हैं। अन्य देहाणु धमनियों और शिराओं की दीवारों और रेशों में हो कर घुस जाते हैं और मरम्मत आदि का कार्य, जिसके लिये वे भेजे गये हैं, करने लगते हैं।

रुधिर के लाल देहाणुओं अर्थात् भारवाहकों के अतिरिक्त और भी कई प्रकार के देहाणु रुधिर में होते हैं। इन में पुलिसमैन और सिपाही बड़े ही मनोरंजक होते हैं। इन देहाणुओं का कार्य है कि ये देह यंत्र को उन कीटाणुओं से सुरक्षित रक्खें जिनसे शरीर में बीमारी या पीड़ा पहुंचने की आशंका हो। ज्यों ही कोई पुलीस देहाणु ऐसे कीटाणु को पाता है त्यों ही वह इससे लिपट जाता है और इसे निगल

जाने की चेष्टा करता है, यदि यह बहुत बड़ा न हो। यदि यह बहुत बड़ा हुआ तो वह अन्य देहाणुओं को मदद के लिये बुलाता है, और यह संयुक्त सेना उस कीटाणु को पकड़े २ देह यंत्र के किसी छिद्र के पास ले जाती है और उसे बाहर निकाल देती है। फोड़े, फुन्सियां आदि इसी प्रकार के कीटाणुओं के निकाले जाने के उदाहरण हैं, जहां ये शरीर यंत्र के पुलीसमैन विषैले कीटाणुओं को निकालते हैं।

रुधिर के लाल कीटाणुओं को बहुत काम करना पड़ता है। वे शरीर के अंगों में आक्सीजन पहुंचाते हैं, वे अन्न से ग्रहण किए हुए पोषण को शरीर के उन अंगों में पहुंचाते हैं जहां नई रचना या मरम्मत के लिये इसकी आवश्यकता होती है। वे पोषण में से उन्हीं २ तत्त्वों को खींच लेते हैं जिनसे आमाशयिक द्रव, लार, पेनक्रियाटिक द्रव, पित्त, दूध इत्यादि २ बनते हैं और फिर इन पदार्थों को कार्य के अनुकूल उचित परिमाण में मिलाते हैं। वे हज़ारों काम किया करते हैं और सर्वदा काम में लगे रहते हैं, जैसे चींटियां सर्वदा काम में लगी रहती हैं; पूर्वीय आचार्य बहुत दिनों से इन अणु जीवों को जानते आये हैं और इनके अस्तित्त्व और इनकी क्रियाओं के विषय में अपने शिष्यों को शिक्षा देते आये हैं। परन्तु यह बात पश्चिमी विज्ञान के लिये शेष रह गई है कि वह इसका वृहत् और सुविस्तृत वर्णन करे।

हम लोगों के जीवन के प्रत्येक क्षण में ये देहाणु उत्पन्न हुआ और मरा करते हैं। ये देहाणु खूब बढ़ कर तब फिर भागों में विभक्त हो जाने के कारण दूसरे देहाणुओं को जन्माते

हैं, पहला देहाणु फूलने लगता है और फूलते २ दो भागों में हो जाता है, और बीच में जोड़नेवाली कमर रहती है, फिर यह कमर टूट जाती है और एक देहाणु के स्थान में दो देहाणु हो जाते हैं। फिर नया देहाणु दो भागों में विभक्त होता है; इस प्रकार क्रिया जारी रहती है।

ये देहाणु शरीर को अपने आप नया बनाए रखने की क्रिया करने के लिये समर्थ बनाए रहते हैं। मानव शरीर का प्रत्येक भाग लगातार परिवर्तित हो रहा है और इसके रेशे बदल जाया करते हैं। हमारा चमड़ा, हड्डियां, बाल, मांसपेशियां इत्यादि सब में अनवरत मरम्मत हुआ करती है और ये ठीक बनाई जाया करती हैं। हमारे नखों को नए हो जाने में क़रीब २ चार महीने लगते हैं; चमड़े के नये होने में ४ सप्ताह लगते हैं। हमारे शरीर का प्रत्येक अंग लगातार रद्दी हुआ करता और नया बना करता है, मरम्मत जारी रहती है। और ये नन्हे २ कारीगर देहाणु उन मज़दूरों के दल हैं, जो इस आश्चर्यजनक कार्य को किया करते हैं। इन नन्हे २ कारीगरों के करोड़ों २ के दल घूम २ कर और एक जगह पर स्थित हो २ कर हमारे शरीर में रद्दी रेशों की जगह पर नई सामग्री जुटाया करते और पुराने निकम्मे हानिकारक कणों को शरीर-यन्त्र के बाहर किया करते हैं।

नीच जन्तुओं में प्रकृति प्रवृत्तिमानस को पूरा अवकाश और विस्तृत क्षेत्र देती है; परन्तु ज्यों २ जीवन उच्च पदवी धारण करता है (अर्थात् ऊंची योनि में आता है) त्यों २ बुद्धि विकसित होने लगती है और प्रवृत्तिमानस का क्षेत्र संकु-

चित होता जाता है। उदाहरण के लिये कीड़ों और मकोड़ों को देखो, तो वे नयी टांगों, पंजों इत्यादि के जमा लेने में समर्थ होते हैं। घोंघे तो अपने सिर के कुछ भागों को भी नया बना लेते हैं, यहाँ तक कि यदि उनकी आंखें नष्ट हो हो जायँ तो नई आंखें भी पैदा कर लेते हैं। कोई २ मछलियाँ अपनी नई पूंछ पैदा कर लेती हैं। छिपकली आदि नई पूंछें, हड्डियां, मांसपेशियां और अपनी रीढ़ की हड्डी के भी कुछ भागों को नया पैदा कर लेती हैं। नीचातिनीच जन्तु को अपने खोए हुए अंग को फिर से पैदा करने का अधिक से अधिक सामर्थ्य है, और वे अपने को बिलकुल नया बना सकते हैं यदि उनके शरीर का छोटा से छोटा भाग भी बचा हो जिस पर वे नए भागों को पैदा कर सकें। उच्च जन्तु ज्यों २ उंचाई की सीढ़ी पर चढ़ते हैं, त्यों २ उनकी यह शक्ति क्षीण होती जाती है। चूँकि मनुष्य सब से ऊँचा है इसलिये इसने तो अपनी रहन आदि की कुरीतियों से सबसे अधिक शक्ति खो दी। कुछ अधिक सिद्ध योगियों ने इस प्रकार के कुछ आश्चर्यजनक कार्य कर दिए हैं, और कोई भी हो, यदि धैर्य के साथ अभ्यास करता रहे तो, प्रवृत्तिमानस और देहाणुओं पर अधिकार जमा कर शरीर के रोगी अंगों और निर्बल भागों को चंगा कर सकता है।

साधारण मनुष्य को भी चंगा करने की शक्ति है और यह शक्ति सर्वदा काम करती है, पर अधिकांश मनुष्य इस पर ध्यान नहीं देते। किसी ज़खम के अच्छे होने के उदाहरण पर विचार कीजिए। आइये देखें कि ज़खम किस तरह पूरा

होता है। यह बात आपके ध्यान देने और अध्ययन करने के योग्य है। यह इतनी प्रकट बात है कि हम इस पर ध्यान ही नहीं देते; परन्तु यह इतनी आश्चर्यजनक बात है कि इस पर ग़ौर करने से शिष्य को विदित हो जायगा कि ज़ख़म को चंगा करने में चेतनता की कितनी बड़ी महिमा प्रकट होती है।

कल्पना कीजिए कि किसी मनुष्य का शरीर ज़ख़मी हुआ है—अर्थात् कहीं कट गया है या किसी बाहरी चीज़ के लग जाने से फट गया है। रेशे, पंछा और रुधिर बहाने की नालियां, द्रवस्रावी मांसखंड, मांसपेशियां, नाड़ियां और कभी २ हड्डियां खंडित हो जाती हैं और उनकी शृंखला टूट जाती है। ज़ख़म से रुधिर बहने लगता, उसका मुंह विवृत हो जाता और पीड़ा होने लगती है। नाड़ियां इस समाचार को मस्तिष्क में पहुंचाती हैं और तुरत सहायता पाने के लिये शोर मचाती हैं, और प्रवृत्तिमानस शरीर में इधर उधर खबरें भेजने लगता है और मरम्मत करने वाले देहाणुओं की उपयुक्त सेना को तलब करता है, जो झपट कर खतरे के मुक़ाम पर पहुंचती है। इस अर्से में ज़ख़मी रुधिर की नालियों से बह २ कर रुधिर, भीतर घुसे हुए बाहरी पदार्थों को धो बहाता है या धो बहाने की चेष्टा करता है; ये बाहरी पदार्थ धूल, मैला और कीटाणु इत्यादि हुआ करते हैं और यदि भीतर रह जांय तो विष उत्पन्न कर दें। रुधिर जब बाहर की हवा के सम्पर्क में आता है तो जम जाता है, और सरेस की भांति लसलसा पदार्थ बन जाता है, और ज़ख़म पर पपड़ी डाल देने की नींव डालता है।

करोड़ों देहाणु, जिनका कर्तव्य मरम्मत करना है; मौक़े पर दौड़ कर पहुंचते हैं और रेशों को जोड़न लग जाते हैं, और अपने काम में आश्चर्यजनक चैतन्यता और कर्मण्यता दिखाते हैं। ज़खम के दोनों ओर के रेशों, नाड़ियों, रुधिर की नालियों के देहाणु बढ़ने लगते हैं और करोड़ों नये देहाणुओं को पैदा कर देते हैं, जो दोनों ओर से आगे बढ़ कर अन्त में ज़ख़म के बीच में मिल जाते हैं। पहले तो इन देहाणुओं का बढ़ना बेक़ायदे और निष्प्रयोजन की वृद्धि सा प्रतीत होता है; परन्तु थोड़े ही अर्से में शासक मानस और उसके अधीनस्थ प्रभाव केन्द्रों का हाथ प्रकट होने लगता है। रुधिर की नालियों के नए देहाणु उस पार के उसी प्रकार के देहाणुओं से मिलने लगते हैं और नई नाली बन जाती है जिसमें रुधिर फिर बहने लगे। जोड़नेवाले रेशों के देहाणु अपनी ही भांति के अन्य देहाणुओं से मिल जाते हैं और चारों ओर से ज़खम को भरने लगते हैं। नाड़ियों के नए देहाणु प्रत्येक पृथक् सिरों पर बनने लगते हैं और बाल सदृश रेशों को आगे बढ़ा कर शनैः २ तार जोड़ देते हैं और फिर विना बाधा के समाचार आने जाने लगते हैं। जब यह भीतरी कुल काम समाप्त हो जाता है, और रुधिर की नालियां, नाड़ियां और जोड़नेवाले रेशे जब अच्छी तरह से मरम्मत हो जाते हैं तब चमड़े के देहाणु काम ख़तम करने में लिपट जाते हैं, और चमड़े के नये देहाणु बनने लगते हैं और ज़ख़म के ऊपर नया चमड़ा बन जाता है, जो ज़ख़म कि अब तक पूरा हो गया रहता है। ये सब बातें बड़ी तरतीब से होती

हैं, जिससे चेतना और सुरीति झलकती है। ज़ख़म के चंगा होने में जो ज़ाहिरा बड़ा सादा काम मालूम देता है-सावधान निरीक्षक सर्वव्यापक प्रकृति की चैतन्यता को प्रत्यक्ष देखता है-सृष्टिक्रिया का प्रत्यक्ष उदाहरण पाता है। प्रकृति सर्वदा इच्छुक रहती है कि अपने पर्दे को हटा ले और हम लोगों को भीतरी कोठरी की कार्रवाइयों को देखने दे; परन्तु हम बेचारे मूर्ख लोग उसके निमंत्रण की परवाह नहीं करते, वरन् बिना ध्यान दिये ही चले जाते हैं और मूर्खता की बातों तथा हानिकारक कामों में अपने मानसिक बल को नष्ट करते हैं।

यहां तक तो देहाणु के विषय में हुआ। देहाणु का मानस सर्वव्यापक मानस का-जो चित्त का महत् भंडार है-अंश है, और देहाणुओं के केंद्रस्थल के मानस से सम्बन्ध रखता है और उन्हीं द्वारा प्रेरित हुआ करता है; ये केन्द्रस्थल के मानस और उच्चमानस के आधीन होते हैं, यह सिलसिला तब तक चला जाता है जब तक अंत में मनुष्य के प्रवृत्ति-मानस तक नहीं पहुंच जाता। परन्तु देहाणु मानस बिना अन्य दोनों तत्वों-भौतिक द्रव्य और प्राण के—अपने को प्रगट करने में समर्थ नहीं हो सकता। इसे अच्छी तरह से पचाए हुए अन्न से ताजी सामग्री ग्रहण करने की आवश्यता होती है कि वह अपने प्रगट होने का साधन बना ले। इसको प्राण अर्थात् जीवट शक्ति की भी आवश्यकता होती है कि यह गति और कार्य कर सके। जीवन की तत्त्वत्रयी-मानस, द्रव्य और शक्ति-देहाणु तथा मनुष्य दोनों में आवश्यक है।

हम पहले के अध्यायों में पाचन के विषय में और रुधिर में पुष्कल पोषणकारी सुपक्व सामग्री उपस्थिति करने की प्रधानता में, जिससे वह शरीर की मरम्मत और उसके भागों की रचना अच्छी तरह कर सके, बहुत कुछ कह आये हैं। इस अध्याय में हम यह बतला गए हैं कि कैसे देहाणु उस सामग्री को शरीर के बनाने में व्यवहार करते हैं—कैसे वे उसका व्यवहार अपने ही बनाने में करते हैं और फिर कैसे वे अपने ही को बना लेते हैं। स्मरण रक्खो कि ये देहाणु जो ईंटों की भांति प्रयुक्त होते हैं, अपने चारों ओर अन्न से प्राप्त सामग्री को लपेट लेते हैं और अपने लिये मानो शरीर बना लेते हैं; तब ये थोड़ा प्राण ले लेते हैं और उस जगह पहुंचते हैं, जहां इनकी आवश्यकता होती है, जहां ये अपने को बनाते हैं और स्वयम् अपने नए रेशे, हड्डी या मांसपेशी आदि का भाग बन जाते हैं। अपनी देह बनाने के लिये बिना समुचित सामग्री पाए ये देहाणु अपना काम नहीं कर सकते, सच तो यह है कि जी ही नहीं सकते। वे मनुष्य जो अपने ही आचरणों से क्षीण हो गए हैं और जो अधूरे पोषण का दुःख भोग रहे हैं, उनके शरीर में काफ़ी देहाणु नहीं होते और इसलिये उनके शरीर की क्रिया उचित रीति से नहीं होती। देहाणुओं को सामग्री मिलनी चाहिये कि जिससे वे देह बना सकें, और एक ही तरीक़ा है जिससे उनको सामग्री मिल सकती है—कि भोजन से पोषण प्राप्त किया जाय। जब तक देह-यंत्र में काफ़ी प्राण न होगा, तब तक ये देहाणु अपने कार्यों के करने में पूरी शक्ति नहीं

लगा सकते, जिससे सारे शरीर में जीवट की कमी प्रगट होने लगती है।

कभी २ मनुष्य की बुद्धि इस प्रवृत्तिमानस को इतना तंग कर देती है और इतना घुड़कती है कि बेचारा बेहूदा मार्ग ग्रहण कर लेता है और बुद्धि से भय खाने लगता है और अपने नित्य के कार्यों को उचित रीति से नहीं कर सकता तथा देहाणु ठीक नहीं पैदा किये जाते। ऐसी दशाओं में जब बुद्धि असल बात को समझ जाती है, तब अपनी पिछली भूलों को सुधारना चाहती है और प्रवृत्तिमानस को ढाढ़स देने लगती है कि "तुम तो अपने काम को बहुत अच्छी तरह समझते हो, और अब तुम्हें अपना राज करने का पूरा अधिकार मिलेगा निश्चय रक्खो" और फिर इसके बाद हिम्मत दिलाने, तारीफ करने और उसमें विश्वास रखने के शब्द कहे जाते हैं, तब प्रवृत्तिमानस अपने चित्तस्थैर्य को धारण कर लेता है और अपने घर का प्रबंध करने लगता है। कभी २ यह प्रवृत्तिमानस अपने मालिक तथा अन्य बाहिरियों के विपरीत पूर्व विचारों से इतना अभिभूत हो जाता है कि वह घबड़ा उठता है और फिर इसके असली अवस्था में आने में बहुत समय लगता है कि यह ठीक शासन कर सके। ऐसी दशा में अकसर यह होता है कि मातहती के देहाणु, केन्द्रों के मानस, वस्तुतः बग़ावत कर जाते हैं और सदर की आज्ञाओं को नहीं मानते। इन दोनों दशाओं में मनुष्य के दृढ़ संकल्प की—निश्चित आज्ञा की—जरूरत पड़ती है कि सारे शरीर में फिर से अमन चैन फैल जाय और मुनासिब काम

होने लगे। स्मरण रखिए कि प्रत्येक इन्द्रिय अवयव और भाग में किसी न किसी प्रकार की चेतना होती है और दृढ़ इच्छा की अच्छी प्रवल आज्ञा से विकृत अवस्थाओं में भी प्रायः सुधार हो जाता है।

उन्नीसवां अध्याय।

शासनातीत अंगों पर अधिकार।

इस किताब के पिछले अध्याय में हम आपको समझा आए हैं कि मानव शरीर करोड़ों नन्हे २ देहाणुओं से बनता है; प्रत्येक के आधीन काफ़ी सामग्री रहती है कि वह अपना काम कर सके; काफ़ी प्राण रहता है कि उसे आवश्यकतानुसार बल मिलता रहे और पर्याप्त चेतना रहती है कि जिससे वह अपने कार्य को ठीक पथ पर कर ले जाय, प्रत्येक देहाणु एक सम्प्रदाय या वंश से सम्बन्ध रखता है, और उस देहाणु की चेतना उस सम्प्रदाय या वंश के प्रत्येक देहाणु की चेतना से लगाव रखती है; सम्प्रदाय या वंश की सम्मिलित चेतना समस्त सम्प्रदायमानस बनती है। ये सम्प्रदाय भी एक बड़े समुदाय के अंग हुआ करते हैं, और इसी तरह दर्जे बदर्जे चला जाता है, जब तक सारे शरीर भर का एक राज्य प्रवृत्तिमानस के अधिकार में होने के दर्जे तक नहीं पहुँच जाता, इन सम्प्रदायों और समूहों पर शासन रखना प्रवृत्तिमानस के कर्तव्यों में से है और वह प्रायः अपना काम अच्छी ही तरह से करता है, यदि बुद्धि उसमें हस्ताक्षेप न करे, जो कभी कभी अपने भय के खयालात प्रवृत्तिमानस के पास भेज देती है या किसी दूसरे ही प्रकार से उसे मूढ़ बना देती है। कभी २ इसके कार्य में बुद्धि इस

प्रकार बाधा पहुँचाती है कि वह पार्थिव शरीर को नियामित रखने के लिये देहाणु चेतना को विपरीत और प्रतिकूल आदतें पकड़ा देती है। उदाहरण के लिये कोष्ठवद्ध के रोग पर ध्यान दो, बुद्धि दूसरे काम में फँसे रहने के कारण, शरीर को प्रवृत्तिमानस की आज्ञा (हाजत ज़रूरी) का पालन न करने देगी, जोकि मलाशय के देहाणुओं की पुकार पर जारी की गई है. और न पानी की माँगों पर ध्यान देगी तो परिणाम यह होगा कि प्रवृत्तिमानस उचित आज्ञाओं का पालन नहीं कर सकता और यह तथा देहाणु सम्प्रदायों में से कुछ ये दोनों घवड़ा कर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। स्वाभाविक आदत के स्थान पर बुरी आदतें पैदा हो जाती हैं और कभी २ किसी २ देहाणु सम्प्रदाय में एक प्रकार की बग़ावत उठ खड़ी हो जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि इसका कारण उनकी स्वाभाविक क्रियाओं में बाधा पहुँचाना रहता है अथवा उनके लिये और विपरीत रिवाजों का पैदा करना होता है, जिससे गड़बड़ उपस्थित हो जाती है। कभी २ ऐसा प्रतीत होता है कि छोटे समूहों में से कुछ (और कभी २ तो बड़े समूहों में से कुछ) हड़ताल कर देते हैं, और अनभ्यस्त तथा अनुचित कार्य जब उनके जिम्मे किये जाते हैं, या उचित से अधिक क़ाम लिया जाता है, या ऐसा ही कोई अन्याय होता है कि उन्हें उचित पोषण नहीं मिलता तो वे बग़ावत कर देते हैं। ये नन्हे २ देहाणु उसी तरह से कार्य करते हैं जैसे उसी दशा में मनुष्य कार्य करते हैं; देखने वाले और जांच करने वाले को दोनों की समानता आश्चर्य

जनक प्रतीत होती है। यदि सुप्रबन्ध न कर दिया जाय तो यह हड़ताल और बग़ावत फैल जाय; और जब कभी अधूरा ही प्रबन्ध कर दिया जाता है तो ये देहाणु काम को तो करने लगते हैं परन्तु अपनी योग्यतानुसार उत्तम कार्य करने के स्थान पर उदासीनता से बहुत थोड़ा काम करते हैं, सो भी जब कभी मन में आता है तब स्वभाविक दशाओं को पुनः स्थापित करने से, अच्छा और काफ़ी पोषण देने से, उन पर उचित ध्यान रखने से शनैः २ सुव्यवस्था प्राप्त होगी; परन्तु दृढ़ संकल्प से सीधा हुक्म देहाणु समूहों को देने से सुव्यवस्था में शीघ्रता होती है। इस तरीक़े से कितनी जल्दी अमन चैन फिर स्थापित हो जाती है उसे देखने से आश्चर्य होता है। ऊँचे योगी शासन से बाहर के देह यंत्र पर आश्चर्यजनक अधिकार प्राप्त कर लेते हैं और शरीर के प्रत्येक देहाणु पर सीधी हुकूमत रखते हैं। भारतवर्ष के नगरों के योगी भी, जो झूठे योगी से थोड़ा ही बेहतर होते हैं, और जो पैसे के लिये अपनी क्रियाएँ दिखलाया करते हैं, अपने देहाणुओं पर प्रभाव रखने के बहुत ही मनोरंजक उदाहरण दिखला सकते हैं; इनकी कोई २ प्रदर्शनी तो नाजुक दिमाग़ वालों को घृणास्पद और सच्चे योगियों के लिये दुखदायी हो जाती है, जब वे देखते हैं कि ऐसी उत्तम योग क्रिया इस प्रकार भ्रष्ट की जा रही है।

अभ्यास से बलवती बनी हुई दृढ़ इच्छा इन देहाणुओं और इनके समूहों पर केवल साधारण धारणा द्वारा असर डालने में समर्थ हो जाती है; परन्तु इस रीति के प्रयोग करने

में शिष्यों के लिये अधिक साधना की आवश्यकता है । दूसरे तरीक़े भी हैं, जिनके द्वारा शिष्य अपनी दृढ़ इच्छा को कतिपय शब्दों के ध्यान पूर्वक जाप से एकाग्र करके उसका असर पहुँचा सकता है । पश्चिमी लोगों की स्वतः मंत्रणाएं और प्रतिज्ञाएँ इसी प्रकार काम देती हैं । शब्दों के ध्यान पूर्वक जाप से ध्यान और आकांक्षा पीड़ा के स्थान पर जम जाती हैं, और शनैः २ हड़ताल वाले देहाणुओं में अमन चैन स्थापित हो जाती है; वहां पर कुछ प्राण भी पहुँचा दिया जाता है, इससे देहाणुओं को और भी अधिक शक्ति प्राप्त हो जाती है । साथ ही साथ पीड़ित स्थान का रुधिरसंचार भी बढ़ जाता है, और इससे देहाणुओं को अधिक पोषण और रचना की सामग्री मिल जाती है ।

पीड़ित स्थान पर अभीष्ट प्रभाव डालने के लिये देहाणुओं को प्रबल आज्ञा देने की बहुत ही सरल विधि हठयोगी लोग अपने शिष्यों को बतलाते हैं, जब तक वे धारणा युक्त आकांक्षा का प्रयोग, बिना अन्य सहायता के करने में असमर्थ रहते हैं । यह सरल विधि यह है कि बागी अंग या अवयव से "बात की जाय" उसे इस तरह की आज्ञा दी जाय, जैसी स्कूल के लड़कों के एक झुंड या पलटन के रंगरूटों के एक स्काड को दी जाती है । आज्ञा को स्पष्टता और दृढ़ता के साथ दो; अवयव से वही बात कहो जो तुम उससे कराया चाहते हो, आज्ञा को हाकिमाना तौर से कई बार दुहराओ । उस भाग पर, या पीड़ित भाग के ऊपर के अंग पर मुलायम थापी देने से वहां के देहाणुओं का ध्यान उसी प्रकार आक-

र्पित हो जायगा जैसे किसी मनुष्य के कंधे पर ठोंक देने से वह रुक कर तुम्हारी ओर मुंह कर लेता है और तुम्हारी बातों को सुनने लगता है। अब यह मत ख्याल कर लो कि हम तुम्हें बतलाने की चेष्टा कर रहे हैं कि देहाणुओं के कान होते हैं और तुम्हारी भाषा को वे समझ जाते हैं; जो बात होती है वह यह है कि हाकिमाना तौर से कहने से तुम्हें उन शब्दों द्वारा प्रगट की हुई मानसिक मूर्ति की कल्पना में सहायता मिलती है, और उसका अभिप्राय सहानुभावी नाड़ी में प्रवृत्तिमानस द्वारा प्रेरित होकर ठीक स्थल पर पहुँच जाता है और देहाणु समूहों तथा देहाणु व्यक्तियों पर विदित हो जाता है। जैसा हम ऊपर कह आए हैं, रुधिर और प्राण की अधिक पहुँच भी वहां हो जाती है, क्योंकि आज्ञा देने वाले मनुष्य के धारणासबल ध्यान का उनपर प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार अन्य रोगनिवारक की आज्ञा भी दी जा सकती है; रोगी का प्रवृत्तिमानस उस आज्ञा को ग्रहण करके उसे देहाणुओं की बग़ावत के स्थान पर पहुंचा देता है। यह बात हमारे शिष्यों में बहुतों को लड़कों के खेलसी प्रतीत होगी; परन्तु इसके समर्थन के लिये अच्छे २ वैज्ञानिक प्रमाण और कारण हैं। योगी लोग इसे देहाणुओं तक आज्ञा पहुँचाने का बहुत ही सरल तरीक़ा समझते हैं। जब तक इसकी परीक्षा न कर लो तब तक इसे फ़जूल समझ कर फेंक न दो। यह शताब्दियों के जांच में अटल बना हुआ है, और इससे बढ़कर और कोई तरीक़ा अबतक काम करने का नहीं पाया गया है।

यदि तुम अपने शरीर के किसी भाग पर इस तरीक़े का

प्रयोग किया चाहते हो, या किसी अन्य के शरीर पर इसको आजमाया चाहते हो, जोकि पूरा काम नहीं कर रहा है, तब उस अंग पर अपनी हथेली से धीरे २ थापी दो और (उदाहरण के लिये) यों कहो कि "सुनो यकृत्, तुम्हें अपना काम अच्छी तरह करना पड़ेगा—तुम इतने सुस्त हो कि मेरे मुआफ़िक़ नहीं हो, मैं दृढ़ आशा करता हूँ कि अबसे तुम अच्छा काम करोगे, चलो काम करो, हम कहते हैं इस मूर्खता को छोड़ो"। ठीक ये ही शब्द आवश्यक नहीं हैं आपको जो शब्द आवें उन्हीं का प्रयोग कीजिए, परन्तु उनमें हाकिमाना स्पष्ट भाव और आज्ञा होनी चाहिए कि अवयव अपना काम करने लगे। इसी तरीक़े से हृदय के काम भी उन्नत हो सकते हैं; परन्तु हृदय को आज्ञा देने में बहुत मुलायमियत रखनी चाहिए। क्योंकि हृदय के देहाणु समूह यकृत् के देहाणु समूहों की अपेक्षा अधिक चेतनाशक्ति वाले हैं और इनके साथ आदर का व्यवहार करना चाहिए। हृदय को स्मरण दिला दीजिये कि "मैं बेहतर काम की आशा करता हूँ"; परन्तु आदर से कहिये; यकृत् की भाँति इस पर घुड़की मत चलाइए। सब अवयवों की अपेक्षा हृदय का देहाणु समूह बहुत चेतना विशिष्ट है। यकृत् का देहाणु समूह बड़ा मूर्ख है, उसमें चेतना की कमी है, उसका स्वभाव खच्चर का है; हृदय तो अच्छे कुलीन घोड़े की भाँति चैतन्य और चौकन्ना रहता है। अगर आप का यकृत् बग़ावत करे तो उसको डांट कर आज्ञा दो, उसके खच्चर स्वभाव को याद रक्खो। आमाशय भी ख़ासा चैतन्य है, यद्यपि हृदय की समता में नहीं है;

मलाशय बड़ा फ़र्मांवर्दार है; यद्यपि इसके साथ बड़ा ज़ुल्म होता है पर यह धीर बना रहता है। यदि आप मलाशय को आज्ञा दें कि हम इतने बजे सवेरे रोज़ मल त्यागना चाहते हैं। बजे बतला दीजिए और ठीक उसी वक्त पर मलत्यागने जाया कीजिए, अपने वचन को पूरा करते रहिए, तो थोड़े ही दिनों में आप को मालूम हो जायगा कि मलाशय आप की आज्ञा की ठीक पाबन्दी कर रहा है। परन्तु स्मरण रखिए कि बेचारे मलाशय के साथ बड़ा दुर्व्यवहार हुआ है और उसको आपके वचनों का विश्वास करने में कुछ समय लगेगा। स्त्रियों का अनियमित मासिकधर्म नियमित बनाया जा सकता है और स्वाभाविक आदत प्राप्त की जा सकती है। इसमें थोड़े ही महीने लगेंगे। जिस तारीख़ को मासिकधर्म होना चाहिए उस तारीख़ को स्मरण कर लें, और प्रतिदिन उसी रीति से बर्ताव करके, जिसका ऊपर वर्णन हो चुका है, मासिकधर्म वाले देहाणु समूहों से कहें कि " अब मासिकधर्म के लिये इतने दिन और बाक़ी हैं, तुम तैयार रहना, अपने काम करते जाओ कि जब समय आवे सब ठीक रहे, जब समय बहुत निकट आ जाय तो कहो कि " समय अब थोड़ा रह गया है, काम ठीक किए जाओ "। मज़ाक़ की भाँति आज्ञा मत दो, किन्तु ऐसा कहो कि मानो तुम दिलोजान से कहते हो, और तब उस आज्ञा का पालन होगा। बहुत से अनियमित स्त्री धर्मों को एक से ले कर तीन महीनों में इस रीति से अच्छा होते पाया है। यह आपको हास्यजनक जान पड़ेगा, पर हम यही कहेंगे कि आप परीक्षा करके उसको जांच लीजिए। हमको

यहां इतना अवकाश नहीं है कि प्रत्येक रोग के लिये अलग २ प्रयोग बतलावें, पर आप ऊपर लिखी बातों से समझ जाइए कि पीड़ा स्थल पर किस अवयव या देहाणु समूह का अधिकार है और तब उसको आज्ञा दीजिए। अगर आप इस इस बात को न ठीक कर सकें कि कौन अवयव गड़बड़ मचाए है, तो आप कम से कम पीड़ा के स्थल को तो जान सकते हैं, फिर शरीर के उसी भाग को आज्ञा दीजिए। आपके लिए यह आवश्यक नहीं है कि आप प्रत्येक रोगी अवयव के नाम जानें, आपको केवल उस स्थल पर आज्ञा देना चाहिए, यों कहिये "सुनो जी........"। यह किताब रोगों को दूर करने के लिये नहीं उद्दिष्ट है, इसका अभिप्राय रोगों को न आने दे कर स्वास्थ्य ठीक रखने का है; परन्तु तो भी कुछ थोड़ी बातें बागी अवयवों को मार्ग पर ला कर आपको सहायता पहुँचाने के लिये लिख दी गई हैं।

ऊपर लिखी हुई रीतियों और उनके रूपान्तरों के प्रयोग से जो आप को अपने शरीर पर अधिकार प्राप्त होगा उसको देख कर आप को आश्चर्य होने लगेगा। तुम सिर से रुधिर नीचे बहा कर सिर की पीड़ा दूर कर सकते हो; आप ठंढे हाथ पांव में अधिक रुधिर संचार की आज्ञा दे सकते हैं और रुधिर संचार करके उसे गरम कर सकते हैं, हां, रुधिर के साथ प्राण भी अवश्य जावेगा। आप रुधिर संचार में समता ला सकते हैं जिस से सारा शरीर उत्तेजित हो जाय। आप शरीर के थके भाग को विश्राम पहुँचा सकते हैं। सच तो यह है कि यदि आप इस तरीके को धैर्य के साथ जांच लें

और ठीक वर्तना सीख लें तो इतना कार्य इस तरीके के प्रयोग से कर सकते हैं जिसकी हद नहीं। अगर आप यह नहीं ठीक कर सकते कि कौन सी आज्ञा दें तो आप इस अंग से यही कहें:—"सुनो जी, अच्छे हो जाओ, हम चाहते हैं कि यह पीड़ा हट जाय, हम चाहते हैं कि तुम अच्छा काम करो" या ऐसी ही और बात कहो। इसमें सन्देह नहीं कि इसमें अभ्यास और धैर्य की आवश्यकता है पर इनके बिना तो यह क्या, कोई भी बात प्राप्त नहीं होती।

बीसवां अध्याय ।

प्राणशक्ति ।

जब शिष्य इस किताब को पढ़ेगा तो उसे मालूम हो जायगा कि हठयोग के आभ्यन्तरिक और बाह्य दो पटल हैं । आभ्यन्तारिक से हमारा यह अभिप्राय है कि केवल उन्हीं लोगों के लिये जो, विशेष शिक्षा की कुंजी पाए हुए हैं, और बाह्य से हमारा अभिप्राय ऊपरी, सर्वगम्य का है । इस विषय का बाह्यपटल भोजन से उचित पोषण ग्रहण करना, पानी से शरीर यंत्र की सिंचाई और मैलों की धुलाई करना, सूर्य की किरणों से वृद्धि और स्वास्थ्य का लाभ उठाना, व्यायाम से बल प्राप्त करना, उचित श्वास से लाभ उठाना, स्वच्छ और ताज़ी हवा से फ़ायदा उठाना है । ये बातें पश्चिमी और पूर्वी दोनों दुनियाओं को मालूम हैं, योगी और अयोगी दोनों पर विदित हैं; इनके अभ्यास से लाभ होते हैं उनसे दोनों अभिज्ञ हैं । परन्तु इसका एक और भी पटल है, जो योगियों और थोड़े पूर्वीय लोगों को तो ज्ञात है पर पश्चिमी लोगों को और उनको जो योग के विषय से अनभिज्ञ हैं, बिलकुल अज्ञात है । इसके आभ्यन्तर पटल का आधार प्राण है । योगी लोग जानते हैं कि मनुष्य अपने भोजन से प्राण और पोषण प्राप्त करता है, पीने के पानी से प्राण प्राप्त करता है और सफ़ाई का काम लेता है; व्यायाम से प्राण और शारीरिक

विकास प्राप्त करता है, सूर्य की किरणों से प्राण और ताप दोनों ग्रहण करता है–हवा से प्राण और आक्सीजन दोनों लेता है। यह प्राण का विषय सारे हठयोग शास्त्र में भिना हुआ है और शिष्यों को इस पर गंभीर विचार करना चाहिए। जब प्राण इतनी प्रधान बात है तो इस प्रश्न पर विचार कर लेना चाहिए कि "प्राण क्या वस्तु है ?"

हमने प्राण की प्रकृति और उसके लाभों का वर्णन "श्वास विज्ञान" नामक छोटी किताब में कर दिया है। और हम इस किताब के सफ़हों में भी वे ही बातें भरकर इसे पूरा नहीं किया चाहते, जो बातें एक किताब में प्रकाशित हो चुकी हैं। परन्तु इस विषय और कतिपय अन्य विषयों को जो एक वार लिखे जा चुके, दुहरा कर लिखना आवश्यक समझते हैं, क्योंकि सम्भव है कि बहुत से मनुष्य जो इस किताब को पढ़ रहे हैं, उस किताब को न पढ़े हों। और प्राण का वर्णन न लिखना अनुचित है। और फिर भी हठयोग की पुस्तक और उसमें प्राण का वर्णन ही नहीं, कैसी अनर्थ की बात है। हम इस वर्णन में बहुत अवकाश न लेंगे और इस विषय के कुल भागों के देने का यत्न करेंगे।

सब युगों और देशों के गूढ़ाचारियों ने अपने कुछ चुने हुए शिष्यों को सर्वदा यह उपदेश छिपा कर दिया है कि हवा, पानी, भोजन, सूर्य के प्रकाश में और सर्वत्र एक ऐसा तत्त्व या पदार्थ पाया जाता है, जिससे तमाम क्रिया, शक्ति, बल और जीवट प्रगट होते हैं। इस तत्त्व के नाम देने में लोगों में भेद हुआ है और कहीं इसके सिद्धान्तों की व्याख्या में भी

अन्तर पड़ा है, परन्तु असल तत्त्व सब गूढ़ उपदेशों और शास्त्रों मे पाया जाता है और सैकड़ों वर्ष से पूर्वीय योगियों की शिक्षाओं और अभ्यासों में मिलता है। हमने इसका प्राण ही नाम रक्खा है, जिस नाम से यह हिन्दू गुरु और शिष्यों को विदित है, इसका अर्थ परमशक्ति है।

गुप्त साधनों के आचार्य लोग कहते हैं कि प्राण, शक्ति अर्थात् बल का सर्वव्यापक तत्त्व है, और सब शक्ति या बल इसी तत्त्व में उत्पन्न होते हैं अर्थात् इसी तत्त्व से कई रूपों में प्रगट होते हैं। इन विचारों से हमारी पुस्तक के इस विषय से सम्बन्ध नहीं है, और हम इतना ही समझ कर आगे बढ़ते हैं कि प्राण, शक्ति का तत्त्व है और सब जीवित चीज़ों में पाया जाता है और यही उन्हें निर्जीव पदार्थों से भिन्न करता है। इसे जीवन का क्रियावान् तत्त्व—या आप पसन्द करें तो जीवट बल ख्याल कर सकते हैं। यह सब प्रकार का जीवन काई से लेकर मनुष्य पर्य्यन्त, में पाया जाता है—पौधों के सादे जीवन से लेकर जानवरों के उच्चतम जीवन तक में पाया जाता है। प्राण सर्वव्यापक है। यह सब जीवित वस्तुओं में पाया जाता है, और चूंकि रहस्यशास्त्र बतलाते हैं कि जीवन प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक परमाणु में पाया जाता है—कुछ वस्तुओं की जाहिरी निर्जीवता केवल अल्प विकाश के कारण है, इसलिये हम उनके उपदेशों का यह अर्थ समझते हैं कि प्राण सर्वत्र है, सब पदार्थों में है। प्राण को जीवन से न गड़बड़ाना चाहिये—जीव परमात्मा का अंश है और उसी पर द्रव्य और शक्ति आवरण रूप में लिपटती है। प्राण,

शक्ति का एक रूप है, जिसे जीव अपने पार्थिव विकाश में काम में लाता है। जब जीव शरीर को छोड़ देता है तब प्राण उसके अधिकार में न रहने से, व्यक्तिगत परमाणुओं की, या परमाणु समूहों की जिनसे शरीर बना है, आज्ञा का पालन करता है; प्रत्येक परमाणु इतना प्राण ले लेता है कि नये समूह बना सके; अप्रयुक्त प्राण उस महाभंडार में मिल जाता है जहां से आया था। जब तक जीव अधिकार रक्खे रहता है, तब तक संसक्ति बनी रहती है और जीव की आकांक्षा से परमाणु सब एकत्र बँधे रहते हैं।

प्राण एक ऐसा नाम है जिससे हम उस सर्वव्यापक तत्त्व का बोध करते हैं, जो सब गति, बल, शक्ति, चाहे वे आकर्षण शक्ति के रूप में, चाहे बिजली, ग्रहों की चाल, और जीवों के उच्च से लेकर नीच जीवन तक में प्रगट है, सबका द्योतक है। यह बल और शक्ति के सब रूपान्तरों का सारांश कहा जा सकता है; यह वह तत्त्व है जो एक विशेष रीति से कार्य करके उस प्रकार की क्रिया उत्पन्न करता है जो जीवन के साथ रहती है।

यह प्रधान तत्त्व प्रत्येक द्रव्य में है, पर तो भी यह द्रव्य नहीं है। यह हवा में है पर न तो यह हवा है और न हवा का अवयव ही है। यह उस भोजन में है, जिसे हम खाते हैं, परन्तु यह वही पदार्थ नहीं है जो भोजन में पोषणकारी पदार्थ होते हैं। यह पानी में है परन्तु यह पानी के उन रासायनिक तत्त्वों में से एक भी नहीं है जिनसे पानी बना हुआ है। यह सूर्य के प्रकाश में है पर न तो यह ताप है न किरण।

यह इन सब चीज़ों की शक्ति है—चीज़ें तो केवल इसको वहन करने वाली हैं।

मनुष्य इसको हवा, भोजन, पानी, सूर्य के प्रकाश आदि से ग्रहण करने और उसे अपने देह यंत्र के काम में ले आने में समर्थ है। हमारे अभिप्राय को अच्छी तरह से समझ लीजिए। हमारा अर्थ यह नहीं है कि प्राण इन पदार्थों में इसी लिये है कि मनुष्य उसका व्यवहार करें, यह अभिप्राय नहीं है। प्राण तो इन पदार्थों में प्रकृति के नियम के अनुसार है, और मनुष्य की योग्यता इसके ग्रहण करने और काम में लाने की एक गौण मात्र है। यह शक्ति तो बनी ही रहेगी, चाहे मनुष्य रहे या न रहे।

जानवर और पौधे हवा के साथ इसे भी अपनी श्वास द्वारा खींचते हैं और यदि हवा में प्राण न रहता तो वे हवा से भरे रहने पर भी मर जाते। इसे आक्सीजन के साथ देह यंत्र ग्रहण करता है पर यह आक्सीजन नहीं है।

प्राण वायुमंडल की हवा में और अन्यत्र भी है, यह ऐसी जगहों में प्रवेश कर जाता है जहां हवा की पहुँच नहीं हो सकती। हवा का आक्सीजन जन्तुओं के जीवन के क़ायम रखने में प्रधान काम करता है, और कार्बन वैसा ही कार्य पौधों के जीवन में करता है; परन्तु प्राण जीवन के विकाश में एक पृथक् ही कार्य करता है, जो देह, धर्म, विद्या से अलग है।

हम लोग श्वास द्वारा लगातार हवा को खींच रहे हैं जो प्राण से भरी हुई है, और हवा से प्राण को खींच कर

वैसेही अपने कार्य में ला रहे हैं। प्राण वायुमंडल की हवा में स्वतंत्र दशा में पाया जाता है; हवा जब स्वच्छ और ताज़ी रहती है तो उसमें प्राण की पुष्कल मात्रा रहती है। हम लोग हवा से प्राण को और चीज़ों की अपेक्षा अधिक आसानी से ग्रहण कर सकते हैं। सामान्य रीति से श्वास लेने में हम प्राण की सामान्य मात्रा ग्रहण कर सकते हैं; परन्तु श्वास को अपने आधीन करके नियमित श्वास से (जिसे योगी की सांस या प्राणायाम कहते हैं) हम अधिक प्राण खींचने में समर्थ हो सकते हैं जो प्राण मस्तिष्क और नाड़िकेन्द्रों में जमा हो जाता है कि आवश्यकतानुसार काम में लाया जाय। हम प्राण को उसी प्रकार संचय कर सकते हैं, जैसे बिजली संचय करने वाली बैटरी उसको संचय करती है। योगियों में जो अनेक शक्तियां कही जाती हैं, वे इसी प्राण विषयक ज्ञान और प्राण के संचित भंडार को विचार पूर्वक काम में लाने से होती हैं। योगी लोग जानते है कि किस रीति से सांस लेने से प्राण के भंडार के साथ सम्बन्ध जुट जाता है, और उसी प्रकार श्वास लेकर अपनी आवश्यकतानुसार प्राण ग्रहण करके संचय किया करते हैं। इस प्रकार वे अपने शरीर ही को बलिष्ठ नहीं बनाते, बरन् मस्तिष्क भी इसी द्वार से अधिक शक्ति ग्रहण करता है, और इस से गुप्त शक्तियां जागृत हो सकती हैं और मानसिक शक्तियां प्राप्त हो सकती हैं। जिसको प्राण संचय करने का तरीका जानकर या अनजान में सिद्ध हो गया है, वह अपने शरीर से जीवट और शक्ति प्रवाहित किया करता

है, जिसको वे लोग अनुभव करते हैं, जो उस मनुष्य के सम्पर्क में आते हैं। ऐसे जीवट और शक्ति वाले मनुष्य दूसरों को भी जीवट दे सकते हैं और उन्हें अधिक शक्ति और स्वास्थ्य प्रदान कर सकते हैं। औजसरोगनिवारण इसी प्रकार किया जाता है, यद्यपि बहुत से प्रयोक्ताओं को यह भी नहीं मालूम रहता कि उनको यह शक्ति कहां से और कैसे प्राप्त हुई।

पश्चिमी वैज्ञानिक इस प्रधान तत्व से, जिससे हवा भरी रहती है, बहुत धुंधले रूप से अभिज्ञ हुए हैं; परन्तु इसके कोई रसायनिक लक्षण न पाकर, और अपने किसी औज़ार से इसे प्रत्यक्ष न कर सकने पर, वे लोग पूर्वीय लोगों के इस विचार को निरादर की दृष्टि से देखने लगे। वे इस तत्व को समझ न सके इसलिये इसे अस्वीकार करने लगे। ऐसा मालूम होता है कि उन्हें अब कुछ २ ऐसा प्रतीत होने लगा है कि अमुक स्थान की हवा में "कोई चीज़" है और बीमार मनुष्यों को उनके डाक्टर लोग उपदेश देते हैं कि उसी स्थान पर अपने खोए हुए स्वास्थ्य को पाने के लिये जाओ।

हवा के आक्सीजन को रुधिर अपनाता है और रुधिर संचार का यंत्र उसे अपने काम में लाता है। हवा में अन्तर्गत प्राण को नाड़ीजाल अपनाता है और उसे अपने काम में लाता है जैसे आक्सीजन मिश्रित रुधिर शरीर के सब अंगों में पहुँचाया जाता है कि जिनसे शरीर बने और सुधरे, वैसे ही प्राण भी नाड़ी यंत्र के सब भागों में शक्ति और जीवट लेकर पहुँचाया जाता है। यदि हम प्राण को जीवट का क्रियावान् तत्व

समझ लें तो हम इस बात की ओर भी साफ़ भावना कर सकेंगे कि हम लोगों के जीवन में वह कैसा प्रधान काम करती है। जैसे रुधिर का आक्सीजन देह की आवश्यकताओं से खर्च हो जाता है वैसे ही नाड़ीयंत्र द्वारा लिया हुआ प्राण भी सोचने, इच्छा करने और क्रिया आदि करने से खर्च हुआ करता है और उसको लगातार मुहइया की आवश्यकता बनी रहती है। प्रत्येक ख्याल, प्रत्येक क्रिया, इच्छा के प्रत्येक प्रयत्न, मांसपेशी की प्रत्येक गति में नाड़ी बल खर्च होता है; और यह नाड़ीबल वस्तुतः प्राण ही है। किसी मांसपेशी को संचालित करने के लिये मस्तिष्क नाड़ी द्वारा एक प्रेरणा भेजता है, और मांसपेशी संकुचित होती है; बस इतना प्राण वहां खर्च होगया। जब यह स्मरण रहेगा कि जितना प्राण मनुष्य ग्रहण करता है उसका अधिकांश श्वास में ली हुई हवा से आता है, तो उचित सांस लेने की प्रधानता अच्छी तरह समझ में आ जायगी।

यह बात देखने में आती है कि श्वास के विषय में पश्चिमी वैज्ञानिक-विचार आक्सीजन ही के ग्रहण और रुधिर संचार द्वारा उसके वितरण तक रह जाते हैं; योगियों के विचार प्राण के ग्रहण की क्रिया और नाड़ीयंत्र के मार्ग द्वारा उसके विकाश तक पहुंचते हैं। आगे बढ़ने के पहले नाड़ी यंत्र को समझ लेना लाभदायक होगा।

मनुष्य का नाड़ीयंत्र दो बड़े विभागों में विभक्त है, अर्थात् मस्तिष्कमेरुदंड विभाग और दूसरा सहानुभवी विभाग। मस्तिष्क मेरुदंड विभाग में वह नाड़ीसंस्थान है जो सिर

की खोपड़ी और रीढ़ की नाली में सन्निविष्ट है, अर्थात् मस्तिष्क का भेजा या गुद्दी और रीढ़ की गुद्दी इन्हीं के साथ इनसे निकली हुई शाखाएं भी हैं। यह विभाग मनुष्य की उन क्रियाओं का निरीक्षण करता है, जो संकल्प, चेतना आदि करके जाने जाते हैं। सहानुभवी विभाग में वह नाड़ी-जाल है जो मुख्यतः गले, पेट और पेट के नीचे के खोखले में स्थित है और भीतरी अवयवों में फैला हुआ है। इसका अधिकार अनिच्छापूर्व क्रियाओं पर है जैसे वृद्धि, पोषण आदि।

मस्तिष्क-मेरुदंड विभाग देखने, सुनने, स्वाद लेने, सूंघने, वेदना आदि की क्रियाओं को करता है। यह गति संचालित करता है; इसे जीव सोचने, चेतना प्रकाशित करने के काम में लाता है। यह वह साधन है, जिसके द्वारा जीव बाहरी जगत से व्यवहार करता है। इस विभाग की उपमा टेलीफ़ोन के तारों से दी जा सकती है; मस्तिष्क तो सदर दफ्तर है और मेरुदंड तथा अन्य नाड़ियां क्रमशः सदर तार और शाखा तार हैं।

मस्तिष्क भेजा अर्थात् गुद्दी का पुंज है; इसके तीन भाग हैं अर्थात् (१) मस्तिष्क ख़ास जो खोपड़ी के ऊपरी अगले, मध्य और पिछले भागों में रहता है, (२) छोटा मस्तिष्क जो खोपड़ी के निचले और पिछले भाग में रहता है, और (३) मेडुला ओबलांगेटा, जो मेरु दंड का चौड़ा आरम्भ है और जो छोटे मस्तिष्क के आगे रहता है।

मस्तिष्क ख़ास या असली मस्तिष्क मनके उस विभाग का अवयव है, जो बुद्धि विषयक क्रियाओं में प्रगट होता है।

छोटा मस्तिष्क ऐच्छिक मांसपेशियों की गतियों पर अधिकार रखता है। मेडुला ओबलांगेटा मेरुदंड का ऊपरी चौड़ा भाग है और उससे तथा छोटे मस्तिष्क से खोपड़ी की नाड़ियां निकल कर सिर के अनेक भागों में, इन्द्रियों में, गले और पेट के अवयवों तथा श्वास लेने के अवयवों में पहुंचती हैं।

मेरुदंड या रीढ़ की हड्डी की गुद्दी, रीढ़ की नाड़ी में भरी रहती है। यह गुद्दी की एक लम्बी ढेरी है जिसमें से रीढ़ की हड्डी की गांठों २ से शांखाएँ फूट २ कर उन नाड़ियों से जा मिलती हैं जो शरीर के सब भागों में फैली हुई हैं। मेरुदंड टेलीफोन के एक सदर तार की भांति है, और उस की शाखाएँ उससे लगी हुई शाखा तारों की भांति हैं।

सहानुभवी विभाग में दो प्रधान शृंखलाएँ नाड़ी गुच्छकों की हैं, जो मेरुदंड के दोनों बगलों में अवस्थित हैं; और इनके अतिरिक्त सिर, गर्दन, छाती और पेट के नाड़ी गुच्छक भी इन्हीं में नत्थी हैं। नाड़ी गुच्छक गुद्दी की एक छोटी ढेरी होती है जिसमें नाड़ी के देहाणु रहते हैं। ये नाड़ी गुच्छक एक दूसरे से तन्तुओं द्वारा लगाव रखते हैं, और इनका लगाव मस्तिष्क मेरुदंड विभाग से भी चेतनावाहिनी और क्रियावाहिनी नाड़ियों द्वारा है। इन्हीं नाड़ी-गुच्छकों से अनेक तन्तु निकल २ कर शरीर और रुधिर वाहिनी नालियों आदि के अवयवों से जा मिलते हैं। बहुत से स्थानों में ये नाड़ियां एकत्रित हो जाया करती हैं और वहां नाड़ीग्रन्थि (चक्र) बन जाती है। सहानुभवी विभाग अनिच्छा पूर्वक

प्रक्रियाओं पर शासन करता है, जैसे रुधिर संचालन, श्वास लेना और पाचन आदि।

जिस शक्ति या बल को मस्तिष्क इन नाड़ियों द्वारा शरीर के सब अंगों में भेजता है उसे पश्चिमी विज्ञानी "नाड़ी-बल" कहते हैं, यद्यपि योगी लोग उसे प्राण का विकाश समझते हैं। खासियत और वेग में वह बिजली की धारा के समान होता है। यह बात देखने में आवेगी कि बिना इस नाड़ी बल के हृदय धड़क नहीं सकता, भिन्न२ अवयव अपनी क्रिया नहीं कर सकते; सच तो यह है कि बिना इसके शरीर यंत्र बिलकुल निष्क्रिय हो जाता है, जब ये बातें ख्याल की जावेंगी तब प्राण के आकर्षण करने का महत्व सब पर विदित होगा; तथा इस श्वासविज्ञान की महिमा उससे भी अधिक होगी जितना पश्चिमी विज्ञान अब कर रहा है।

इस नाड़ीयंत्र के एक पटल में योगियों की शिक्षाएँ पश्चिमी विज्ञान से बहुत आगे बढ़ जाती हैं। हमारा अभिप्राय उस नाड़ीग्रन्थि से है जिसे पश्चिमी विज्ञान सौर्यकेन्द्र कहता है, और जिसे वह अन्य नाड़ी-ग्रन्थियों में से केवल एक नाड़ि-ग्रन्थि समझता है, जिसके गुच्छक शरीर के अनेक भागों में पाए जाते हैं। योगविज्ञान कहता है कि यह नाड़ि-ग्रन्थि वस्तुतः नाड़ीजाल में सर्व प्रधान अंग है; यह एक प्रकार का मस्तिष्क है जो मानव शरीर में मुख्य कार्य करता है। पश्चिमी विज्ञान इसकी महिमा समझने की ओर थोड़ा२ झुका जाता है, परन्तु योगी लोग इसकी महिमा सैकड़ों वर्ष से समझे हुए हैं। पश्चिमी वैज्ञानिक इसे पेट का मस्तिष्क

भी कहते हैं। यह सौर्यकेन्द्र आमाशय के पीछे; उसके गढ्ढे के ठीक पीछे, मेरुदंड के दोनों ओर होता है। यह सफ़ेद और भूरी गुद्दियों का बना हुआ उसी प्रकार का होता है जैसी मनुष्य की और गुद्दियां हुआ करती हैं। इसका अधिकार मनुष्य के भीतरी सभी प्रधान अवयवों पर है; और जितना ख्याल किया जाता है उससे कहीं अधिक बड़ा २ काम करता है। हम इस सौर्यकेन्द्र के विषय में योगियों के विचार का सविस्तर वर्णन नहीं करेंगे; केवल हम इतना ही बतला देंगे कि यही प्राण का सदर भंडार है। इस स्थान पर चोट लगने से मनुष्य तुरन्त मरते हुए जाने गए हैं। और पहलवान लोग इसकी मार्मिकता को जानते हैं, इसलिये इस स्थान पर चोट पहुंचा कर अपने विपक्षी को थोड़े काल के लिये शक्तिहीन बना देते हैं।

इस ग्रन्थि को जो "सौर्य" विशेषण दिया गया है वह बहुत ही उपयुक्त है, क्योंकि प्राण का भंडार होने के कारण यह उसी प्रकार बल और शक्ति को फैलाता है जैसे सूर्य प्रकाश और ताप आदि को फैलाता है। खास मस्तिष्क भी भी प्राण के लिये इसी का आश्रय करता है। देर या सबेर पश्चिमी विज्ञान भी इस सौर्यकेन्द्र की क्रियाओं को समझने लगेगा और यह केन्द्र पश्चिमी विज्ञान में महत्व की उस पदवी को पावेगा जो इस वर्त्तमान समय की पदवी से कहीं ऊंची होगी।

इक्कीसवाँ अध्याय।

प्राण के अभ्यास।

हम इस किताब के अन्य अध्यायों में आपको बतला आए हैं कि प्राण हवा, भोजन और पानी से प्राप्त किया जा सकता है। हमने श्वास लेने, भोजन करने और जल के व्यवहार करने की सविस्तर शिक्षा दे दी है। अब इस विषय में कहने के लिये कुछ भी शेष नहीं रह गया है। परन्तु इस विषय को छोड़ देने के पहले हम हठयोग के कुछ ऊंचे सिद्धान्तों और अभ्यासों को आपको बतला देना अच्छा समझते हैं कि यह प्राण कैसे प्राप्त किया जाता है और कैसे वितरित किया जाता है। हमारा उद्देश तालयुक्त श्वास से है जो हठयोग के अभ्यासों की कुंजी है।

सभी वस्तुएँ स्फुरण अर्थात् कम्प में हैं। छोटे से छोटे परमाणु से लेकर बड़े से बड़े सूर्य तक सभी स्फुरण की दशा में हैं। प्रकृति में कोई भी वस्तु नितान्त स्थिर नहीं है। यदि अकेला एक परमाणु भी कम्प से हीन हो जाय तो सारी सृष्टि को विनष्ट कर दे। अनवरत स्फुरण में विश्व का कार्य हो रहा है। द्रव्य के ऊपर शक्ति का प्रभाव पड़ रहा है, जिसके परिणाम से अगणित रूप और असंख्य भेद उत्पन्न होते रहते हैं; परन्तु ये रूप और भेद भी नित्य नहीं हैं। ज्यों ही वे बन जाते हैं त्यों ही परिवर्त्तन होने लगता है और

इनसे अगणित रूप उत्पन्न होवे हैं, जो परिवर्त्तित हो कर नये रूपों को प्रगट करते हैं। इसी तरह से क्रमशः अनन्तता तक सिलसिला लग जाता है। इस रूप के संसार में कोई वस्तु नित्य नहीं है, परन्तु तो भी वह महत् सत्य परिवर्त्तन-हीन और नित्य है। रूप केवल आभास मात्र हैं—वे आते हैं और जाते हैं—परन्तु असलियत नित्य और अविकारी है।

मानव शरीर के परमाणु अनवरत स्फुरण में हैं। अनन्त परिवर्त्तन हुआ करते हैं। जिन द्रव्यों से आप का शरीर बना है, थोड़े ही दिनों में उनमें पूरा परिवर्त्तन हो जाता है; आप के शरीर में इस समय जितने परमाणु हैं, कुछ महीनों के पश्चात् शायद ही कोई उनमें से शेष रह जाय। स्फुरण, लगातार स्फुरण! परिवर्त्तन, लगातार परिवर्त्तन।

सब स्फुरण में एक ताल पाया जाता है। ताल विश्व में व्यापक है। ग्रहों के सूर्य के गिर्द घूमने, समुद्र के उभड़ने और दबने, हृदय के धड़कने, ज्वार के उठने और भाटा के बैठने, सब में ताल का नियम चरितार्थ होता है। सूर्य की किरणें हमारे पास आती हैं, वृष्टि होती है, सब उसी नियम के अनुसार। सब वृद्धि इसी नियम की प्रदर्शनी है। सब गति इसी ताल के नियम का प्रकाशन है।

हमारा शरीर ताल के नियम का वैसा ही वशवर्त्ती है, जैसा ग्रह का सूर्य के चारों ओर घूमना है। योग के श्वास-विज्ञान का भीतरी और गूढ़ तत्त्व अधिकांश प्रकृति के इसी विदित नियम पर आश्रित है। शरीर के ताल में मिल कर योगी बहुत अधिक प्राण आकर्षण कर सकता है, जिसको वह

अपने अभीष्ट-साधन में लगाता है। आगे चल कर इस विषय को हम अधिक विस्तार से कहेंगे।

यह हमारा शरीर एक छोटी खाड़ी की भांति है जो समुद्र से पृथ्वी में घुस गई हो। यद्यपि प्रगट में तो यह अपने ही नियमों के वशवर्त्ती है, परन्तु वास्तव में यह समुद्र की ज्वार और भाटा के नियमों के आधीन है। जीवन का महा समुद्र उमड़ और पचक रहा है, उठता है और वैठता है, और हम लोग उसी के कम्प और ताल के अनुगामी हो रहे हैं। स्वाभाविक दशा में हम जीवन के महासमुद्र के कम्प और ताल को ग्रहण कर लेते हैं और उसका अनुसरण करते हैं, परन्तु कभी २ खाड़ी के मुहाने पर वही हुई मिट्टी आकर मुँह वन्द कर देती है और हम महासागर की प्रेरणा नहीं प्राप्त कर सकते, तथा हमारे भीतर गड़बड़ पैदा हो जाती है।

आप लोगों ने सुना होगा कि वेला वाजे पर एक स्वर यदि ठीक तालयुक्त वार २ बजाया जाय तो ऐसे कम्पों को संचालित करेगा जो किसी समय में एक पुल को ढाह सकते हैं। यही वात उस समय होती है जव कोई पलटन पुल पार करने लगती है, तब सर्वदा यह हुक्म दिया जाता है कि क़दम तोड़ दिया जाय (अर्थात् सवके एक पैर साथ न उठाए और रक्खे जायं) नहीं तो क़दम का कम्प पुल और पलटन दोनों को नीचे गिरा दे। इस तालयुक्त गति के प्रभाव के उदाहरणों से आप भावना कर सकते हैं कि तालयुक्त श्वास का कितना प्रभाव शरीर पर पड़ सकता है। सारा शरीर कम्प को ग्रहण कर लेता है और आकांक्षा के सुर में मिल जाता है, जिससे

फेफड़ों में तालयुक्त गति होने लगती है, और जब वह इस प्रकार सुर में मिल जाता है तब आकांक्षा की आज्ञाओं का तुरन्त पालन करने लगता है। जब शरीर का सुर इस तरह ठीक हो जाय तो अपनी आकांक्षा की आज्ञा से शरीर के किसी भाग के रुधिर-संचालन को बढ़ाने में योगी को कठिनता नहीं होती। इसी प्रकार वह शरीर के किसी भाग में अधिक नाड़ीबल प्रवाहित कर सकता है जिससे शरीर को शक्ति और उत्तेजना मिले।

इसी प्रकार तालयुक्त श्वास द्वारा योगी कम्प को मानो ग्रहण कर लेता है और अधिक परिमाण के प्राण पर अधिकार कर लेता है और उसे ग्रहण कर लेता है और तब वह उसकी इच्छा के अधीन हो जाता है। तब वह उसे साधन बना लेता है कि उसके द्वारा दूसरों के पास विचार भेज सकता है और उनको अपनी ओर आकर्षित कर सकता है, जिनके विचार उसी कम्प में बह रहे हैं। दूर से रोग दूर करने, विचार भेजने और ग्रहण करने, मानसिक क्रियाओं से रोग दूर करने, मिसमेरिज़िम आदि के दृश्य, जो आजकल पश्चिमी दुनियां में इतना कुतूहल उत्पन्न कर रहे हैं और जो योगियों को सैकड़ों वर्ष से विदित हैं, बहुत ही अधिक बढ़ाए जा सकते हैं, यदि विचार भेजने वाला मनुष्य तालयुक्त श्वास क्रिया करने के पश्चात् इन प्रयोगों को करे। तालयुक्त श्वास मानसिक और औजस क्रियाओं द्वारा रोग आदि दूर करने में दूने से भी अधिक प्रभाव बढ़ा देगा।

तालयुक्त श्वासक्रिया में असल बात ताल की भावना

प्राप्त करना है। उन लोगों के लिये, जो संगीत से कुछ जानकारी रखते हैं, नपी तुली गिनती की भावना परिचित है। दूसरों के लिए पलटन के सिपाहियों के तालयुक्त क़दम "बायां, दहना; बायाँ, दहना; बायां, दहना; एक, दो, तीन, चार; एक, दो, तीन, चार; एक, दो, तीन, चार;" कुछ २ भावना दे सकेंगे।

योगी अपने ताल के समय को उस मात्रा के आश्रित रखता है, जो उसके दिल की धड़कन के अनुसार होता है। दिल की धड़कन भिन्न २ मनुष्यों में भिन्न २ काल का अन्तर देकर हुआ करती है; परन्तु प्रत्येक मनुष्य के हृदय की धड़कन की मात्रा उस व्यक्ति के लिए तालयुक्त सांस लेने में उपयुक्त हुआ करती है। अपनी नाड़ी पर हाथ रख कर अपने हृदय की स्वाभाविक धड़क की मात्रा को निश्चित करो और तब गिनो:—१, २, ३, ४, ५, ६; १, २, ३, ४, ५, ६; इत्यादि, जब तक ताल की भावना दृढ़ होकर तुम्हारे मन में अंकित न हो जाय। थोड़े अभ्यास से ताल निश्चित हो जायगा कि जिससे तुम आसानी से उसे दुहरा सको। प्रारम्भिक दशा में मनुष्य छः मात्रा में श्वास भीतर खींचता है, परन्तु अभ्यास से वह इसे बहुत बढ़ा सकता है।

तालयुक्त श्वास लेने में योगी का यह नियम है कि श्वास (भीतर खींचना) और प्रश्वास (बाहर फेंकना) दोनों में मात्राएँ समान रहें, और श्वास को भीतर रोकने तथा श्वासों के बीच बिना श्वास के रहने की मात्राएँ श्वास और प्रश्वास की मात्राओं से आधी रहा करें।

तालयुक्त श्वास का नीचे लिखा हुआ अभ्यास अच्छी तरह सिद्ध कर लेना चाहिए, क्योंकि यह अनेक अन्य अभ्यासों का, जिनका आगे चलकर वर्णन होगा, आधार है।

(१) सीधे मुख आसन से बैठो जिसमें जहां तक संभव हो, छाती, गर्दन और सिर एक सीध में हो, कंधे थोड़ा पीछे दबे और हाथ आसानी से जांघों पर पड़े हों। इस स्थिति में शरीर का बोझ अधिकांश पसलियों पर रहता है, और यह स्थिति आसानी से कायम रक्खी जा सकती है। योगियों की यह बात जानी हुई है कि तालयुक्त श्वास का पूरा फल न मिलेगा यदि छाती भीतर दबी और पेट निकला रहेगा।

(२) धीरे २ पूरी सांस भीतर खींचो और छाती की धड़क के समान छः मात्रा गिनते जाओ।

(३) तीन मात्रा की गिनती तक श्वास को रोक रक्खो।

(४) धीरे २ नाक से हवा बाहर निकालते जाओ और छः मात्रा तक गिनते जाओ।

(५) श्वास छोड़ देने के पश्चात् ३ मात्रा तक श्वास को बाहर ही रोक रक्खो।

(६) कई बार इसी तरह से सांस लो, पर आरम्भ ही में अपने को थका मत डालो।

(७) जब तुम कसरत समाप्त किया चाहो, सफ़ाई वाली श्वासक्रिया कर डालो, जो तुम्हें विश्राम देगी और फेफड़ों को साफ़ कर डालेगी।

थोड़े अभ्यास के बाद तुम श्वास खींचने और प्रश्वास छोड़ने के काल को बढ़ा सकोगे और थोड़े ही दिनों में इनका

काल १५ मात्रा तक हो सकेगा। इसके बढ़ाने में स्मरण रखना कि श्वास रोकने और दो श्वासों के बीच बिना श्वास के रहने की मात्रा श्वास और प्रश्वास की मात्रा की आधी होनी चाहिए।

श्वास के समय बढ़ाने के लिए अपने को बहुत थका मत डालो परन्तु ताल प्राप्त करने के लिए जहाँ तक हो सके यत्न करो, क्योंकि यह श्वास की लम्बाई की अपेक्षा अधिक प्रधान है। अभ्यास करते जाओ और यत्न में लगे रहो कि गति का नपा तुला कम्प मालूम हो जाय और कम्प की गति के ताल को सारे शरीर में वेदना अनुभव करने लगो। इसमें थोड़े अभ्यास और धैर्य की आवश्यकता होगी, परन्तु अपनी उन्नति पर जो सुख मालूम होगा वह इस परिश्रम को आसान बना देगा। योगी बहुत ही सन्तोषी और धैर्यवान मनुष्य होता है, और इन्हीं गुणों से बड़ी २ सिद्धियां प्राप्त कर लेता है।

प्राण का उत्पन्न करना।

भूमि या चारपाई पर चित पड़ जाओ, कुल शरीर को शिथिल कर दो, हाथ हल्के २ सौर्य केन्द्र पर पड़े रहें, (जहाँ आमाशय का गड्ढा रहता है अर्थात् जहाँ से पसलियाँ पृथक् होने लगती हैं) तालयुक्त श्वास लो। जब ताल पूरी तरह से निश्चित हो जाय यह आकांक्षा करो कि प्रत्येक श्वास प्राण भण्डार से अधिक प्राण या जीवट शक्ति खींचे, जिसे नाड़ी जाल ग्रहण करके सौर्य केन्द्र में सञ्चित करे। प्रत्येक प्रश्वास के छोड़ते समय यह आकांक्षा करो कि प्राण या जीवट शक्ति

सारे शरीर में वितरित होवे, प्रत्येक अवयव और भाग प्रत्येक मांसपेशी, देहाणु और परमाणु, प्रत्येक नाड़ी, धमनी और शिरा, सिर की चोटी से ले कर पैर के अंगूठे तक में प्रत्येक नाड़ी को बलशक्ति उत्तेजना देते, प्रत्येक नाड़ी केन्द्र को भरते, सारे शरीर में शक्ति बल और दृढ़ता पहुँचाता हुआ जा रहा है। जब आकांक्षा का प्रयोग करो तब भीतर आते हुए प्राण की मानसिक मूर्ति बना लो कि फेफड़े द्वारा आ रहा है और सौर्यकेन्द्र द्वारा ग्रहण किया जा रहा है; और प्रश्वास के यतन में सारे शरीर के कुल भागों में अंगुलियों के सिरों और पैर की अंगुलियों तक में जा रहा है। बड़े परिश्रम से आकांक्षा करना आवश्यक नहीं है; केवल जैसा तुम चाहते हो उसी की आज्ञा दो और उसकी मानसिक मूर्ति बना लो। मानसिक मूर्ति के संग २ शान्त आज्ञा बलपूर्वक इच्छा करने की अपेक्षा बेहतर है, क्योंकि बलपूर्वक इच्छा करने में शक्ति का व्यर्थ व्यय होता है। ऊपर लिखी हुई कसरत बहुत ही लाभ देने वाली है; और नाड़ीजाल को ताज़ा और शक्तिमान बना देती है, और सारे शरीर में विश्राम का भाव फैला देती है। यह उस जगह बहुत ही गुणकारी प्रतीत होता है जहां मनुष्य थका है या शक्ति की कमी समझता है।

रुधिर-संचालन का परिवर्तन करना।

लेट कर या सीधे बैठे हुए ताल युक्त श्वास लो, और प्रश्वास छोड़ते समय जिस भाग में चाहो उसी भाग में रुधिर संचार को प्रेरित होने की आकांक्षा करो, अधूरे रुधिर-संचार

के कारण कोई दुःख भोग रहा हो। यह क्रिया ठंढे पैर और सिर की पीड़ा की दशा में बहुत लाभ दायक होती है; दोनों दशाओं में रुधिर नीचे की ओर संचालित किया जाता है, पहली दशा में तो पैर को गरम करने के लिये और दूसरी दशा में सिर के दबाव को हलका करने के लिये। ज्यों ज्यों रुधिर का संचार नीचे आवेगा त्यों त्यों टांगों में तुम गर्मी मालूम करने लगोगे। रुधिर-संचार अधिकांश आकांक्षा के अधिकार में होता है और तालयुक्त श्वास कार्य को और भी आसान कर देती है।

फिर प्राण भरना।

यदि तुम्हें मालूम हो कि तुम्हारी जीवट शक्ति क्षीण होती जाती है और तुम्हें शीघ्र जीवट शक्ति का संचय कर लेना आवश्यक है, तो सर्वोत्तम उपाय यह है कि दोनों पैरों को इकट्ठा करलो (एक दूसरे के बगल में) और दोनों हाथों की अंगुलियों को जैसे चाहो वैसे एक हाथ की अंगुलियों को दूसरे हाथ की अंगुलियों से ग्रंथि रूप में बांधलो। इससे मंडल बन्द हो जाता है, और छोरों से प्राण का निकलना रुकता है। तब कई बार तालयुक्त श्वास लो और फिर प्राण से भर जाने का प्रभाव तुम्हें मालूम होने लगेगा।

मस्तिष्क को उत्तेजित करना।

नीचे लिखी हुई कसरत को योगियों ने मस्तिष्क की क्रिया को उत्तेजित करने में, कि सोचना और बिचारना स्पष्टता के साथ हुआ करे, बहुत लाभदायक पाया है। यह

मस्तिष्क और नाड़ीजाल के साफ़ करने में आश्चर्यजनक प्रभाव रखती है; और जिन्हें मानसिक काम करना पड़ता है वे इसे बहुत गुणकारी पावेंगे, जिसके द्वारा बेहतर मानसिक क्रिया भी होगी और कठिन मानसिक परिश्रम के बाद इसके द्वारा मन ताज़ा और स्वच्छ हो जायगा।

सीधे बैठो, रीढ़ की हड्डी को सीधा रक्खो, आंखों को ठीक सामने रक्खो, हाथ टांगों के ऊपरी भाग पर पड़े रहें। तालयुक्त श्वास लो परन्तु दोनों नथनों द्वारा श्वास लेने के स्थान पर, जैसा सामान्य श्वास में किया करते हो, बांए नथने को अंगूठे से बन्द कर लो और केवल दहने नथने से श्वास भीतर खींचो। तब अंगूठा हटा लो और दहने नथने को अंगुली से बन्द करो और तब बांए नथने से प्रश्वास बाहर निकाल दो। तब बिना अंगुलियों के बदले हुए बांए नथने से श्वास खींचो, और अंगुली बदल कर दहने से प्रश्वास छोड़ो। तब दहने से श्वास लो और बांए से श्वास छोड़ो और इसी तरह से ऊपर लिखी हुई रीति से नथनों को बदलते जाओ, अप्रयुक्त नथने को अंगूठे या अगुली से बन्द किए रहो यह योगियों का सब से पुराना तरीक़ा श्वास का है, और यह मुख्य और लाभदायक तरीक़ा ग्रहण ही करने के योग्य है। परन्तु पश्चिमी लोग इसी को योगियों की सारी योग शिक्षा समझते हैं। इसे जान कर योगियों को हँसी आ जाती है। पश्चिमी लोगों को योगियों की श्वासक्रिया की यही भावना होती है कि एक हिन्दू सीधे बैठा है और श्वास लेने में कभी इस नथने से और कभी उस नथने से श्वास ले रहा

है । "केवल इतना ही और वस" । हम आशा करते हैं कि इस किताब से पश्चिमी दुनिया की आँखें खुल जावेंगी और योगी के श्वासक्रिया के महत्व और इसके प्रयोग के अनेक तरीक़ों को लोग समझ जायंगे ।

योगियों की महती मानसिक श्वासक्रिया ।

योगियों को एक प्रिय श्वासक्रिया मालूम है जिसका वे कभी २ अभ्यास करते हैं जिसका नाम एक संस्कृत शब्द है जिसका ऊपर दिया हुआ अर्थ है । हमने इसको अन्त में दिया है क्योंकि इसमें शिष्यों की ओर से ऐसे अभ्यास की आवश्यकता है कि जिसमें तालयुक्त श्वास और मानसिक कल्पना दोनों हों और जिसे वह पहले वर्णन की हुई कसरतों के द्वारा अब प्राप्त कर लिये होगा । इस महाश्वास के मूल तत्त्व को हम इस पुरानी हिन्दू कहावत द्वारा थोड़े में कह देते हैं कि "धन्य वह योगी है जो अपनी हड्डियों द्वारा श्वास लेता है" । इस कसरत से सारा शरीर-यंत्र प्राण से भर जायगा और शिष्य इस कसरत को जब समाप्त करेगा तो उसकी प्रत्येक हड्डी मांसपेशी, नाडी, देहाणु, रेशा अवयव और भाग शक्तिसम्पन्न और प्राण तथा श्वास के ताल के लय में मग्न हो कर निकलेंगे । यह शरीर यंत्र को साफ कर देने वाली कसरत है और जो शिष्य इसका सावधानी से अभ्यास करता है उसको मालूम होगा कि मानो उसको नया शरीर मिल गया है, जो सिर से लेकर पैर के अंगूठे तक ताज़ा २ बना हुआ है । हम आगे उस कसरत को लिखते हैं।

(१) शरीर को शिथिल करके बिलकुल आराम से पड़ जाओ।

(२) तालयुक्त श्वास लो जब तक ताल ठीक न हो जाय।

(३) श्वास खींचते और प्रश्वास छोड़ते समय यह कल्पना करो कि श्वास टांगों की हड्डियों से आ रही है और उन्हीं में होकर निकल रही है; तब भुजाओं की हड्डियों से फिर आमाशय से फिर जननेन्द्रिय के स्थान से; तब मानो मेरुदंण्ड से आ और जा रही है; तब मानो सांस चमड़े के प्रत्येक छिद्र से खींची और प्रवाहित की जा रही है और सारा शरीर मानों प्राण और जीवन से भर रहा है।

(४) तब तालयुक्त सांस लेते हुए प्राण की धार सातों मर्म स्थानों में बारी बारी से भेजो, जैसा नीचे दिया जाता है, परन्तु ऊपर लिखी हुई मानसिक कल्पना बनी रहे।

(अ) ललाट प्रदेश में।

(ब) सिर के पिछले भाग में।

(स) मस्तिष्क के आधार में।

(द) सौर्यकेन्द्र में।

(ई) पेट के नीचे के खोखले (गुदाचक्र) में।

(फ) नाभिप्रदेश में।

(ज) जननेन्द्रिय प्रदेश में।

प्राण का प्रवाह सिर से पैर तक कई बार आगे पीछे बहा कर समाप्त कर दो।

(५) सफ़ाई वाली क्रिया करके खतम कर दो।

बाईसवां अध्याय।

शिथिलीकरण विज्ञान।

शरीर के शिथिल करने का विज्ञान हठयोग शास्त्र का एक मुख्य अंग है और बहुत से योगी इस विषय की इस शाखा में बहुत अधिक जी लगाते और सावधानी रखते हैं। पहली दृष्टि में तो सामान्य पाठक को इस शिक्षा की भावना कि शरीर कैसे शिथिल किया जाय, कैसे विश्राम किया जाय बड़ी हास्य-जनक होगी, क्योंकि उनके खयाल से प्रत्येक मनुष्य इस सीधी बात को जानता है। सामान्य मनुष्य कुछ २ सही भी है। प्रकृति हमें शरीर को शिथिल करना और पूरा विश्राम करना सिखा देती है। इस विज्ञान में बच्चा आचार्य होता है। परन्तु ज्यों २ हम बड़े होते हैं, त्यों २ कृत्रिम आदतें बहुत सी धारण करते जाते हैं, और पहले की स्वाभाविक आदतों को लोप हो जाने देते हैं। इसलिये मनुष्यों को योगियों से इस विषय में शिक्षा प्राप्त करने की बहुत बड़ी आवश्यकता हो जाती है।

साधारण डाक्टर भी मनुष्यों की इस विषय के मूल तत्त्वों की अनभिज्ञता की साक्षी दे सकते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि नाड़ी की बीमारियों में अधिकांश बीमारियां इस विश्राम करने के विषय की अनभिज्ञता के कारण हुआ करती हैं।

विश्राम और शरीर को शिथिल करना, ये बातें काहिली और सुस्ती से बहुत ही भिन्न हैं। सच बात तो यह है कि

जिन लोगों ने शरीर को शिथिल कर देने के विज्ञान को साध लिया है, वे प्राय: अत्यन्त क्रियाशील और शक्तिमान मनुष्य हो गये हैं; वे शक्ति को व्यर्थ नहीं व्यय करते; वे प्रत्येक गति का हिसाब रखते हैं।

अब शरीर के शिथिल करने के प्रश्न पर विचार कीजिये और यह समझने का यत्न कीजिये कि इसका अर्थ क्या है। इसको अच्छी तरह से समझने के लिये पहले इसके विलोम "आकुंचन" पर विचार कर लीजिये। जब हम किसी मांस-पेशी को आकुंचित किया चाहते हैं कि उससे कुछ काम लें तो हम मस्तिष्क से वहां को प्रेरणा भेजते हैं, जिससे वहां कुछ अधिक प्राण भेजा जाता है और मांसपेशी आकुंचित हो जाती है। प्राण गतिसंचालिनी नाड़ी में होकर जाता है, मांसपेशी तक पहुँचता है और उसे अपने छोरों को बटोरने की प्रेरणा करता है, और इस तरह से उस अवयव या भाग पर, जिसे हम हिलाया चाहते हैं, जोर लगता है कि वह अवयव काम करे। यदि हम अपने कलम को स्याही में डुबोना चाहते हैं तब हमारी आकांक्षा क्रियारूप में इस प्रकार प्रगट होती है कि हमारा मस्तिष्क दहनी भुजा की कुछ निश्चित मांसपेशियों में, हाथ और अंगुलियों में प्राण की धार भेजता है, जिससे वे आकुंचित हो हो कर हमारे कलम को दावात तक लेजाते हैं, उसे उसमें डुबोते हैं, और फिर उसे कागज़ तक लाते हैं। यही बात हमारी प्रत्येक क्रियाओं में हुआ करती है चाहे हम उसे जानें या न जानें। चेतना सहित क्रियाओं में चेतनाशक्ति प्रवृत्ति मानस को सूचना

देती है, जो तत्काल आज्ञा का पालन करता है और अभीष्ट-स्थान पर प्राण की धार भेज देता है। चेतना रहित क्रियाओं में प्रवृत्तिमानस आज्ञा की प्रतीक्षा नहीं करता, परन्तु स्वयं आप कुल काम पर लग जाता है; आज्ञा देना और उसे कर देना, दोनों काम अपने आप करता है। परन्तु प्रत्येक क्रिया, चाहे चेतना सहित हो वा चेतना रहित, प्राण की कुछ मात्रा खर्च करती है; और यदि खर्च का परिमाण उस परिमाण से अधिक हुआ जिस परिमाण में प्राण को संचय करने का शरीर यंत्र आदी हो रहा है, तो परिमाण यह होता है कि मनुष्य निर्बल हो जाता है और नितान्त थक जाता है। किसी विशेष मांसपेशी की थकावट भिन्न बात है और वह अनभ्यस्त काम के करने से पैदा होती है, क्योंकि उसके आकुंचन करने में प्राण की गैरमामूली मात्रा खर्च हुई है।

यहां तक हमने शरीर के वास्तविक संचालन के विषय में, जो मांसपेशियों के आकुंचन द्वारा, प्राण की धार उधर प्रवाहित होने से होता है, कहा। एक और मार्ग भी प्राण के व्यय और मांसपेशी के छीजने का है, जो हम लोगों में बहुतों को मालूम नहीं है। हमारे पाठकों में जो लोग शहरों में रहते हैं, वे हमारे अभिप्राय को समझ जायँगे। जब हम प्राण के व्यय की उपमा पानी के उस व्यय से देंगे, जो नल की टोंटी को अच्छी तरह न बन्द करने से टपका करता है और व्यय हुआ करता है। यही बात हमलोगों में अधिकांश मनुष्य सर्वदा किया करते हैं। हम अपने प्राण को सर्वदा बहाया करते हैं और साथ ही मांसपेशी को छिजाया करते

हैं और इस तरह से सारे शरीरयंत्र को सिर से लेकर पांव तक क्षीण कर देते हैं।

हमारे शिष्य लोग मनोविज्ञान की इस कहावत से निस्सन्देह अभिज्ञ होंगे कि "विचार क्रिया का रूप धारण करता है"। जब कोई काम किया चाहते हैं तो हमारी पहली प्रेरणा मांसपेशी की उस गति की ओर होती है, जो विचार से उत्पन्न कार्य के करने में आवश्यक होती है। परन्तु दूसरे विचार के कारण हम पहली गति के करने से रुक सकते हैं, यदि इस दूसरे विचार से रोकना ही अभीष्ट जँचे। हम क्रोध के आवेश में आकर किसी मनुष्य को मारने पर उतारू हो सकते हैं, जिसके ऊपर क्रोध उत्पन्न हुआ हो। ज्यों ही भाव उत्पन्न हुआ कि मारने की क्रिया की प्रारंभिक गतियां शुरू हो गईं। परन्तु मांसपेशियों की गति के स्पष्ट प्रगट होने के पहले, दूसरा बेहतर बिचार पहली मारने वाली क्रिया को रोकने का उत्पन्न हुआ (ये सब बातें एक क्षण में हो गईं) और अन्य मांसपेशियों ने पहली मांसपेशियों की गति को रोक लिया। दोहरी क्रिया आज्ञा देने और रोकने की, इतनी शीघ्रता से हो गई कि मन को इन सब गतियों का ज्ञान न हो सका, परन्तु तो भी मांसपेशी मारने की इच्छा से कांपने लगी थी कि उसी अर्से में रोकने की प्रेरणा ने उसका विरोध किया और गति को रोक लिया।

यही मूलबात और अधिक सूक्ष्मरूप में अनवरुद्ध विचारों के अनुसरण में थोड़े प्राण की धार को मांसपेशी में भेजता है और मांसपेशी को आकुंचित करता है, जिससे प्राण का

व्यर्थ व्यय और मांसपेशियों की व्यर्थ छीजन हुआ करती है। बहुत से मनुष्य जो गरम मिज़ाज, चिड़चिड़े और जोशीली आदत के होते हैं, वे सर्वदा अपनी नाड़ियों को काम में लगाए और अपनी मांसपेशियों को ताने हुए रहते हैं, क्योंकि उनकी मानसिक दशा अनवरुद्ध और अनधिकृत रहती है। विचार ही क्रिया का रूप धारण करते हैं; और ऊपर लिखे हुए मिज़ाज और आदत का मनुष्य लगातार अपने विचारों की धार को मांसपेशियों में भेजा करता है और फिर उसके उलटे विचार भेज कर पहले को रोका करता है। इसके विपरीत जिस मनुष्य ने स्वाभाविक रीति से या साधन करके शान्त और सुशासित मन प्राप्त किया है, उसकी ऐसी प्रेरणाएँ न हुआ करेंगी न उनके ऐसे प्रतिकूल ही होंगे। वह शान्त धीर होकर रहता है और उसके विचार उसे ले नहीं भागते। वह स्वामी है, गुलाम नहीं है।

इन जोशीले ख्यालात के क्रियारूप में परिणत होने और फिर उन्हें रोकने के प्रयत्न का रिवाज अक्सर आदत बन जाता है—पुरानी आदत हो जाता है—और ऐसे मनुष्यों की नाड़ियां और मांसपेशियां सर्वदा तनाव में रहती हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि जीवट, प्राण और सारे शरीर की लगातार छीजन हुआ करती है। ऐसे मनुष्यों की बहुत सी मांसपेशियां सर्वदा तनी हुई दशा में रहती हैं, जिसका यह मतलब है कि लगातार प्राण की धार उस ओर बहा करती है और नाड़ियां सदा प्राण पहुंचाने के काम में लगी रहती हैं। हम को एक नेक बुढ़िया की कथा याद है,

जो रेल पर सवार किसी पास के नगर को जा रही थी। उस को वहां पहुंचने की इतनी खुशी थी और इतनी आतुर हो गई थी कि वह अपनी बैठक पर स्थिर बैठ न सकती थी; इसके विपरीत वह बैठक के किनारे पर बैठी थी, और उसका शरीर आगे की ओर झुका हुआ था, यही दशा कुल १६ मील की यात्रा में रही; उसका मन मानो ट्रेन को आगे बढ़ने के लिये उत्तेजित कर रहा था। इस बुड्ढी औरत के ख्यालात यात्रा के अन्त के लिये इतने ज़ोर के थे कि ख्यालात ने क्रिया का प्रत्यक्षरूप धारण कर लिया था; और उसको जो शरीर को ढीला करके रखना था उस के स्थान पर उसकी मांसपेशियां आकुंचित हो रही थीं। हमलोगों में से बहुत से मनुष्य उसी बुढ़िया की भांति के हैं; जब हम किसी चीज़ को देखने लगते हैं तो आतुर हो कर सारे शरीर पर तनाव डाल देते हैं; और एक न एक तरह से सर्वदा अपनी बहुत सी मांसपेशियों पर तनाव डाले रहते हैं। हम जोर से मुट्ठियां बांधते हैं, नांक भौं चढ़ाते हैं, कस कर अपने ओठों को बन्द करते हैं, ओठों को दांत से काटते हैं, या अपने दांतों को पीसते हैं या ऐसी ही अन्य बातें करते हैं, जिससे मानसिक दशा क्रियारूपों में प्रगट होती है। यह सब प्राण का व्यर्थ व्यय करना है। इसी तरह की बुरी वे आदतें भी हैं जिनसे मनुष्य झूठे ही ढोलकी बजाने का हाथ फेरा करता है, अँगूठा घुमाया करता है, अंगुलियां नचाया करता है, पैर की अंगुलियों से जमीन ठोंका करता है, मुंह चबाया करता

है, तिनके तोड़ा करता है, दांत से पेंसिल काटा करता है, अपने शरीर के किसी अवयव को हिलाया करता है और झूमा करता है। ये बातें और ऐसी ही अनेक बातें प्राण का व्यर्थ व्यय करने वाली हैं।

अब मांसपेशियों के आकुंचन के विषय में हम कुछ २ समझने लगे हैं, इसलिये अब फिर शरीर के शिथिल करने के विषय पर चलिये।

शिथिल किये हुये अंग में प्राण की धार का प्रवाह नहीं होता। बहुत थोड़ा २ प्राण शरीर के भिन्न २ अंगों में स्वास्थ्य की दशा में संचार करता है कि जिससे स्वाभाविक स्थिति बनी रहे, परन्तु यह धार उस धार की अपेक्षा जो आकुञ्चन में प्रवाहित की जाती है, बहुत हीन हुआ करती है। शिथिल होने में मांसपेशियां और नाड़ियां विश्राम की दशा में रहती हैं; और प्राण, व्यर्थ बर्बाद होने के स्थान पर संचित हुआ करता है। यह शिथिलीकरण बच्चों और जानवरों में ग़ौर से देखा जा सकता है। कुछ युवा लोगों में भी पाया जाता है; आप ख्याल करेंगे कि ऐसे युवा धैर्य्य, शक्ति, बल और जीवट में अन्यों की अपेक्षा अधिक हुआ करते हैं। काहिल आदमी शिथिलीकरण का उदाहरण नहीं है। शिथिलीकरण और काहिली में बड़ा फ़र्क़ है। शिथिलीकरण उद्यम के बीच में विश्राम है, जिसका परिणाम यह होता है कि बेहतर काम और थोड़े प्रयत्न से होता है। काहिली उद्यम से जी चुराना है और इस ख्याल का परिणाम अकर्मण्यता होती है।

जो मनुष्य शिथिलीकरण अर्थात् शक्तिसञ्चय को समझता और व्यवहार में लाता है वह सबसे अच्छा काम करता है। वह एक सेर प्रयत्न से एक सेर का काम लेता है, और वह अपनी शक्ति बर्बाद नहीं करता, न बिगाड़ता और न उसे बहाया करता है। सामान्य मनुष्य, जो इस नियम को नहीं समझता, तिगुनी से लेकर पचीसगुनी तक आवश्यकता से अधिक शक्ति उसी काम में खर्च कर देता है, चाहे वह काम शारीरिक हो या मानसिक। यदि आप को इस बात में सन्देह हो तो जिनसे आपकी संगति हो जाय उन्हें गौर से देखिये कि वे कितनी व्यर्थ गतियां करते हैं। मानसिक भावों में वे अपने तावे नहीं रहतीं, जिसका परिणाम शारीरिक अतिव्यय होता है।

योग के गुरु लोग अपने शिष्यों को भारतवर्ष में किताब द्वारा शिक्षा नहीं देते, किन्तु, वाणी द्वारा शिक्षा देते हैं। वे प्रकृति और उदाहरण से बहुत सा वस्तुपाठ पढ़ाते हैं, जिससे शिष्य के हृदय में ठीक भाव बैठ जाय। हठयोग के गुरु जब शिथिलीकरण का पाठ पढ़ाने लगते हैं तो वे अपने शिष्यों के ध्यान को बिल्ली या उसी की जाति के तेंदुआ, चीता आदि की ओर आकर्षित करते हैं, क्योंकि ये जानवर वहां के जंगलों में अधिकता से पाये जाते हैं।

आपने कभी बिल्ली को विश्राम करते देखा है? कभी उसे चूहे के बिलके पास छपके हुये देखा है? पिछली सूरत में आपने गौर किया है कि कैसे आराम से सुन्दर स्थिति में वह छपकी रहती है—न तो मांसपेशियों का आकुंचन है न तनाव

है-अत्यन्त शक्ति विश्राम कर रही है, परन्तु तुरत हमला करने के लिये तय्यार है। स्थिर और और गतिहीन वह पड़ी रहती है; प्रगट वह सोई हुई या मरी नजर आती है। परन्तु देखते रहिये, जब समय आता है वह विजली के समान झपटती है। बिल्ली का विश्राम यद्यपि गति और मांस पेशियों के तनाव से विहीन था, पर तो भी वह जीवित विश्राम था—काहिली से बिलकुल ही भिन्न बात थी। परन्तु कांपती हुई मांसपेशियों, तनी हुई नाड़ियों और पसीने के बून्दों के अभाव को स्मरण करलो। क्रिया के यंत्र प्रतीक्षा ही में नहीं ताने गये हैं। व्यर्थ की हरकत और तनाव नहीं है; सब चीजें तय्यार हैं, और ज्योंही क्रिया का अवसर उपस्थित होता है त्योंही प्राण ताजी मांसपेशियों और विश्रान्त नाड़ियों में भेज दिये जाते हैं. और इरादे के साथही साथ बिजली की कल की चिनगारियों की भांति क्रिया प्रगट हो जाती है।

हठयोगी, जो सौन्दर्य, जीवट और विश्राम में बिल्लियों का उदाहरण देते हैं, वह बहुत ही अच्छा उदाहरण है।

वास्तव में, जब तक शिथिल करने की योग्यता न होगी तब तक तेजी की और खूब प्रभाव की क्रिया न होगी। वे मनुष्य जो चंचल रहा करते हैं, कनमनाया करते हैं और जोश में रहते हैं, और नीचे ऊंचे पैर पटका करते हैं, सर्वोत्तम काम करने वाले नहीं होते; वे क्रिया का समय आने के पहले ही अपने को थका देते हैं। जिस मनुष्य का भरोसा किया जासकता है वह वह मनुष्य है जो शान्ति, शिथिली-

करण की योग्यता और विश्राम रखता है। परन्तु चंचल मनुष्य को निराश न होना चाहिये। शिथिलीकरण और विश्राम उसी प्रकार प्राप्त किये जा सकते हैं जैसे अन्य गुण प्राप्त हुआ करते हैं।

अगले अध्याय में हम कुछ सरल शिक्षायें उन लोगों के लिये देंगे जो शिथिलीकरण विज्ञान का क्रियात्मक ज्ञान चाहते हैं।

शिथिलीकरण के नियम।

विचार क्रिया में प्रगट होते हैं, और क्रियाओं का प्रभाव मानस पर पड़ता है। ये दोनों सच बातें साथ ही रहती हैं। इसमें की एक बात उतनी ही सच्ची है जितनी दूसरी। हम लोगों ने मनका प्रभाव शरीर पर पड़ने के विषय में बहुत कुछ सुना है, परन्तु हमें यह न भूलना चाहिये कि शरीर, अथवा उसकी स्थिति और विकृति का प्रभाव मन और मानसिक दशाओं पर भी पड़ता है। शिथिलीकरण के प्रश्न पर विचार करने में इन दोनों तथ्यों को स्मरण रखना चाहिये।

मांसपेशियोंके आकुंचन की अनेकों हानिकारी और मूर्खता की क्रियायें और आदतें इस कारण से होती हैं कि मानसिक दशायें शारीरिक क्रिया का रूप धारण किया करती हैं। और इसके विपरीत, हमारी बहुत सी मानसिक दशायें हमारी शारीरिक असावधानियों आदि के कारण उत्पन्न हो जाती हैं। जब हम क्रुद्ध होते हैं तो यह जोश बँधी हुई

मुट्ठियों के शारीरिक रूप में प्रगट होता है। और इसके विपरीत यदि हम मुट्ठियां बांधने, नाक भौं सिकोड़ने, ओठ काटने आदि की आदतें पैदा करें तो हम अपने मानस को भी ऐसी दशा में ला देंगे कि तनिक सा कारण पाने पर भी वह क्रोध के आवेग में पड़ जायगा। आप लोग जानते हैं, कि आंखों और ओठों पर मुस्कुराहट की क्रिया ला कर उसे थोड़ी देर तक कायम रखने से आप को सचमुच मुस्कुराहट आ जाती है।

मांसपेशियों के आकुंचन ऐसी हानिकारी क्रिया और उससे व्यर्थ प्राण के व्यय और नाड़ियों की छीजन रोकने के लिये पहला यत्न यह है कि शान्ति और विश्राम की मानसिक स्थिति पैदा की जाय। यह पैदा की जा सकती है, पर पहले यह बड़ा कठिन काम होगा। परन्तु यदि आप इसमें लग जायँगे तो अपने परिश्रम का पूरा सुफल पा जायँगे। क्रोध और चिड़चिड़ापन को दूर करने से मानसिक साम्य और विश्राम पैदा हो सकते हैं। चिड़चिड़ापन और क्रोध का मूल कारण भय हुआ करता है, परन्तु चूंकि हम भय और चिड़चिड़ापन ही को प्रारंभिक मानसिक दशा मानने के आदी हैं, इसलिये हम इन्हें ऐसा ही समझ कर बर्ताव करेंगे। योगी बचपन ही से क्रोध और चिड़चिड़ापन दूर करने का अभ्यास करता है, और परिणाम यह होता है कि जब उसकी कुल शक्तियां जग जाती हैं तब भी वह नितान्त क्षोभहीन और शान्त बना रहता है और शक्ति तथा बल का रूप दिखाई देता है। वह वैसा ही भाव उत्पन्न करता है जैसा पर्वत,

समुद्र आदि से गुप्त शक्ति के भाव उदय हुआ करते हैं। उस के निकट जाने पर मालूम होता है कि यहां बहुत शक्ति और बल पूर्णविश्राम में हैं। योगी क्रोध को बहुत नीच मनोविकार समझता है, जो नीच जन्तुओं और वहशी मनुष्यों में पाया जाता है, परन्तु विकसित मनुष्य के तो अत्यन्त प्रतिकूल है। वह इसे तत्कालीन उन्माद समझता है, और उस मनुष्य पर रहम खाता है जो अपने मनःशासन को खोकर क्रोध के आवेग में आजाता है। वह जानता है कि इससे कुछ भी काम नहीं निकलता और यह शक्ति की व्यर्थ बर्बादी और मस्तिष्क तथा नाड़ीयंत्र के लिए प्रत्यक्ष हानिकारक है; इस बात के कहने की आवश्यता ही नहीं है कि यह धार्मिक प्रकृति और आध्यात्मिक उन्नति को निर्बल करने वाला तो है ही। इससे यह न समझना चाहिये कि योगी भीरु मनुष्य और बिना वीरता के होता है। इसके विपरीत वह तो भय को कुछ समझता ही नहीं है; उसकी शान्ति शक्ति की द्योतक है न कि निर्बलता की। आपने कभी ग़ौर किया है कि बड़े बल वाले मनुष्य घमंड और धमकियों से परे रहते हैं, इन्हें वे उन लोगों के लिये छोड़ देते हैं जो निर्बल तो हैं पर बातों से अपने को बलवान दिखाना चाहते हैं। योगी अपनी मानसिक स्थिति से चिड़चिड़ापन को भी निर्मूल करता है वह समझ गया है कि यह शक्ति के नाश करने की मूर्खता है, जो कभी लाभ नहीं करती और सर्वदा हानि पहुँचाती है। जब किसी विचार योग्य बात पर विचार करना या कठिनाई का दमन करना होता है तब तो वह गंभीर विचार में लग जाता है,

परन्तु चिड़चिड़ापन में कभी नहीं गिरता । वह झुंझलाहट को शक्ति और गति की बर्बादी समझता है, और इसे विकसित मनुष्य के अयोग्य समझता है । वह अपनी प्रकृति और शक्तियों को इतना समझता है कि वह झुंझलाहट में नहीं पड़ता । उसने शनैः २ अपने को इस बला से बचा लिया है, और अपने शिष्यों को यह उपदेश देता है कि क्रोध और झुंझलाहट से छुटकारा पाना अमली योग का प्रथम चरण है।

नीच वृत्तियों और मनोविकारों का दमन करना यद्यपि योगशास्त्र की दूसरी शाखाओं का काम है, पर इसका सीधा सम्बन्ध शिथिलीकरण के प्रश्न से है, क्योंकि यह स्पष्ट बात है कि जो मनुष्य क्रोध और झुँझलाहट से पृथक् रहने का अभ्यस्त है वह अनिच्छापूर्व मांसपेशियों के आकुंचन और नाड़ी की बर्बादी से परे है । क्रोध के आवेग में आए हुए मनुष्य की मांसपेशियां मस्तिष्क से निकली हुई अनिच्छापूर्व जीर्ण प्रेरणाओं के कारण तनाव पर होती हैं । जो मनुष्य सर्वदा झुँझलाहट का लवादा ओढ़े रहता है वह लगातार नाड़ियों के तनाव और मांसपेशियों के आकुंचन में रहता है । इसलिए यह तुरत देखने में आवेगा कि जब कोई इन निर्बलकारी मनोविकारों से छुटकारा पाता है तब वह मांस-पेशियों के आकुंचन से भी अधिकांश छुटकारा पा जाता है, जिसका ऊपर वर्णन हो चुका है । यदि आप इस बर्बादी की खानि से छुटकारा चाहते हैं तो उन नीच मनोविकारों से दूर हूजिए जिनसे यह उत्पन्न हुई है ।

इसके विपरीत शिथिलीकरण के अभ्यास से, मांसपेशियों

की तनाव की दशा के निवारण करने से इसका प्रभाव मन पर भी पड़ेगा और यह मन को स्वाभाविक साम्य और विश्राम में रक्खेगा। यह ऐसा नियम है जो दोनों ओर काम करता है।

शरीर के शिथिल करने की पहली शिक्षा जो योगी लोग अपने शिष्यों को देते हैं आगे लिखी जाती है। उसके प्रारम्भ करने के पहले हम अपने शिष्यों के मन पर यह बात अंकित कर दिया चाहते हैं कि "ढील दो" यही शिथिलीकरण का मूल मन्त्र है। यदि आप इन दोनों शब्दों के अर्थ को समझ जायँगे और इनका अभ्यास करेंगे तो आपको इस शिथिलीकरण के विषय में योगियों के प्रचार और अभ्यास का गूढ़ तत्व अच्छी तरह से ग्रहण में आ जायगा।

शरीर के शिथिल करने में नीचे लिखा हुआ अभ्यास योगियों को बहुत प्यारा है। चित्त पड़ जाव, पूरी तरह से शिथिल करो, प्रत्येक अवयवों को ढील दो। इसी प्रकार ढीले रहने पर अपने पर अपने मन को सारे शरीर से सिर से पैर की अंगुलियों तक घूमने दो। ऐसा करने में आपको मालूम होगा कि कहीं २ कुछ मांसपेशियां अब भी तनी हुई हैं उन्हें भी ढील दो।

यदि आप इस को अच्छी तरह से करेंगे (अभ्यास से दिन पर दिन उन्नति होती जायगी) तो अन्त में आप के शरीर की सब मांसपेशियां पूरी तरह से शिथिल हो जावेंगी और नाड़ियां पूरे विश्राम में हो जावेंगी। कुछ गहरी सांसें लो, और तब तक शान्त और पूरी तरह से शिथिल पड़े रहो। एक बगल में घूम जाव और फिर अच्छी तरह ढीले होजाव।

फिर दूसरे बगल में घूमो पर शिथिल अच्छी तरह बने रहो। जैसा पढ़ने में यह आसान जान पड़ता है, वैसा करने में नहीं है, जैसा परीक्षा से आपको मालूम होगा। परन्तु इससे अधीर मत होना। इसमें प्रयत्न करते जाव और अन्त में सफल हो जावोगे। जब शिथिल होकर पड़े रहो तब यह कल्पना करो कि तुम नरम, मुलायम गद्दे पर पड़े हो और तुम्हारे शरीर और अवयव सीसा की भांति भारी हैं। मन में इन शब्दों को ध्यानपूर्वक जपते जाव कि "सीसे की भांति भारी, सीसे की भांति भारी", साथ ही साथ भुजाओंको उठाकर उनमें से तनाव निकाल कर प्राण खींच लो कि जिस से वे अपने ही भार से बगल में गिर पड़ें। पहले यह बात बहुत मनुष्यों के लिये बड़ी कठिन होती है। वे अपनी भुजाओं को उन्हीं के भार से नहीं गिरने दे सकते क्योंकि मांसपेशियों के अनिच्छापूर्व आकुंचन की आदत उनमें जकड़ सी गई रहती है। जब भुजाओं पर अधिकार हो जाय तब टांगों पर पहले एक एक करके फिर साथ ही साथ दोनों टांगों पर प्रयोग करो। उन्हें भी अपने ही भार से गिर जाने दो और पूरा शिथिल रहने दो। प्रयोगों के बीच में विश्राम कर लो, और इस कसरत के करते समय उद्योगी मत बनो क्योंकि भावना तो विश्राम देनें और साथ ही साथ मांसपेशी पर अधिकार करने की है। तब सिर को उठाओ और उसे भी अपने ही भार से गिर जाने दो। तब फिर पड़े २ यह कल्पना करो कि शरीर का सारा भार चारपाई या भूमि सहन कर रही है। इस बात पर तुम हँसोगे कि जब तुम

लेटे हो तो शरीर के सारे भार को चारपाई या भूमि तो सहन ही कर रही है; पर तुम ग़लती में हो। तुम्हें मालूम होगा कि तुम अपने शरीर के कुछ भार को किसी २ मांसपेशी को तान कर, तुम आप सहन करने के यत्न में हो—तुम अपने को ऊपर उठाए रहने के यत्न में हो। इसको बन्द करो और भार सहन करने के कार्य को चारपाई को करने दो। तुम भी उतने ही मूर्ख हो जितना वह बूढ़ी औरत थी जो गाड़ी में अपने बैठके के छोर पर बैठी थी और गाड़ी को आगे बढ़ने में उत्तेजना देने के प्रयत्न में थी। अपने आदर्श के लिये सोते हुए बच्चे को देखो। वह अपने सारे भार को चारपाई पर पड़ा रहने देता है। इसमें यदि तुम्हें सन्देह हो तो जहां बच्चा सोता रहा हो वहां बिस्तरे को देखो, वहां बच्चे के शरीर के दवाव के चिन्ह मालूम देंगे—उसके नन्हे शरीर के दबाव। यदि इस पूरे शिथिली करण के भाव को न ग्रहण कर सको तो, इस बात से तुम्हें सहायता मिलेगी कि कल्पना करो कि तुम भींगे कपड़े की भांति ढीले हो गये हो—सिरसे पैर तक ढीले हो गये हो—और बिना तनिक तनाव या कड़ाई के पड़े हो। थोड़े ही अभ्यास से तुम्हें बहुत जल्द आश्चर्य मालूम होगा और तुम इस विश्राम की कसरत से बहुत ताज़ा हो कर उठोगे और अपने कामों को अच्छी तरह से करने की सामर्थ्य तुम में प्रतीत होगी।

शिथिली करण के विषय में और भी अनेक कसरतें हैं, जिन्हें हठयोगी अभ्यास करते और शिष्यों को सिखलाते हैं; नीचे लिखी हुई कसरतें उनमें सबसे अच्छी है :—

(१) हाथ में से सब प्राण खींच लो, मांसपेशियों को ढीला छोड़ दो, जिससे हाथ ढीले पड़ कर निर्जीव की भाँति कलाई से झूलने लगें। कलाई से इसे आगे पीछे हिलाओ। तब दूसरे हाथ पर उसी तरह प्रयोग करो। फिर दोनों हाथों पर साथ ही प्रयोग करो। थोड़े अभ्यास से ठीक भावना मिल जायगी।

(२) यह पहली की अपेक्षा अधिक कठिन है। इसमें अंगुलियों को शिथिल और ढीला करना होता है और इन्हें गांठों से हिलाना होता है, पहले एक हाथ की अंगुलियों पर परीक्षा करो, तब दूसरे हाथ की और फिर दोनों हाथों की।

(३) भुजाओं में से सब प्राण खींच लो और उन्हें बगलों में ढीला लटकने दो। तब शरीर को एक बग़ल से दूसरी बग़ल को झुलाओ जिस से भुजाएँ भी अँगरखे की ख़ाली बाहों की तरह केवल शरीर की गति के कारण झूलें; भुजाओं में तनिक भी बल न लगाया जाय। पहले एक भुजा, तब दूसरी और फिर दोनों। इस कसरत को शरीर को अनेकों रीति से घुमा २ कर कर सकते हैं कि जिसमें भुजाएँ ढीली लटकती रहें। यदि आप अंगरखे की ख़ाली बाहों पर ध्यान करेंगे तो आप को इसकी भावना हो जायगी।

(४) कलाई को ढीला करो और इसे केहुनी से ढीला लटकाओ। इसमें मुसली से गति दो पर कलाई की मांसपेशियों के आकुंचन को रोको। कलाई को ढीला करके झुलाओ। पहले एक को, तब दूसरी को और फिर दोनों को।

(५) पैर को पूरी तरह से ढीला करके घुट्टी से झुलाओ।

इस में थोड़े अभ्यास की आवश्यकता पड़ेगी, क्योंकि पैर को हिलाने वाली मांसपेशियां थोड़ी बहुत आकुंचित रहती हैं। परन्तु बच्चे का पैर, जब उसका वह व्यवहार नहीं करता रहता है तब अच्छी तरह ढीला रहता है। पहले एक पैर, तब दूसरा और फिर दोनों।

(६) टांग को, उसमें का सब प्राण खींच कर, ढीला करो और उसे घुटनों से लटकने दो। तब उसे झुलाओ और हिलाओ। पहले एक टांग तब दूसरी।

(७) किसी गद्दे, तिपाई या बड़ी किताब पर खड़े हो, और एक टांग को ढीला कर जांघ से लटकने और झूलने दो। पहले एक टांग और तब दूसरी।

(८) भुजाओं को सीधा सिर के ऊपर उठाओ और तब उन में से सब प्राण खींचकर उन्हें अपने ही भार से बग़लों में गिर जाने दो।

(९) घुटने को अपने आगे जहां तक ऊंचा उठा सकते हो उठाओ और तब उसमें के कुल प्राण को खींच कर उसे अपने ही भार से गिर जाने दो।

(१०) सिर को ढीला करो और उसे आगे गिर जाने दो और तब शरीर में गति देकर उसे झुलाओ; तब एक कुर्सी पर पीछे लटक कर बैठो, सिर को ढीला करो और उसे पीछे लटक जाने दो। ज्योंही उसमें का प्राण खींच लोगे त्योंही वह किसी ओर लटक जायगा। इसकी सही भावना प्राप्त करने के लिए किसी ऊंघते हुए मनुष्य का ख्याल करो जोकि ज्योंही निद्रा के वशीभूत होजाता है और ढीला पड़ जाता है

तथा गर्दन के आकुंचन को वन्द कर देता है त्योंही अपने सिर को आगे गिर जाने देता है ।

(११) कंधों और छाती की मांसपेशियों को ढीली कर दो जिस से कि छाती का ऊपरी भाग ढीला होकर आगे की ओर गिर जाय ।

(१२) कुर्सी पर वैठकर कमर की मांसपेशियों को ढीला करो, जिससे शरीर का ऊपरी भाग आगे को उस प्रकार गिर जायगा जैसे उस लड़के का शरीर गिर जाता है जो कुर्सी ही पर बैठे २ सो गया हो ।

(१३) जो मनुष्य इन कसरतों को यहां तक सिद्ध कर ले वह यदि चाहे तो अपने सारे शरीर को गर्दन से लेकर घुटनों तक ढीला कर सकता है; तब वह भूमि पर ढेर सा गिर जायगा । यह एक बड़ा भारी गुण, अकस्मात् गिर जाने की दशा में है । इस सारे शरीर को ढीला कर देने का अभ्यास मनुष्य को चोट से बचाने में बड़ा काम देगा । तुम ख्याल करोगे कि जब छोटा बच्चा गिरता है तो वह इसी प्रकार ढील देता है जिस से उसे बड़े मनुष्यों की अपेक्षा, जिनको मोच आ जाता है या जिन के अवयव टूट जाते हैं, बहुत ही कम चोट आती है । यही दृश्य नशे में मतवाले हुए मनुष्यों में देखने में आता है, जिनका वश मांसपेशियों पर नहीं रहता इसलिये मांसपेशियाँ ढीली हो जाया करती हैं । जब ये गिरते हैं तब मांस की ढेरी सा गिर पड़ते हैं और बहुत कम चोट खाते हैं ।

इन कसरतों के अभ्यास में प्रत्येक को कई बार कर लो

तब दूसरी को शुरू करो। ये कसरतें बहुत बढ़ाई जा सकती हैं और कई प्रकार की तथा शिष्य की बुद्धि के अनुसार भी बनाई जा सकती हैं। अगर चाहो तो तुम्हीं अपनी नई कसरत रच लो पर ऊपर दी हुई बातों का ध्यान रखना।

शिथिलीकरण के अभ्यास करने से शरीर को अधिकार में लाने और विश्राम करने का अनुभव होता है, जो एक बड़ी लाभदायक बात है। जब योगियों के शिथिलीकरण विचार का ख्याल करने लगो तब "विश्राम में शक्ति" की भावना किए रहो। यह अत्यन्त थकी हुई नाड़ियों को बहुत लाभ पहुँचाता है, यह शरीर की उस जकड़न को छुड़ाने का उपाय है, जो एक ही समुदाय की मांशपेशियों को अपनी जीविका के लिए काम में लाते रहने से पैदा हो जातीं है और इच्छानुसार विश्राम करने के द्वारा थोड़े ही अर्से में जीवट लाभ करने का सरल उपाय है। पूर्वीय लोग इस शिथिलीकरण के विज्ञान को प्रायः जानते हैं और इसका व्यवहार प्रति दिन के जीवन में करते हैं। वे ऐसी २ यात्रा पर चल खड़े होते हैं, जिनसे पश्चिमी लोग भयभीत हो जावेंगे। ये लोग बहुत मील चलकर एक जगह ठहर जाते हैं; वहां ये लेट जाते हैं; प्रत्येक मांसपेशी को ढीला कर देते हैं और सब इच्छानुवर्ती मांसपेशियों से प्राण खींच लेते हैं, जिससे सिर से पैर तक शरीर ढीला और प्रगट निर्जीव सा हो जाता है। यदि संभव होता है तो थोड़ी नींद भी ले लेते हैं, यदि नहीं तो जागते ही रहते हैं पर मांशपेशियों को ऊपर लिखे अनुसार बना लेते हैं। इस प्रकार का एक घंटे का विश्राम

सामान्य मनुष्यों के एक रात्रि के विश्राम के बराबर या उससे अधिक होता है। वे फिर ताज़े होकर नए जीवन और नई शक्ति के साथ अपनी यात्रा शुरू करते हैं। तमाम घूमनेवाले फ़िर्के और जातियां इस ज्ञान को प्राप्त किए होती हैं। यह स्वभाविक रीति से अमेरिकन, इंडियन, अरब, अफ्रिका के वहशी, और सारे संसार के वहशियों में पाया जाता है। सभ्य मनुष्य ने इस गुण को लुप्त हो जाने दिया है, क्योंकि अब यह पैदल लम्बी यात्रा नहीं करता; परन्तु यदि सभ्य मनुष्य इस गुण को फिर भी प्राप्त कर लेता तो इसके काम के जीवन की थकावट दूर होने में बहुत कुछ सहायता मिल जाती।

अँगराई लेना।

अँगराई लेना विश्राम करने का दूसरा तरीक़ा है जिसे योगी लोग काम में लाते हैं। पहली दृष्टि में तो यह शिथिलीकरण का उलटा मालूम देता है; परन्तु वास्तव में यह भी उसी का भाई है, क्योंकि यह उन मांसपेशियों से तनाव खींच लेता है जो आदत ही से आकुंचित रहा करती हैं, और उनके द्वारा शरीर यंत्र के सब भागों में प्राण भेजकर प्राणसाम्य कर देता है जिससे सारे शरीर को लाभ पहुंचता है। प्रकृति हम जमुहाई और अँगराई लेने को उस समय विवश कर देती है जब हम थक जाते हैं। हमको प्रकृति की किताब से पाठ सीखना चाहिए। हमको इच्छा पूर्वक और अनिच्छापूर्व अँगराई लेना सीखना चाहिए। आप जितना आसान इसे ख्याल करते हैं उतना आसान यह नहीं है; इससे पूरा लाभ उठाने के पहले आप को इसका अभ्यास करना होगा।

शिथिलीकरण की कसरतों को उसी क्रम से कीजिए जिस क्रम से इस किताब में दी गई हैं; परन्तु प्रत्येक भाग को ढीला करने के स्थान पर उसे तान दो। पांव से शुरु करो और टांगों तक कर जाओ, और फिर भुजाओं और सिर तक करो। अनेक रीतियों से तानो या फैलाओ, अपनी टांगों, पैरों, भुजाओं, हाथों, सिर और शरीर को इस प्रकार तानो और मड़ोरो जैसे तानने और फैलाने से पूरा फैलाव प्राप्त होने की तुम्हें आशा हो। जमुहाई लेने से भी मत डरो; वह भी एक प्रकार का तनाव ही है। तानने में तुम्हें मांसपेशियों को फैलाना और आकुंचन करना होगा; परन्तु विश्राम और सुख बाद के ढिलाव में आवेगा। आपने मन में "ढील देने" की भावना को रक्खे रहो, न कि मांसपेशियों के प्रयत्न का ख्याल करो। हम तनाव या प्रसारण की कसरतें नहीं दे सकते क्योंकि प्रसारण की इतनी रीतियां उसके सामने हैं कि उसके उदाहरण दिए जाने की आवश्यकता ही नहीं है। उसे ठीक विश्रामदायक प्रसारण की भावना को राह देने दो और प्रकृति उसे बतला देगी कि क्या करना होगा। तो भी यहां एक साधारण शिक्षा बतला दी जाती है। भूमि पर खड़े हो अपनी टांगों को दूर २ फैलाए रहो और अपनी भुजाओं को, अपने सिर के ऊपर फैला कर सीधी रक्खो। तब पैर की उंगलियों पर उठो और अपने शरीर को शनैः २ इस प्रकार तानो कि मानो छत को छूना चाहते हो। यह बहुत ही सरल कसरत है पर आश्चर्यजनक रीति से ताजगी देने वाली है।

प्रसारण या तनाव का एक भेद इस प्रकार से भी प्राप्त

हो सकता है कि अपने शरीर को ढीला करके चारो ओर से खूब हिला दो, शरीर के इतने अधिक भाग हिलें जितने तुम हिला सकते हो। न्यूफ़ाउंडलेंड कुत्ता जब पानी में से बाहर निकलता है तो जिस तरह पानी झाड़ने के लिये अपने बदन को हिलाता है उसे देख कर समझ जाइए कि हमारा क्या अभिप्राय है।

शिथिल करने की ये सब तरकीबें, यदि उचित रिति से शुरु और समाप्त की जावें तो अभ्यासि करने वाले को नयी शक्ति दे देंगी और अपने काम को करने के लिये वह फिर उतारू हो जायगा। उसको वैसा ही मालूम होगा जैसा थकावट के बाद भरनींद सोने और उठकर मल २ कर स्नान करने से मालूम होता है।

मन के शिथिल करने का अभ्यास।

इस अध्याय को समाप्त करने के पहले मन के शिथिल करने की कसरत दे देना भी अच्छा होगा। शरीर के शिथिल करने का प्रभाव मन पर पड़ता है और उसे विश्राम देता है; परन्तु मन के शिथिल करने का भी प्रभाव शरीर पर पड़ता है और उसे विश्राम देता है। इसलिए यह अभ्यास उस मनुष्य की आवश्यकता को पूरी कर सकता है जिसको इस अभ्यास में पहले लिखी हुई बातों से विश्राम में सन्तोष न मिला हो।

चुपचाप शरीर को ढीला करके सुखासन में बैठ जाओ और अपने मन को बाहरी चीजों, और ख्यालात से हटा लो; क्योंकि इसमें भी मानसिक बल व्यय होता रहता है। अपने

ध्यान को भीतर असली आत्मा पर लगा दो। ऐसा ख्याल करो कि तुम शरीर से बिलकुल परे हो और इसे, बिना अपना व्यक्तित्व क्षीण किए हुए छोड़ सकते हो। तुम्हें एक आनन्द-मय विश्राम और शान्ति तथा सन्तोष का अनुभव होगा। ध्यान को पार्थिव शरीर से हटा कर ऊंचे " अहम् " में, जो असली तुम हो, जमाना आवश्यक है। अपने चारो ओर जो विस्तृत सृष्टि है, करोडों सूर्य अपने पृथ्वी के मानिन्द ग्रहों से घिरे हुए हैं, और कहीं २ जो इससे भी बहुत बड़े हैं, उनका ध्यान करो। देश और काल के विस्तार की ओर मन की भावना फैलाओ, जीवन को इन सारी दुनियाओं में फैला हुआ देखो, और तब इस पृथ्वी और अपनी स्थिति पर विचार करो कि यह कैसा धूलि-कण के ऊपर एक कीट की भांति है। तब अपने विचार ही में और ऊपर उठो और समझो कि यद्यपि तुम उस महत् का एक कण हो तौ भी तुम उस जीवन का एक अंग हो और उस आत्मा की एक किरण हो जो सब में व्याप रहा है; सोचो कि तुम अमर, नित्य और अविनाशी हो, उस सम्पूर्ण का एक आवश्यक अंग हो, और एक ऐसा अंग हो कि जिसके बिना सम्पूर्ण रह ही नहीं सकता, सम्पूर्ण की बनावट का पूरा करनेवाला अंग तुम्ही हो। ऐसा अनुभव करो कि तुम उस महत् जीवन के सब से लगाव रखते हो, सम्पूर्ण का जीवन तुम में स्फुरण कर रहा है; महत् जीवन का सारा महा-सागर तुमको अपने हृदय पर हलराय रहा है। और तब जाग कर अपने पार्थिव जीवन में आओ, तब तुम्हें मालूम होगा कि तुम्हारा शरीर ताज़ा हो गया है, तुम्हारा मन शान्त

और बलवान् होगया है; और तब तुम उस काम में लिपट जाओगे, जिसको बहुत दिन से टालते चले आते हो। तुम मानस के ऊपरी लोकों में भ्रमण करने से लाभ उठाए और बलवान् हो गए हो।

क्षणभर का विश्राम।

काम करते २ क्षण भर का विश्राम पा जाने की तरकीब, उड़ते २ विश्राम पा जाने की तरकीब, जैसा कि हमारे नवयुवक मित्र शिष्यों में से एक ने इसे कहा है—नीचे लिखी जाती है :—

सीधे खड़े हो, सिर ऊँचा और कंधे पीछे को दबे हों, तुम्हारी भुजाएँ बग़ल में ढीली लटकती हों। तब अपनी एड़ियों को धीरे २ भूमि से उठाओ, शनैः २ अपने भार को पैर के पंजों पर रखते जाओ और साथ ही साथ अपनी भुजाओं को बग़ल से ऊपर उठाते जाओ तब तक कि वे गिद्ध के फैले हुए पखने की भाँति न हो जाँय। ज्यों २ भार पंजों पर पड़ता जाय और भुजाएँ फैलती जाय २ त्यों २ श्वास भीतर खींचते जाओ और तुम्हें उड़ने की भाँति मालूम होने लगेगा। तब धीरे २ श्वास छोड़ते जाओ और शरीर का भार फिर एँड़ियों पर लाते जाओ और भुजाओं को नीचे बग़लों में लाते जाओ। यदि ऐसा करना तुम्हें अच्छा लगे तो इसे कई बार करो। पंजों पर उठने और भुजाओं को फैलाने से एक प्रकार के हलकेपन और स्वतंत्रता का अनुभव होगा जिसको समझने के लिए इसका अभ्यास ही करना पड़ेगा।

चौबीसवाँ अध्याय।

शारीरिक व्यायाम का लाभ।

मनुष्य को प्रारंभिक दशा में शारीरिक व्यायाम की शिक्षा की आवश्यकता न थी—लड़की और नवयुवकों को, जो स्वाभाविक रुचि के हैं, अब भी आवश्यकता नहीं है। मनुष्य के जीवन की प्रारम्भिक दशा उसको अनेक प्रकार की पुष्कल क्रियाओं में व्यस्त रखती थी, उसे बाहर काम करना पड़ता था, और व्यायाम की उत्तम से उत्तम दशाएँ प्राप्त हो जाती थीं। उसे अपने लिए भोजन ढूँढ़ना, उसे तैय्यार करना, अपनी फ़सिल उत्पन्न करना, अपना घर बनाना, इन्धन जुटाना और सहस्रों ऐसे काम करने पड़ते थे जो उसके सादे जीवन के सुख के लिए आवश्यक थे। परन्तु मनुष्य ज्यों २ सभ्य होने लगा, त्यों २ अपने कामों के भाग दूसरों के हवाले करने लगा, और स्वयम् किसी दूसरे प्रकार के काम में लग गया; अन्त में अब ऐसा हो गया है कि हम में से बहुत लोग वास्तव में कुछ भी शारीरिक काम नहीं करते, और कुछ लोगों को एक ही प्रकार का कठिन परिश्रम करना पड़ता है। दोनों को अस्वाभाविक जीवन व्यतीत करना होता है।

शारीरिक परिश्रम, बिना मानसिक क्रियाओं के, मनुष्य के जीवन को ठुठना कर देता है। वैसे ही बिना शारीरिक

परिश्रम के केवल मानसिक क्रियाएँ भी उसे ठुठना बना देती हैं। प्रकृति समता चाहती है—सुखकर मध्यवर्ती पथ चाहती है। स्वाभाविक साधारण जीवन के लिये मनुष्य की शारीरिक और मानसिक सब शक्तियों का व्यवहार में आ जाना बहुत आवश्यक है; और वह जो अपने जीवन को इस प्रकार से नियमित करता है कि शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के परिश्रम हुआ करते हैं, वही सब से अधिक स्वस्थ और सुखी होता है।

लड़कों को आवश्यक व्यायाम उनके खेलों में मिल जाता है, और उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति उन्हें खेल कूद में लग जाने की प्रेरणा करती है। चतुर मनुष्य अपने मानसिक परिश्रम के बाद खेल कूद भी अच्छी तरह कर लिया करते हैं। नए २ खेल जो अब धीरे २ प्रचार पा रहे हैं उनसे विदित होता है कि मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृति अभी मरी नहीं है।

योगियों का यह विश्वास है कि खेल की प्रवृत्ति–यह वेदना कि कसरत चाहिए—वही प्रवृत्ति है जो मनुष्य से रुचिकर जीविका के लिये--परिश्रम कराती है--यह क्रिया के लिये--भिन्न २ क्रियाओं के लिये–प्रकृति की प्रेरणा है। स्वाभाविक स्वास्थ शरीर शरीर वही हैं जो अपने सब अंगों में समान पुष्टि पाए हुए हैं; और कोई अङ्ग उचित पोषण नहीं पाता जबतक उस अङ्ग द्वारा समुचित परिश्रम न किया जाय। जिस अवयव से कम काम लिया जाता है, वह साधारण पोषण की अपेक्षा कम पोषण पाता है, और समय पाकर

निर्बल होजाता है। प्रकृति ने मनुष्य के शरीर के प्रत्येक अङ्ग और भाग के लिये स्वाभाविक उद्यमों और खेलों के द्वारा व्यायाम नियत किया है। स्वाभाविक उद्यम से हमारा अभिप्राय उस उद्यम से नहीं है जो शरीर के केवल किसी विशेष अङ्ग से लिया जाता है; क्योंकि जो मनुष्य केवल एक ही प्रकार का कार्य करता है, वह केवल थोड़ीसी मांसपेशियों से अधिक काम लेता है और उसकी अन्य मांसपेशियां जकड़ जाती हैं; उसे भी व्यायाम की उतनी ही आवश्यकता है जितनी मेज़ के पास बैठकर दिन भर काम करने वाले को होती है; अन्तर इतना है कि पहले को दूसरे की अपेक्षा बाहर काम करने से लाभ होता है।

हम वर्त्तमान शारीरिक शिक्षा को खुले मैदान के उद्यम और खेल के स्थान पर बहुत ही हीन स्थानापन्न समझते हैं। इनमें कोई मनोरंजकता नहीं होती और जिस प्रकार उद्यम और खेल में मन प्रसन्नता पूर्वक लग कर काम करता है, वैसा इसमें नहीं करता। परन्तु किसी प्रकार का व्यायाम उसके अभाव की अपेक्षा अच्छा है। परन्तु हम उस व्यायाम के विलकुल ही विरोधी हैं, जिससे कुछ ही मांशपेशियों की वृद्धि होती है और पहलवानी के खेल किए जाते हैं। यह सब अस्वाभाविक बात है। शारीरिक शिक्षा की पूर्ण पूर्ण पद्धति वह है, जो सारे शरीर का यथोचित विकाश करती है सब मांसपेशियों से काम लेती है-सब भागों को पुष्ट करती है, और जो व्यायाम में यथासाध्य अधिक से अधिक मन-लगाव उत्पन्न करे और जो अपने शिष्यों को खुले मैदान में रक्खे।

योगी लोग अपने प्रतिदिन के जीवन में अपने कामों को आप करते हैं और इस तरह बहुत सा व्यायाम पा जाते हैं। वे जंगलों में बहुत दूर तक घूम फिर भी आते हैं (ये लोग जंगल व पहाड़ों को मैदान और बड़े २ शहरों की अपेक्षा अधिक पसन्द करते हैं)। अपने ध्यान और अध्ययन के के बीच २ में ये अनेक प्रकार के हलके व्यायाम भी कर लिया करते हैं। इनके व्यायाम में कोई नूतन बात नहीं है। इनके व्यायाम में मूल और प्रधान अन्तर अन्य व्यायामों से यह है कि ये शरीर की गतियों के साथ मन का भी प्रयोग करते हैं। जिस प्रकार उद्यम और खेल में जी लगने से मन का प्रयोग होता है उसी तरह योगी अपने व्यायाम में भी मन लगाता है। वह अपने व्यायाम में जी लगाता है और अपनी आकांक्षा के प्रयत्न से संचालित भाग में प्राण की अधिक मात्रा भेजता है। इस तरह उसे कई गुणा अधिक लाभ होता है; और कतिपय मिनटों ही के व्यायाम से उसे उस व्यायाम का दश गुना लाभ होता है, जो यों ही लापरवाही से बिना जी लगाए किया जाता है।

इच्छित भाग में जी लगाने की क्रिया आसानी से साधी जा सकती है। केवल इतना ही आवश्यक है कि इस बात पर पक्का विश्वास कर लिया जाय कि यह हो जायगा; इस तरह सन्देह के कारण जो भीतरी बाधाएँ पड़ती हैं, वे न पड़ेंगी। तब केवल मन को आज्ञा दो कि उस भाग में प्राण भेजे और रुधिर संचार को बढ़ावे। मन इसको अनिच्छापूर्वक तो कुछ न कुछ करता ही है जब शरीर के किसी भाग पर

ध्यान आकर्षित होता है; परन्तु आकांक्षा का प्रयोग करने से प्रभाव और भी अधिक बढ़ जाता है। अब आकांक्षा के प्रयोग करने में भी यह आवश्यक नहीं है कि भौंहें सिकोड़ी जाँय, मुट्ठी बांधी जाय, और प्रबल शारीरिक प्रयत्न किया जाय। बहुत सरल उपाय अभीष्ट फल को प्राप्त करने का यह है कि जिस बात को हम चाहते हैं उसके लिए पूरी आशा और भरोसा करें कि वह अवश्य हो जाय। यही पूरी आशा और भरोसा आकांक्षा की प्रभावशाली आज्ञा है—इसका प्रयोग कीजिए और बात सिद्ध है।

उदाहरण के लिये यदि आप अपनी क़लाई में अधिक प्राण भेजा चाहते हैं और वहाँ का रुधिर संचार बढ़ाया चाहते हैं और इसके द्वारा उसकी पुष्टि की उन्नति किया चाहते हैं, तो केवल भुजा को बटोर लीजिए और तब शनैः २ उसे फैलाने लगिए, अपनी दृष्टि या अपने ध्यान को क़लाई पर जमाए रहिए और अपने अभीष्ट का ध्यान किए रहिए। इस को कई बार कीजिए तो आपको मालूम होगा कि आपने कलाई की कोई अच्छी कसरत भली भाँति कर ली है, यद्यपि आपने उससे कोई भी प्रबल गति नहीं कराई और न किसी कसरत के औज़ार आदि का व्यवहार किया। इस तरकीब का प्रयोग शरीर के कई अंगों पर कीजिए; उन अंगों से कोई भी गति कराते रहिए जिसमें आपका ध्यान वहाँ लगा रहे, तो आपको बहुत जल्द कुंजी मालूम हो जायगी और जब कभी आप किसी साधारण सरल व्यायाम को करने लगेंगे तो यह बात स्वयम् आप ही आप होने लगेगी। संक्षेप यह

है कि जब आप कोई व्यायाम करने लगें तो इन बातों पर ध्यान जमाए रहें कि आप क्या और किस लिये कर रहे हैं; तब आप को पूरा फल बहुत जल्द मिल जायगा। अपने व्यायाम को जीवित और मनोरंजक बनाए रहिए; और लापरवाही से बिना मन लगाए अंगों को कसरत करने से बाज़ आइए। व्यायाम में कोई मन-लगाव की बात मिला दीजिए और तब उसका उपयोग कीजिए। इस प्रकार मन और शरीर दोनों लाभ उठाते हैं। व्यायाम समाप्त होने पर आप को ऐसी तमतमाहट और प्रसन्नता मालूम होगी जैसी बहुत दिनों से न मालूम हुई होगी।

अगले अध्याय में हम थोड़ी साधारण कसरतें देते हैं, जो, यदि उनका अभ्यास किया जाय तो, शरीर के अंगों के लिए सब आवश्यक गतियों को देंगी; प्रत्येक भाग काम करेगा, प्रत्येक अवयव शक्ति ग्रहण करेगा; और आप केवल अच्छी तरह से विकाश ही न पावेंगे, किन्तु सिपाही की भांति सीधे खड़े हो जावेंगे और पहलवान की भांति चुस्त और फुर्तीले बन जावेंगे। इन कसरतों के कुछ भाग तो योगियों के आसन और मुद्राओं से लिए गए हैं और कुछ भाग यूरोप और अमेरिका की शारीरिक शिक्षा से लिए गए हैं जो वहाँ की पलटनों में व्यवहृत होते हैं। ये पलटनों की शारीरिक शिक्षावाले पूर्वीय कसरतों का भी अध्ययन किए हुए हैं और उन में से ऐसे भाग ले लिए हैं जो उनके उद्देश्य के अनुकूल हैं; और इन लोगों ने कसरतों की एक ऐसी माला बना ली है, जो करने में तो बहुत सादी और सरल

है, परन्तु परिणाम में बहुत आश्चर्यजनक प्रभाव उत्पन्न करने-वाली है। इस पद्धति की सादगी और सरलता के कारण आप इसका निरादर न करें। इसी की आप को आवश्यकता थी; इसके अनावश्यक अङ्ग निकाल डाले गए हैं। इनके विषय में अपने मन को स्थिर करने के पहले इनकी परीक्षा तो कर लीजिए। ये आप को शरीर से नया बना देंगी, यदि आप उचित समय और उचित श्रद्धा इनके अभ्यास में लगावेंगे।

पचीसवां अध्याय ।

योगियों के कुछ व्यायाम ।

इन कसरतों को आपको बतलाने के पहले हम फिर आपके मन पर इस बात जो अंकित करना चाहते हैं कि बिना जी लगाये कसरत अपना फल नहीं देती । आपको अपनी कसरत में जी लगाने का प्रबंध करना होगा कि उसमें कुछ मन भी लगा रहे । आपको उस कसरत को पसंद करना पड़ेगा और इस बात पर ख्याल करना पड़ेगा कि इसका मतलब क्या है । इस सलाह का अनुसरण करने से आपको इस काम में कई गुना अधिक लाभ होगा ।

खड़े होने की स्थिति ।

प्रत्येक कसरत को स्वाभाविक रीति से खड़े होकर तुम्हें शुरू करना चाहिए अर्थात् तुम्हारी एड़ियाँ एकत्र रहें; सिर ऊँचा, आँखें सामने, कंधे पीछे, छाती फैली, पेट थोड़ा भीतर खिंचा और भुजाएँ बगल पर लटकती हों ।

अभ्यास १ ।

(१) भुजाओं को अपने समान सीधा फैलाओ, उँचाई कन्धों के समान रहे, हाथों की हथेलियाँ एक दूसरी को छूती रहें; (२) हाथों को झोका देकर पीछे फेंको जब तक हाथ कन्धों से सीधे बग़लों के सामने, या उससे भी कुछ पीछे, यदि आसानी से जा सकें, न चले जायँ; तेजी से पहली स्थिति

में लाओ, और इसे कई बार करो । भुजाओं को बड़ी तेजी से झोका देना चाहिए और चैतन्यता और जीवट के साथ अनमने होकर काम मत करो, किन्तु जी लगा कर खेलो। यह कसरत छाती, कन्धों की मांसपेशियों आदि के विकाश करने में बड़ी लाभदायक है। हाथों को झोका देकर पीछे ले जाने में यदि तुम पैर के पञ्जों पर हो जाओ और आगे लाने में फिर एड़ियों पर आ जाओ तो और भी अच्छा होगा। बार २ की आगे पीछे वाली गति तेज पेण्डुलम की भाँति-तालयुक्त होनी चाहिए।

(२) *अभ्यास* ।

(१) भुजाओं को कन्धों से सीधा बग़ल की ओर फैलाओ, हाथ खुले रहें; (भुजाओं को इसी तरह फैलाये ही हुए एक वृत्त में (जो बहुत बड़ा न हो) घुमाओ, भुजाओं को जहाँ तक सम्भव हो पीछे ही की ओर दबाये रहो, और हाथ वृत्ताकार घूमते समय छाती की लाइन के सामने न आने पावें। वृत्त बनाना जारी रक्खो जब तक मान लो कि १२ न हो जायँ। यदि योगियों के तरीके से पूरी साँस ले लोगे और बहुत से वृत्तों तक उसे रोके रहोगे तो और भी अच्छा होगा। इस कसरत से छाती, कन्धे और पीठ विकसित होते हैं।

(३) *अभ्यास* ।

(१) भुजाओं को अपने सामने सीधा फैलाओ, प्रत्येक हाथ की कनिष्ठिका अंगुलियां एक दूसरी को छूती रहें, हथेलियां ऊपर की ओर हों (२) तब छोटी अंगुलियों को छूते

ही रहे हुए हाथों को टेढ़ी वृत्ताकार गति से सीधा ऊपर लाओ, जब तक दोनो हाथों की अंगुलियों के छोर सिर के ऊपरी भाग को ललाट के पिछवाड़े न छुएँ, अंगुलियों की पीठ छूती रहें, ज्यों २ गति हो त्यों २ कुहनियां बाहर की ओर होती जायँ (जब अंगुलियां सिरको छुएँ, अंगूठे पीछे की ओर इंगित करते रहें), और अन्त में बग़लों की ओर हो जावें। (३) अंगुलियों को क्षणभर सिर का पीछा छुएँ रहने दो और तब कुहनियों को पीछे खींच कर (जिससे कन्धे भी पीछे को दब जाते हैं) भुजाओं को टेढ़ी गति से पीछे की ओर दबाओ जब तक वे पूरी लम्बी हो कर खड़े होने की स्थिति में बग़लों में न आजायँ।

(४) *अभ्यास।*

(१) भुजाओं को कंधे से बग़लों की ओर सीधा फैलाओ (२) तब मुसलियों को उसी स्थिति में फैलाये हुए भुजाओं को केहुनियों पर टेढ़ा करो और कलाइयों को वृत्ताकार गति से ऊपर लाओ जब तक फैली हुई अंगुलियों के छोर कंधों के ऊपरी भाग को छू न लें। (३) अंगुलियों को इसी अन्तिम स्थिति में रक्खे हुए कुहनियों को झोंका दे कर सामने की ओर लाओ कि वे एक दूसरी को छू लें या छूने के निकट हो जायँ (थोड़े अभ्यास से वे छूने लगेंगी)। (४) तब अंगुलियों को उसी स्थिति में रक्खे हुए कुहनियों को इतना पीछे लेजाओ जितना ले जा सको। (थोड़े अभ्यास से ये बहुत पीछे जाने लगेंगी) (५) कुहनियों को कई बार आगे पीछे ले जाओ।

(५) अभ्यास।

हाथों को नितम्ब पर रक्खो, अँगूठे पीछे की ओर, कुहनियाँ पीछे को दबी हों; (२) शरीर को नितम्ब से आगे की ओर टेढ़ा कर सको जहाँ तक तुम टेढ़ा कर सको, पर छाती को चौड़ा किए और कंधों को पीछे ही दबाये रहो। (३) शरीर को पहले खड़े होने की स्थिति में लाओ। हाथ नितम्ब ही पर रहे, और तब पीछे झुको। इन गतियों में घुटनों को टेढ़ा न करना चाहिये, और गति धीरे २ करनी चाहिए। (४) तब हाथ नितम्बों ही पर रक्खे दाहिनी ओर धीरे २ झुको, एड़ियाँ भूमि पर दृढ़ बनी रहें, घुटने टेढ़े न होने पावें, और शरीर ऐंठने न पावे (५) पहली स्थिति पर आओ और तब शरीर को धीरे २ बाईं ओर झुकाओ, पिछली गति में दी हुई सूचनाओं का अनुसरण किए रहो। यह क़सरत कुछ थकावट लाने वाली है, और पहले इसमें अतिशय मत करना धीरे २ आगे बढ़ना (६) हाथ उसी तरह नितम्बों ही पर रक्खे हुए शरीर के ऊपरी भाग को, कमर से ऊपर चारों ओर वृत्ताकार घुमाओ, जिसमें सिर सब से बड़ा वृत्त बनावे। पर खिसकने और घुटने टेढ़े न होने पावें।

(६) अभ्यास।

(१) सीधे खड़े होकर, भुजाओं को सीधा सिर के ऊपर उठाओ, हाथ खुले रहें और जब भुजाएँ सिर के ठीक ऊपर चली जायँ तब अँगूठे एक दूसरे को छूते रहें, हथेलियाँ आगे की ओर रहें। (२) तब बिना घुटनों को टेढ़ा किए,

शरीर को कमर से नीचे झुकाओ और फैली हुई अँगुलियों के छोरों से भूमि को छूने का यत्न करो यदि तुम पहले इसे न कर सको तो जहां तक बन सके यत्न करो और शीघ्र तुम इसे ठीक करने लगोगे—परंतु स्मरण रहे कि न घुटने टेढ़े होने पावें न और न भुजाएँ। (३) उठो और इसे कई वार करो।

(७) *अभ्यास ।*

सीधे खड़े होकर और हाथों को नितम्बों पर रक्खे हुए, अपने को पैर के पंजों पर कई बार उठाओ। जब पंजों पर उठ जाओ; तो क्षणभर ठहर जाओ, तब एड़ियों को फिर भूमि पर आ जाने दो, फिर ऊपर लिखे अनुसार ऊपर उठो। घुटनों को टेढ़ा न होने दो और एड़ियों को एकत्र रक्खो। यह कसरत टांगों को पिछली मांसपेशियों (पौली) को उन्नत करती है, और शुरू में वहाँ कुछ पीड़ा सी होने लगेगी। यदि आपकी वहां की मांसपेशियाँ विकसित न हों तो इस कसरत को कीजिये। (२) हाथों को नितम्बों ही पर रक्खे हुए अपने पैरों को दो फीट के फासले पर रखिए और तब शरीर को बैठने की स्थिति में लाइए; थोड़ा ठहर कर फिर पहली स्थिति में ले जाइए। इसे कई बार कीजिये, पर पहले अतिशय न कीजिए क्योंकि इससे जांघों में पहले पीड़ा हो जायगी। इस कसरत से जांघों की उन्नति होगी। इस पिछली गति में यदि आप पंजों पर होकर नीचे बैठें तो और भी अच्छा होगा।

(८) अभ्यास।

(१) सीधे खड़े हो, हाथ नितम्बों पर रहें। (२) घुटने को सीधा ही रक्खे हुए दहनी टांग को करीब १५ इंच आगे फेंको (अँगूठा बाहर की ओर झुका रहे और तलवा चिपटा रहे—तब टांग को पीछे फेंको कि अंगूठा नीचे को मुँह कर लें, पर घुटना बराबर कड़ा रहे। (३) कई बार इसी तरह आगे पीछे झोंका दे कर ले जाओ। (४) तब बाईं टांग से ऐसा ही करो। (५) हाथों को वैसे ही नितम्बों पर किए हुए, घुटने को टेढ़ा कर के, दहनी टांग को ऊपर उठाओ जब तक जांघ ठीक शरीर के सामने न आ जाय (अगर और उपर उठा सकते हो तो उठाओ।) (६) अपने पैर को फिर भूमि पर रक्खो और बाईं टांग से वैसी ही गति करो। (७) कई बार ऐसा करो, पहले एक टांग और तब दूसरी; पहले धीरे २ और फिर धीरे २ तेज़ी को बढ़ाते जाओ जब तक कि तुम धीमी दौड़ बिना जगह छोड़े न कर लो।

(९) अभ्यास।

(१) सीधे खड़े हो और भुजाओं को अपने सामने कन्धों से सीधा फैलाओ और उन्हें कन्धों ही की उँचाई तक रक्खो—हथेलियाँ नीचे मुँह किए रहें; अँगुलियाँ बाहर फैली और अँगूठे नीचे हथेलियों से लगे रहें, और अँगूठे की ओर हाथ एक दूसरे को छूते रहें; (२) नितम्बों से शरीर को नीचे झुकाओ, वहाँ तक आगे नीचे लटको जहाँ तक सम्भव हो और साथ ही भुजाओं को झोंका दे कर आगे फेंको कि

नीचे होते हुए पीछे पीठ पर ऊपर जाँय, यहाँ तक कि जब तक शरीर हद तक नीचे जाय तब तक भुजाएँ शरीर के ऊपर पीछे फैल जायँ भुजाजों को सीधे ही रक्खे रहो और घुटने टेढ़े न होने पावें। (३) फिर खड़ी स्थिति में आ जाओ और इसे कई वार करो।

(१०) *अभ्यास।*

(१) भुजाओं को वग़ल की ओर कन्धों से सीधे फैलाओ और वहाँ ही हाथों को खोले हुए उन्हें कड़ा और सख्त करो; (२) जल्दी से जोर से हाथों को बन्द करो कि अँगुलियाँ हथेलियों में चुभ सी जाँय, (३) हाथों को तेजी से और जोर से खोलो, अँगुलियों और अँगूठों को इतना फैलाओ जहाँ तक फैला सको कि हाथ पंखे के सदृश हो जायँ; (४) ऊपर लिखी रीति से हाथों को खोलते और बन्द करते रहो, कई वार ऐसा करो और तेज़ी के साथ करो। कसरत में जीवट डाल दो। यह हाथ की मांसपेशियों को उन्नत करने में बड़ी अच्छी कसरत है; इससे हाथों में बल आता है।

(११) *अभ्यास।*

(१) अपने पेट के बल पड़ जाओ, अपने हाथों को सिर के ऊपर फैलाए रहो और तब ऊपर की ओर झुकाओ; तुम्हारी टाँगें लम्बाई भर फैली रहें और फिर पीछे की ओर ऊपर उठाई जावें। इसकी पूरी भावना तब होगी जब आप किसी कटोरे का ध्यान करेंगे कि पेंदी तो भूमि पर हो पर सिर ऊपर की ओर उठा हो। (२) भुजाओं और टांगों को

कई बार ऊपर नीचे करो। (३) तब पीठ के बल लेट जाओ और लम्बाई भर फैल कर पड़ जाओ, भुजाएँ सीधी सिर के ऊपर की ओर फैली रहें, अँगुलियों की पीठें भूमि को छूती रहें। (४) तब कमर से दोनों टाँगों को ऊपर उठाओ जब तक वे सीधी ऊपर की हवा में जहाज़ के मस्तूल की भाँति खड़ी न हो जाँय; आपका ऊपरी शरीर और भुजाएँ पिछली दी हुई स्थिति में पड़ी रहें। टांगों को नीचे करो और कई बार उठाओ। (५) तीसरी स्थिति पर आओ, पीठ के बल, लम्बानभर, भुजाओं को सीधा ऊपर सिर की ओर उठाए हुए रहो और अँगुलियों की पीठें भूमि को छूती रहें; (६) तब धीरे २ शरीर को बैठने की स्थिति में लाओ, भुजाएँ कंधों के सामने बाहर की ओर फैली रहें। तब धीरे २ फिर पड़ जाने की स्थिति में जाओ और उठने और पड़ जाने की क्रिया कई बार करो। (७) तब फिर मुँह और पेट के बल उलट जाओ; और नीचे लिखी हुई स्थिति को धारण करो; सिर से पैर तक शरीर को कड़ा करो, अपने शरीर को उठाओ जब तक शरीर का कुल बोझ एक ओर तुम्हारी हथेलियों पर (भुजाएँ आगे की ओर सीधी तनी रहें) और दूसरी ओर पैर के अँगूठों और अँगुलियों पर न आ जाय। तब धीरे २ भुजाओं को कुहनियों पर टेढ़ी करने लगो और छाती को भूमि पर जाने दो; तब अपनी भुजाओं को सीधी और कड़ी करने के द्वारा अपनी छाती और ऊपरी शरीर को ऊपर उठाओ, कुल भार भुजाओं पर रहे। यह पिछली गति कठिन है और शुरू से इसमें अति न करनी चाहिए।

बढ़े पेट को पचकाने का अभ्यास ।

यह कसरत उन लोगों के लिए है, जिन का पेट बहुत बढ़ गया हो, जो अति अधिक चरबी वहां एकत्र हो जाने से होता है । इस कसरत को उचित रीति से करने से पेट बहुत छोटा हो सकता है—परन्तु सर्वदा स्मरण रहे कि सब बातों में मध्य वृत्ति रहनी चाहिए, और अति किसी बात में न करो, न शीघ्रता ही करो । कसरत यों है: (१) सब हवा प्रश्वास द्वारा बाहर निकाल दो (बहुत ज़ोर मत लगाओ) और तब पेट को भीतर और ऊपर खींचो जहां तक तुम खींच सको तब क्षण भर रोक रक्खो और फिर स्वाभाविक स्थिति में आने दो । कई बार इसे करो, तब एक दो सांस ले लो और थोड़ा विश्राम कर लो । फिर कई बार पेट को वैसा ही भीतर खींचो और बाहर लाओ । इस थोड़े अभ्यास से पेट की मांसपेशियों पर कितना अधिकार हो जाता है यह बड़ी आश्चर्यजनक बात है । इस कसरत से केवल चर्बी ही की तहें नहीं घटेंगी, किन्तु, आमाशय की मांसपेशियां भी बड़ी बलवती हो जावेंगी । (२) पेट को अच्छी तरह मुलायमियत से मलो ।

शरीर को कड़ा करने का अभ्यास ।

यह कसरत इसलिए है कि मनुष्य को सुन्दर स्वाभाविक रीति से खड़े होने और चलने की प्राप्ति हो जाय, और उसकी ढीले ढाले रहने और चलने की आदत छूट जाय । यदि अच्छी तरह से इसका अभ्यास किया जाय तो इससे सीधी सुन्दर

गति (चाल) हो जावेगी। इससे आपकी चाल ऐसी हो जावेगी कि आपके प्रत्येक अवयव को काफ़ी अवकाश रहेगा और शरीर का प्रत्येक अंग सुव्यवस्थित रहेगा। इस या इसी के समान किसी कसरत का अनुसरण बहुत से देशों में सेना नायकों द्वारा किया जाता है, जिससे नवयुवक अफ़सरों की चाल उचित और सुन्दर हो जावे; परन्तु सेनाओं में इस कसरत का बहुत अच्छा प्रभाव दूसरी जंगी कसरतों से दब जाता है और शरीर में अधिक कड़ापन आ जाता है; परन्तु इस कसरत को पृथक् करने से वह दोष नहीं आने पाता। कसरत नीचे लिखी जाती है इसको सावधानी से समझिये:— (१) सीधे खड़े हो, एड़ियां एकत्र और पैर के अंगूठे थोड़ा बाहर की ओर झुके हों। (२) भुजाओं को बग़ल से ऊपर की ओर वृत्ताकार गति में उठाओ कि हाथ सिर के ऊपर जा कर मिल जायँ, अंगूठे एक दूसरे को छू लें; (३) घुटनों को सख्त और शरीर को कड़ा किए हुए कुहनियां टेढ़ी न होने पावें (और कंधे पीछे ही की ओर दबे रहें)। भुजाओं को वृत्ताकार गति में बग़लों ही की सीध में नीचे लाओ जब तक छोटी अंगुलियां और हथेली के भीतरी किनारे जांघों की बग़लों को छू न लें, हथेलियों का मुँह सामने की ओर हो; इसे कई बार करो, स्मरण रहे धीरे २ हाथों को अंतिम स्थिति में इस गति से लाए जाने पर कंधों को आगे की ओर टेढ़ा होना असंभव हो जाता है। छाती थोड़ी उभड़ जाती है, सिर सीधा हो जाता है, पीठ सीधी और बीच में थोड़ी आगे की ओर झुकी हो जाती है (और यही उसकी स्वाभाविक स्थिति

है); और घुटने सीधे रहते हैं। संक्षेप यह है कि आपका शरीर उत्तम, सीधी गठन का हो जाता है—अब इसीको सर्वदा क़ायम रखिए। इस स्थिति में खड़े हो कर, कनिष्ठिका अँगुली को जांघों के ठीक वग़ल में रख कर कमरे ही में घूम २ कर टहलिए; और फिर इसी स्थिति से चला कीजिये, इस प्रकार थोड़ा अभ्यास करने से आश्चर्यमय उन्नति होगी। परन्तु इसमें अभ्यास और धैर्य की आवश्यकता है—इसी तरह सभी अच्छी बातों में अभ्यास और धैर्य की आवश्यकता हुआ करती है।

अब व्यायाम के विषय में जो हमें थोड़ा सा कहना था, उसे हम कह चुके। बातें सीधी हैं पर आश्चर्यमय उन्नति देने वाली हैं। इनसे शरीर के प्रत्येक भाग को परिश्रम करना पड़ जाता है; यदि सावधानी से इनका अभ्यास किया जाय तो ये आपके शरीर को नया बना देंगी। सावधानी से अभ्यास कीजिये और इनमें जी लगाइए। इनमें मनोयोग दीजिए और इस बात पर ध्यान रखिए कि किस अभिप्राय से आप इस क्रिया या खेल को कर रहे हैं। जब आप कसरत करने लगें "बल और उन्नति" पर ध्यान रक्खें, तब आपको और भी बहुत अधिक लाभ होगा। भोजन के तुरत पश्चात् व्यायाम मत करो। किसी व्यायाम को थोड़े ही बार दुहराओ और तब धीरे २ उसे बढ़ाने लगो। दिन में कई बार थोड़ा २ व्यायाम करो तो वह एक ही बार बहुत सा करने से अच्छा होगा।

ऊपर लिखा हुआ व्यायाम आपको उतना लाभ पहुँचावेगा जितना अन्य व्यायामों से कठिनता से प्राप्त होगा। ये कसरतें बहुत दिन की जांच में ठीक सिद्ध होती आई हैं और अब भी ठीक समयानुकूल हैं। जितनी ही ये गुणवर्धिनी हैं उतनी ही ये सरल भी हैं। इनका प्रयोग कीजिए और बलवान हो जाइए।

छब्बीसवाँ अध्याय।

योगियों का स्नान।

इस पुस्तक के एक अध्याय को स्नान की प्रधानता दिखलाने में लगाने की आवश्यकता न होती; परन्तु इस बीसवीं शताब्दी में भी बहुत से ऐसे मनुष्य हैं जो इस विषय के सम्बन्ध में वस्तुतः कुछ नहीं जानते। कहीं २ तो मनुष्य थोड़ा बहुत ऊपरी शरीर को धो डालते हैं, परन्तु अधिकांश मनुष्य, जिनमें स्त्रियों की संख्या और भी अधिक होती है, स्नान पर ध्यान ही नहीं देते; वे यातो स्नान के नाम पर जल का स्पर्श कर लेते हैं या वह भी नहीं करते। इसलिए हम अपने पाठकों का ध्यान इस विषय की ओर आकर्षित करना अच्छा समझते हैं कि क्यों योगी लोग स्वच्छ शरीर रखने पर इतना ज़ोर देते हैं।

प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य को स्नान करने की इतनी आवश्यकता न थी। क्योंकि उसका शरीर तब खुला रहता था, उस पर वृष्टि होती थी, झाड़ियाँ और वृक्ष उसके शरीर से रगड़ खाया करते थे, और शरीर पर जमा हुआ मैल, जिसे शरीर भीतर से निकाल निकाल कर ऊपर छोड़ता जाता जाता है, साफ़ हो जाया करता था। प्राकृतिक मनुष्य के समीप नदियाँ और झरने होते थे, एकाधबार स्वाभाविक प्रवृत्ति से प्रेरित होकर उसमें गोते लगा लेता था। परन्तु वस्त्र

का व्यवहार करने से ये बातें बदल गई, और आज कल के मनुष्यों का यद्यपि उनके चमड़े अब भी भीतर से मैल निकाल निकाल कर ऊपर कर रहे हैं, अब पुरानी रीति से मैल साफ करना बहुत कठिन हो गया, और उसकी मैले शरीर पर तह पर तह जमती जाती है और अंत में शारीरिक असुख और रोग उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि शरीर खाली आँख से देखने में स्वच्छ देख पड़ता हो पर वह वस्तुतः बहुत अधिक मैला प्रमाणित हो सकता है। यदि सूक्ष्म दर्शक यंत्र (खुर्दबीन) से आप शरीर के चमड़े को देखें तो मैल को देख कर आप घबड़ा जायँगे।

मनुष्य की सब जातियाँ जो तनिक भी सभ्यता का अभिमान करती थीं, इस स्नान का अभ्यास करती आई हैं। सच बात तो यों है कि स्नान ही को हम एक ऐसी नाप मान सकते हैं जिससे किसी जाति की सभ्यता नापी जा सकती सकती है। जिस जाति में जितना ही अधिक स्नान किया जायगा उसमें उतनी ही अधिक सभ्यता है और जिस जाति में स्नान की जितनी ही कमी है उसमें उतनी ही असभ्यता है। पुराने मनुष्य इस स्नान में बढ़ते २ अंत में अतिशय को पहुँच गये और प्रकृति के मार्ग से पृथक् हो गये; वे सुगंधियों से स्नान करने लगे। यूनानी और रोमन लोग स्नान का सभ्यजीवन की परम आवश्यक बात समझते थे; और बहुत सी पुरानी जातियाँ इस विषय में आधुनिक जातियों से बहुत बढ़ी चढ़ी थीं। जापानी लोग आजकल इस स्नान के विषय में दुनियाँ के सब लोगों से आगे बढ़े हुए हैं।

ग़रीब से ग़रीब जापानी को चाहे भोजन न मिले, कुछ चिंता नहीं, पर विधिवत् स्नान अवश्य होना चाहिये। गरम दिनों में भी यदि आप जापानियों के झुरमुट में चले जाँय तो तनिक भी दुर्गंधि आपको न मिलगी। क्या अमेरिका और यूरोप में भी यह बात असम्भव है? बहुत सी जातियाँ स्नान को अपने मज़हब का एक अंग मानती थीं और अब भी मानती है, मजहब के पुरोहित लोग स्नान की महिमा को समझते थे और उन्होंने इसे मजहब में मिला कर आवश्यक बना दिया। योगी लोग इसे मज़हब तो नहीं समझते परन्तु स्नान का व्यवहार ऐसा करते हैं जो मजहब से भी अधिक है।

अब देखना चाहिए कि स्नान करना क्यों आवश्यक है। हम में से बहुत कम लोग इसकी पूरी महिमा समझते हैं। जो समझते हैं वे भी केवल इतना ही समझते हैं कि इससे मैल–प्रत्यक्ष मैल–साफ़ होता है। परन्तु स्वच्छता तो आवश्यक वस्तु है ही, इसमें तो संदेह ही नहीं है, परंतु, स्वच्छता के अलावा भी इसमें बड़े बड़े गुण हैं। पहले यह देखना चाहिए कि चमड़े को स्वच्छ करने की आवश्यकता क्यों है।

हमने एक अध्याय में आपको समझा दिया है कि साधारण रीति से पसीने के बह जाने की बड़ी आवश्यकता है; यदि चमड़ों के छिद्र अवरुद्ध हो जायँ या बन्द हो जायँ तो शरीर अपनी रद्दियात को बाहर नहीं निकाल सकता। और वह बाहर कैसे निकाला करता है? चमड़ा, श्वास और गुर्दों के द्वारा। बहुत से लोग गुर्दों का काम बढ़ा देते हैं। जिससे उन्हें अपना और चमड़े का दोनों का काम करना पड़

जाता है; क्योंकि प्रकृति एक अवयव से दूना काम लेगी परन्तु काम को बिना कराये न रहेगी । चमड़े का प्रत्येक छिद्र उस नाली का छोर है जिसे चमड़े की नाली कहते हैं, और जो चमड़े के भीतर तक फैली रहती है । हमारे चमड़े के प्रत्येक वर्ग इंच में ऐसी ३००० छोटी नालियाँ होती हैं। वे लगातार एक द्रव बहाया करती हैं, जिसे पसीना और देह वाष्प कहते हैं, जो ऐसा द्रव होता है जो शरीर यन्त्र के मैल और रद्दियात से भरे हुए रुधिर में से निकलता है। आपको स्मरण होगा कि शरीर क्षण २ में पुराने निकम्मे रेशों को पृथक् करता रहता है और उनके स्थान पर नये रेशों को स्थापित करता रहता है; और इन पुरानी रद्दियात का दूर होना वैसा ही आवश्यक है जैसा घर के कूड़ा करकट का दूर होना जरूरी है । चमड़ा एक साधन है जिसके द्वारा यह दूर किया जाता है । यह मैल यदि शरीर ही में रहने दिया जाय तो यह रोगों के कीटाणुओं का वृद्धिस्थान हो जायगा; और इसीलिए प्रकृति इसे दूर बहाया चाहती है । चमड़े से एक रोग़नदार द्रव भी निकलता है जो चमड़े को कोमल और चिकना बनाये रहता है ।

स्वयम् चमड़ा भी अन्य अवयवों की भाँति अपनी बनावट में बड़ा परिवर्त्तन पाया करता है । बाहरी चमड़ा ऐसे देहाणुओं से बना है, जो बहुत अल्पायु हुआ करते हैं, और लगातार केंचुल की भाँति छूटा करते हैं और उनको स्थान के पूरा करने के लिय नये देहाणु नीचे से ऊपर आया करते हैं । ये निकम्मे और व्यक्त देहाणु चमड़े के ऊपर रद्दी पदार्थों की

एक प्रकार की तह बना देते हैं, यदि मल २ कर धो न डाले जायँ, इसमें सन्देह नहीं कि उनमें से अनेकों तो कपड़े की रगड़ खा २ कर गिर जाते और छूट जाते हैं; परन्तु बहुत बड़ा भाग रह जाता है; और उनके दूर करने के लिए नहाने धोने की आवश्यकता पड़ती है।

पानी के द्वारा शरीर के भीतरी अंगों की सिंचाई के अध्याय में हमने चमड़े के इन छिद्रों को खुले रखने की आवश्यकता दिखला दी है; और यह भी बतला दिया है कि यदि वे बन्द कर दिए जायँ तो मनुष्य शीघ्र ही मर जाय, जैसा कि पूर्वकाल की परीक्षाओं और घटनाओं से प्रमाणित होता है। यदि शरीर को धो कर साफ न किया जाय तो इन निकम्मे देहाणुओं, रोगन और पसीने से चमड़ों के छिद्र थोड़े बहुत बन्द हो जायँ और फिर चमड़े की सतह पर यह मैलापन रोगों के कीटाणुओं को निमंत्रण देने लगे कि वे वहाँ आ कर अपना घर बनावें और वृद्धि करें। स्नान न कर के क्या आप इन कीटाणुओं को न्योता दे रहे हैं ? हम ऊपर से आए हुए गर्दग़ुबार का वर्णन नहीं कर रहे हैं—हम जानते हैं कि उसको आप न लपेटे रहेंगे—परन्तु आप ने कभी भी अपने ही शरीर से निकले हुए इस मैल पर ध्यान दिया है ? जो वैसा ही मैल है जैसा ऊपरी मैल है और कभी २ उससे भी अधिक बुरा फल पैदा कर देता है।

प्रत्येक मनुष्य को कम से कम दिन में एक बार अपने सारे शरीर को धो डालना चाहिए। स्नान के लिए बहुत उपयुक्त समय सुबह सो कर उठने का है। भोजन करने के

ठीक पहले या पश्चात् कभी स्नान न करो। शाम को स्नान करना भी अच्छी बात है। स्नान करते समय मोटे कपड़े से शरीर को खूब रगड़ो, जिससे मुर्दा चमड़ा छूट जाया करेगा और रुधिरसंचार भी उत्तेजित होगा। जब शरीर ठंढा हो उस समय ठंढे पानी से कभी भी स्नान न करो। ठंढे पानी से स्नान करने के पहले कुछ कसरत कर के अपने शरीर को गरम कर लो तब स्नान करो। डुबकी मार कर स्नान करने में पहले सिर को भिगों कर तब छाती भिंगोओ और तब डुबकी लगाओ।

ठंढे पानी से स्नान करने के पश्चात् योगियों की रीति है कि शरीर को हाथों से कपड़े के स्थान पर खूब मलें और तब आंगे ही शरीर से सूखे कपड़े पहन लें। इससे जाड़ा अधिक मालूम होने के स्थान पर, जैसा कि कोई २ ख्याल करते हैं, उसके विपरीत गरमाहट मालूम होती है, और यदि थोड़ी सी हलकी कसरत कर लें तो यह गरमाहट और भी बढ़ जाती है। योगी लोग स्नान के पश्चात् प्रायः व्यायाम किया करते हैं। यह व्यायाम बहुत कड़ा नहीं होता; और ज्यों ही सारे शरीर में पूरी तमतमाहट आ गई कि बन्द कर दिया जाता है।

योगियों का प्यारा स्नान ठंढे पानी से होता है। वे सारे शरीर को हाथ से खूब मलते हैं, या पहले कपड़े से रगड़ कर पीछे हाथ से मलते हैं, और साथ ही साथ पूरी सांस लेने की क्रिया करते जाते हैं। सो कर उठने पर वे स्नान करते हैं और स्नान करने पर हलकी कसरत कर लेते हैं। जब बड़ी सर्दी पड़ती हो तब वे डुबकी लगा कर स्नान नहीं करते; परन्तु

कपड़े से पानी को शरीर पर लगा लेते हैं तब हाथ से खूब मलते हैं। ठंढ पानी से स्नान करने पर आश्चर्यजनक गर्मी आती है और ज्यों २ कपड़ा पहना जाता है त्यों २ औजस तमतमाहट मालूम होती है। इस योगियों की रीति से स्नान करने का यह परिणाम होता है कि शरीर बलवान् और हट्टाकट्टा हो जाता है, उसका मांस दृढ़ बलवान् और घना हो जाता है और ज़ुकाम तो प्रायः योगियों को अज्ञात ही हो जाता है। इस स्नान का अभ्यास करने वाला मनुष्य उस मजबूत और हट्टेकट्टे वृक्ष के समान हो जाता है जो अनेक प्रकार की गर्मी सर्दी के मौसिम को सहने में समर्थ होता है।

हम अपने शिष्यों को शुरू ही में अत्यन्त ठंढ पानी से स्नान करने में सावधान किये देते हैं। यदि तुम्हारे शरीर में जीवट की कमी हो तब तो कदापि ऐसा मत करो। पहले सुखकर शीतलता के पानी से शुरू करो तब दिनों के बीतने से ज्यों २ शरीर का जीवट बढ़ता जाय त्यों २ अधिक ठंढे पानी से स्नान किया करो। एक प्रकार की शीतलता या ताप का जल तुम्हें अत्यन्त सुखकर प्रतीत होगा, बस उसी को याद कर लो और वैसे ही जल से स्नान किया करो। सबेरे के ठंढे पानी से स्नान करना तुम्हें सुखकर होना चाहिये न कि प्रायश्चित्त की भांति दुःखकर। जब आप को एक बार उसका मज़ा मालूम हो जायगा फिर आप उसको न छोड़ेंगे। इससे आप दिन भर अच्छी तरह रहेंगे। पहले ठंढा जल शरीर पर डालते बहुत सर्दी मालूम होती है पर थोड़े ही अर्से में प्रति-

क्रिया प्रारंभ हो जाती है और गरमाहट मालूम होने लगती है। यदि आप टब में स्नान करते हों तो एक मिनट से अधिक टब में कभी न ठहरें, और जब तक टब में रहें शरीर को खूब मलते रहें।

यदि आप सवेरे इस प्रकार स्नान करते रहेंगे तो आप को बहुत से गरम स्नानों की आवश्यकता न होगी। कभी गरम पानी से स्नान कर लेना अच्छा होगा। गरम पानी से स्नान करने में बदन को खूब मलते रहिए और चमड़े को कपड़े से खूब सुखा कर तब कपड़े पहनिए।

वे मनुष्य जिन्हें दिन को बहुत चलना या खड़े रहना पड़ा हो उन्हें रात को सोने के पहले पैरों को धो डालने से अच्छा सुख मिलेगा और रात को खूब नींद आवेगी।

अब ज्यों ही आप इस अध्याय को पढ़ जायँ त्योंही भुलवा न दें। परन्तु जो तरकीबें इसमें बताई गई हैं उनकी परीक्षा कीजिए और देखिए कि उनसे कितना लाभ होता है। जब थोड़े दिन आप इसकी परीक्षा कर लेंगे फिर इसे कभी न छोड़ेंगे।

योगियों का सवेरे का स्नान।

सवेरे के स्नान से सर्वोत्तम लाभ उठाने की भावना आप को नीचे लिखी हुई तरकीब से होगी। यह बहुत बल देने वाली, शक्ति बढ़ाने वाली तरकीब है जिससे आप दिन भर सुखी रहेंगे।

पहले इसमें थोड़ी कसरत कर लेनी होती है, जिससे

रुधिरसंचार अच्छा होने लगता है और रात के सोने के बाद प्राण अच्छी तरह से शरीर में वितरित हो जाता है, जिससे शरीर स्नान करने के और उसके लाभों को पूरी तरह से उठाने के योग्य बन जाता है।

प्रारम्भिक व्यायाम:- १) सीधे जंगी स्थिति में खड़े हो, सिर ऊंचा, आंखें सामने, कंधे पीछे, और हाथ बगलों में हों। (२) शरीर को धीरे २ पैर की अंगुलियों पर उठाओ, साथ ही साथ धीरे २ पूरी सांस खींचते जाओ। (३) सांस को भीतर ही कुछ क्षण तक रोक रक्खो और शरीर को उतने समय तक उसी स्थिति में रक्खो। (४) धीरे २ पहली स्थिति में आओ और साथ ही साथ नाक द्वारा हवा को भी धीरे धीरे निकालते जाओ। (५) साफ़ करने वाली क्रिया कर डालो। (६) इसे कई बार करो; एक बार एक टांग से तब दूसरी से।

तब पहली कही हुई तरकीब से स्नान करो। यदि तुम कपड़े के द्वारा स्नान किया चाहते हो तो एक बर्तन में शीतल जल लेलो। (जो बहुत सर्द न हो परन्तु सुखकर और उतना ही शीतल हो कि प्रतिक्रिया ला सके।) एक मोटा कपड़ा या तौलिया लो, उसे पानी में भिगोओ, और तब उसका आधा पानी निचोड़ डालो। पहले छाती और कंधों से शुरू करके पीठ, पेट, जांघ, निचली टांगें और तब पैरों को खूब जोर से रगड़ो। शरीर को चारों ओर से रगड़ने में कपड़े को कई बार पानी में डुबो डुबो कर आधा निचोड़ लिया करो, जिससे सारे शरीर को ताजा ठंढा पानी मिल जाया करे।

क्षणभर ठहर जाओ और पूरी पूरी दो एक सांसें लेलो; फिर मलने लगो। बहुत जल्दी मत करो, किन्तु शान्ति से स्नान करो। पहले दो एक बार ठंढे पानी से शरीर थोड़ा डरेगा, परन्तु बहुत शीघ्र आदत पड़ जायगी; और तुम्हें अच्छा मालूम होने लगेगा। बहुत ठंढे पानी से स्नान प्रारम्भ करने की गलती मत करो। परन्तु धीरे धीरे शीतलता कई दिनों में बढ़ाओ। यदि कपड़े से स्नान करने के स्थान पर टब में स्नान करना पसन्द करते हो तो वैसे ही पानी से टब को आधा भर लो और जब तक शरीर को मलते रहो घुटनों के बल उसमें बैठे रहो, तब क्षणभर सारे शरीर को उसमें डुबोये रहो और तब एकदम बाहर आजाओ।

चाहे कपड़े से स्नान करते हो चाहे टब में, शरीर को कई बार बहुत अच्छी तरह से हाथों से मलो। मनुष्य के हाथों में कुछ ऐसी शक्ति है जिसका काम कपड़े से नहीं निकल सकता। एक बार परीक्षा कर लीजिए। शरीर थोड़ा थोड़ा भींगा ही रहे तभी कपड़े पहन लो, तब जो विचित्र सुख मिलेगा उसका अनुभव करके तुम्हें बड़ा आश्चर्य होगा। पानी से सर्दी मालूम पड़ने के स्थान पर सारे शरीर में कपड़ों के नीचे गर्मी आ जायगी। स्नान के पश्चात् नीचे लिखी हुई कसरत कर डालो।

(१) सीधे खड़े हो, अपनी भुजाओं को अपने सामने सीधे फैलाओ और उन्हें कन्धों की ऊँचाई पर रक्खो, मुट्ठियाँ बँधी और एक दूसरों को छूती हों; मुट्ठियों को ज़ोर से झोका देकर पीछे बग़लों की सीध में या उससे भी तनिक पीछे

लाओ; इससे छाती का ऊपरी भाग फैलता है; इसे कई बार करके क्षण भर विश्राम कर लो; (२) पहली स्थिति की अन्तिम दशा में आजाओ, अर्थात् भुजाएँ बग़लों की ओर कन्धों से सीधी फैली रहें; अब मुट्ठियों को एक वृत्त में घुमाओ, आगे से पीछे को, तब पीछे से आगे को; तब बारी २ से दोनों मुट्ठियों को वायुचक्की की भुजाओं की भाँति घुमाओ; इसे कईवार करो। (३) सीधे खड़े हो और हाथों को सिर के ऊपर सीधे ले जाओ, हाथ खुले रहें, अँगूठे एक दूसरे को छूते रहें, तब विना घुटनों को टेढ़ा किए भूमि को अँगुलियों के छोरों से स्पर्श करने का यत्न करो—यदि तुम न छू सको तो यत्न तो पूरा करो; पहली स्थिति में आजाओ। (४) अपने को पैरों के पञ्जों पर ऊपर उठाओ, इसे कईवार करो। (५) खड़े होकर अपने पैरों को दो फ़ीट के फ़ासिले पर रक्खो, तब धीरे २ बैठने की स्थिति में नीचे दबो और फिर पहली स्थिति में आजाओ। इसे कईवार करो। (६) पहली कसरत को कईबार करो। (७) साफ़ करने वाली क्रिया करके ख़तम कर डालो।

यह कसरत उतनी टेढ़ी नहीं है जितनी पहले पाठ में मालूम देती है। यह ५ कसरतों का पञ्चमेल है जो बहुत सादा और सरल है। इसके एक २ खण्ड को समझ कर अभ्यास कीजिए और एक २ को सिद्ध कर लीजिए; तब सब को मिला दीजिए। तब यह घड़ी की भाँति चलने लगेगी और थोड़े ही क्षणों में पूरी कसरत हो जावेगी। यह बहुत बल बढ़ाने वाली है, इससे सारा शरीर काम में आ जाता है;

और यदि स्नान के ठीक बाद इस कसरत को आप करते रहेंगे तो नया शरीर मिल जाने का सुख भोगेंगे।

शरीर के ऊपरी भाग को खूब मल २ कर धो डालने से दिन भर शक्ति और जीवट बने रहते हैं; रात को कमर से नीचे पैर तक मल २ कर धो डालने से रात को नींद खूब आती है और शरीर ताजा हो जाता है।

सत्ताईसवाँ अध्याय।

सूर्य की शक्ति।

हमारे शिष्य लोग कुछ न कुछ ज्योतिष के प्रारम्भिक वैज्ञानिक मूलतत्त्वों से परिचित होंगे। अर्थात् सृष्टि के उस अत्यन्त छोटे खण्ड का कुछ ज्ञान पाए होंगे, जिसका हम अपनी आँखों से उत्तम से उत्तम दूरबीन यन्त्र के द्वारा, ज्ञान प्राप्त करते हैं, और जिसमें करोड़ों तो स्थिर तारे हैं—जो सबके सब सूर्य हैं; जो हमारे सूर्य के बराबर और कोई २ तो इससे बहुत बड़े हैं। प्रत्येक सूर्य अपने सम्प्रदाय भर के ग्रहों, उपग्रहों आदि की शक्ति का केन्द्र है। हमारे ग्रह-सम्प्रदाय के लिये शक्ति देनेवाला बड़ा केन्द्र हमारा सूर्य है। हमारे ग्रह सम्प्रदाय में बहुत से तो जाने हुए ग्रह हैं और बहुत से ऐसे भी ग्रह हैं जिनका ज्योतिषियों को पता भी नहीं है। यह भूमि, जिस पर हम स्थित हैं, हमारे सूर्य के अनेक ग्रहों में से एक ग्रह है।

हमारा सूर्य, अन्य सूर्यों की भाँति आकाश में लगातार शक्ति छोड़ रहा है; यही शक्ति ग्रहों को जीवट देती है और उन पर जीवन सम्भव कर देती है। सूर्य की किरणों के बिना भूमि पर जीवन असम्भव हो जाता—तुच्छातितुच्छ जीव भी न जी सकते। हम सब लोग जीवट—जीवन बल—के लिये सूर्य पर अवलम्बित हैं। यह जीवट जीवनबल या शक्ति वही पदार्थ है जिसे योगी लोग प्राण करके जानते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि प्राण सर्वव्यापक है; परन्तु कुछ ऐसे केन्द्र हुआ करते हैं, जो प्राण को खींचा और छोड़ा करते हैं—मानो एक स्थायी धारा बहाया करते हैं। विद्युत् शक्ति सर्वव्यापक है; परन्तु डिनामो (dynamos) और ऐसे ही अन्य केन्द्र आवश्यक होते हैं कि उसे संग्रह करें और घनीभूत बना कर प्रवाहित करें। सूर्य और उसके ग्रहों के मध्य में प्राण की अनवरत धारा जारी रहती है।

यह बात मान ली गई है (आधुनिक विज्ञान भी इसमें प्रतिवाद नहीं करता) कि सूर्य जलती हुई आग की ढेरी है, एक प्रकार की जलती हुई भट्ठी है, और जो रोशनी और गरमी हम प्राप्त करते हैं वे इसी भट्टी की ज्योति हैं। परन्तु योगशास्त्रियों ने इसे भिन्न ही माना है। वे यह सिखाते हैं कि यद्यपि सूर्य का संगठन अथवा वहां की दशा हम लोगों की इस भूमि की दशा से इतनी भिन्न है कि मनुष्य का मन उस दशा की ठीक भावना भी नहीं कर सकता, तथापि सूर्य जलते हुए द्रव्य की वैसी ढेरी नहीं है जैसी जलते हुए कोयले या गले हुए लोहे की ढेरियां हुआ करती हैं। योगी आचार्य लोग इन भावनाओं को स्वीकार नहीं करते। इसके विपरीत उनकी यह धारणा है कि सूर्य अधिकांश उन द्रव्यों से बना है जो हाल के आविष्कृत "रेडियम" के समान हैं। वे यह नहीं कहते कि सूर्य रेडियम ही से बना है, परन्तु वे शताब्दियों से यही समझते आते हैं कि वह अनेकों ऐसे द्रव्यों से बना है, जिसके विषय में पश्चिमी संसार इतना सोच विचार कर रहा है, और जिसको उसके आविष्कारों ने रेडियम नाम

दिया है। हम यहां रेडियम का वर्णन नहीं करना चाहते, परन्तु केवल इतना ही कह देते हैं कि यह उन्हीं गुणों और शक्तियों से युक्त है जिन गुणों और शक्तियों से सूर्य के बनाने वाले अवयव भी थोड़े बहुत युक्त हैं। यह बात बहुत सम्भव है कि सूर्य के बनाने वाले अन्य अवयव भी इस पृथ्वी पर पाये जायँ जो रेडियम की समता रखते हों और कुछ २ अंशों में उससे भिन्न भी हों।

यह सौर्य द्रव्य गली हुई दशा में नहीं है, और न तो जलती हुई दशा में ही है जैसा कि हम लोग अक्सर कहा करते हैं। परन्तु वह सर्वदा अपने ग्रहों से प्राण की धार खींचा करता है, और उस प्राण को प्रकृति की किसी आश्चर्यमय प्रक्रिया में पका कर फिर ग्रहों पर वापसी धारा द्वारा भेजा करता है। जैसा कि हमारे शिष्य लोग जानते हैं, हवा ही मूल भंडार है जहां से हम लोग प्राण खींचा करते हैं, परन्तु यह हवा स्वयम् सूर्य से प्राण ग्रहण करती है। हम बतला आए हैं कि जिस भोजन को हम खाते हैं, वह कैसे प्राण से भरपूर रहता है, जिसे हम लेकर अपने काम में लाते हैं; परन्तु पौधे अपना प्राण सूर्य से ग्रहण करते हैं। इस सूर्यमडण्ल या सूर्य-सम्प्रदाय के लिये सूर्य ही प्राण का महा भण्डार है जो एक बृहत् डिनामो की भांति अपनी धाराओं को इस सूर्य सम्प्रदाय के प्रत्येक छोरों तक सर्वदा भेजा करता है और जीवन को, शारीरिक जीवन को, सम्भव बनाए है।

यह किताब वह स्थान नहीं है जहां सूर्य की क्रियाओं की आश्चर्यजनक बातों का वर्णन किया जाय। योगी लोग

इन बातों को अच्छी तरह जानते हैं। हम यहां पर अपने शिष्यों को केवल इतना ही बतला दिया चाहते हैं कि वे समझ जायँ कि सूर्य ही प्राण का आदि भंडार है और वही सब प्राणियों के जीवन का मूल है। इस अध्याय का मुख्य उद्देश यही है कि आप के चित्त पर विठाल दिया जाय कि सूर्य की किरणें शक्ति और जीवन से भरी हुई रहती हैं, जिन्हें हम अपने जीवन के प्रत्येक क्षण काम में लाया करते हैं, परन्तु हम उतना काम में नहीं लाते जितना ला सकते थे। आजकल के सभ्य मनुष्य सूर्य से भय खाते हुए मालूम देते हैं। वे अपने कमरों को अंधेरा बना देते हैं, अपने शरीर पर अनेक कपड़े पहन लेते हैं कि जिसमें सूर्य की किरणों से बचे रहें। वे सूर्य की किरणों से दूर भागते हैं। ठीक यहां ही स्मरण रखिए कि जब हम सूर्य की किरणों की बात कर रहे हैं तो सूर्य की गर्मी से हमारा मतलब नहीं है। गर्मी तो सूर्य की किरणों को पृथ्वी के पदार्थों के सम्पर्क में आने से उत्पन्न होती है; पृथ्वी के वायु मण्डल के बाहर ग्रहों के बीच का जो आकाश है, वहां बहुत कड़ी सर्दी पड़ती है क्योंकि वहां सूर्य की किरणों को अवरोध देने वाला कोई पदार्थ ही नहीं है। इसलिये जब हम कहते हैं कि सूर्य की किरणों का लाभ उठाइए तो हमारा मतलब यह नहीं है कि जेठ की दुपहरी में आप बाहर बैठिए।

सूर्य की किरणों से दूर भागने की आदत छोड़िए। अपनी कोठारियों में धूप आने दीजिए। अपने वस्त्रों और बिछौनों से इतना मत डरिये। अपने उत्तम दालान को

सर्वदा बन्द मत रखिए। आप अपनी कोठरी को ऐसा तहखाना नहीं बनाना चाहते कि जिसमें सूर्य की धूपही न जाय, हम ऐसा ही ख्याल करते हैं। सुबह होते ही अपनी खिड़कियों को खोल दीजिए कि धूप सीधे या परावर्त्तित होकर कोठरी में आजाय तो आप को ऐसा वायुमण्डल मिल जाया करेगा कि शनैः २ आप के घर में स्वास्थ्य बल और जीवट भर जायँगे और रोग, निर्बलता और निर्जीवता भाग जायँगी-ईश्वर का प्रवेश होगा और दरिद्र निकल भगेगा।

थोड़े २ समय पर धूप खा लिया कीजिए। सड़क की धूप वाली बग़ल को मत छोड़िए। हां, जब बहुत ही ज्यादा गरम मौसिम हो या दुपहरी हो उस वक्त आप धूपवाली बग़ल से बचने का यत्न कर सकते हैं। कभी २ घाम से स्नान किया कीजिए। सूर्योदय से पहले ही जग जाइए और धूप में खड़े हो, बैठ या लेट जाइए कि आप का सारा शरीर ताज़ा होजाय। यदि आप को अवसर मिले तो आप शरीर के सब वस्त्रों को उतार कर बिना वस्त्र की बाधा के घाम खा लिया कीजिये। यदि आप ने इसकी परीक्षा कभी नहीं की है तो आप कैसे विश्वास करेंगे कि घाम खाने में कितना गुण है और घाम खाने के पश्चात् कितना बल मालूम देने लगता है ? इस विषय को बिना विचारे मत छोड़ जाइए। सूर्य की किरणों की थोड़ी परीक्षा कर लीजिए और सूर्य से निःसृत निर्बाध प्राण की धार का कुछ लाभ उठा लिया कीजिए। यदि शरीर के किसी भाग में कोई विशेष निर्बलता हो तो उस भाग पर सीधी धूप लगने से आप को बहुत लाभ प्रतीत होगा।

प्रातःकाल की सूर्य की किरणें अत्यन्त लाभदायक होती हैं; और जिनकी आदत सबेरे जगने और इन किरणों से लाभ उठाने की पड़ गई है उन्हें बड़भागी समझना चाहिए और वे बधाई के योग्य हैं। पांच घंटा दिन चढ़ जाने के बाद किरणों की प्राणदायिनी शक्ति घटने लगती है और शाम तक क्रमशः घटती ही जाती है। आप ख्याल करेंगे कि फल की वे क्यारियाँ या गमले, जिन्हें प्रातःकाल की धूप मिलती है, उनकी अपेक्षा जिन्हें दोपहर के बाद की धूप मिलती है, अधिक हरे भरे और सुखी रहते हैं। फूल के सब प्रेमी इस बात को समझते हैं कि सूर्य की धूप पौधों के लिए उतनी ही आवश्यक है जितना पानी, हवा और अच्छी मिट्टी आवश्यक हैं। थोड़ा पौधों का अध्ययन कीजिए-प्रकृति के मार्ग पर आ जाइए और वहां अपना सबक़ पढ़िये, धूप और हवा पुष्टि की आश्चर्यजनक औषधि हैं—आप क्यों और अधिक स्वच्छन्दता से इनका व्यवहार नहीं करते?

इस किताब में अन्यत्र हमने हवा, भोजन, पानी आदि से अधिक प्राण ग्रहण करने वाली मन की शक्ति के विषय में बहुत कुछ कहा है। वही बात सूर्य की किरणों से भी प्राण ग्रहण करने में लगती है। आप उचित मानसिक स्थिति द्वारा लाभ को अधिक बढ़ा सकते हैं। सबेरे की धूप में बाहर निकल जाइए-सिर को ऊंचा कर लीजिए, कंधों को पीछे खींच लीजिए, और उस हवा की पूरी सांस लीजिए जो सूर्य की किरणों द्वारा प्राण से भरी जा रही है। अपने शरीर पर धूप पड़ने दीजिए और तब लिखे हुए मंत्र या ऐसे ही अन्य

मंत्र को जपते हुए मंत्र में कही वातों की मानसिक कल्पना करते जाइए । मंत्र यह है :—"मैं प्रकृति की सुन्दर धूप का स्नान कर रहा हूँ–मैं उसमें से जीवन, स्वास्थ्य, वल और जीवट ग्रहण कर रहा हूँ । वह मुझे वलवान और शक्तिमान बना रही है । मैं प्राण की अन्तर्गामी धार का अनुभव कर रहा हूँ– मैं अनुभव करता हूँ कि वह धार हमारे शरीर में सिर से पैर तक सर्वत्र दौड़ रही है और सारे शरीर को वलवान् वना रही है । मैं सूर्य की धूप को चाहता हूँ और उसके सब लाभों को ग्रहण करता हूँ । "

जब २ आप को अवसर मिले इसका अभ्यास कर लिया कीजिए और तव आप को क्रमशः मालूम होने लगेगा कि इतने दिनों तक आप ने कैसी अच्छी चीज़ से लाभ उठाना छोड़ दिया था कि आप धूप से भागते थे । अनुचित रीति से दुपहरी की धूप गरम दिनों में मत खाओ । परन्तु चाहे जाड़ा हो या गरमी, सवेरे की धूप कुछ भी हानि न करेगी । सूर्य की धूप और उसके सब गुणों को प्रेम से चाहना करो ।

अट्ठाईसवाँ अध्याय ।

ताज़ी हवा ।

अब इस अध्याय को छोड़ मत जाइए कि इसमें वही साधारण विषय होगा। यदि आप की इच्छा इसे छोड़ जाने की होती हो तो आप ही वैसे मनुष्य हैं जिनके लिये यह अध्याय अभीष्ट और अत्यन्त आवश्यक है। जिन लोगों ने इस बात पर ग़ौर किया है और ताज़ी हवा के लाभ और आवश्यकता को कुछ २ समझ लिया है, वे इस अध्याय को कभी न छोड़ जायँगे, वे उस अच्छी बात को फिर पढ़ना चाहेंगे और यदि आप इस विषय को पसन्द नहीं करते और इसको छोड़ जाना चाहते हैं, तब निश्चय आप को इस की आवश्यकता है। इस किताब के अन्य अध्यायों में हमने सांस लेने की प्रधानता को—आभ्यन्तरिक और बाह्य दोनों पटलों में—दिखलाया है। इस अध्याय में सांस लेने का विषय फिर न उठाया जायगा, परन्तु ताज़ी हवा और पुष्कल हवा के विषय में थोड़ा उपदेश दे दिया जायगा। यह उपदेश हमारे देश के लिए अत्यन्त आवश्यक है जहां अब बन्द कोठरियों और ऐसे घरों का रिवाज है कि जिनमें पवन का भी प्रवेश न होने पावे। हमने आप लोगों को सही सांस लेने की प्रधानता को दिखा दिया है, परन्तु वह पाठ आप को क्या लाभ पहुँचावेगा, जब सांस लेने के लिये अच्छी हवा ही न रहेगी।

वन्द कोठरियों में जहां अच्छी तरह हवा का आवा-गमन नहीं है, वन्द रहना अत्यन्त मूर्खता का ख्याल है। फेफड़ों की क्रियाओं और कर्तव्यों को जानकर भी मनुष्य वन्द घर की गन्दी हवा को शत्रु न समझे यह बड़े आश्चर्य की वात है। इस विषय पर आइए थोड़ा साधारण सीधा विचार कर लें।

आप को स्मरण होगा कि फेफड़े सर्वदा शरीर यंत्र के रद्दियात और निकम्मे हानिकारक पदार्थों को फेंका करते हैं। सांस शरीर को साफ करनेवाली चीज़ है जो निकम्मे द्रव्यों, रद्दी पदार्थों और मृत देहाणुओं को शरीर के प्रत्येक अंग से निकाल कर फेंका करती है। फेफड़ों से निकाले हुए पदार्थ उतने ही गंदे होते हैं जितना चमड़े के छिद्रों से निकाला हुआ पसीना, गुर्दों से निकाला हुआ मूत्र और मलाशय से निकाला हुआ मैला, गंदे हुआ करते हैं। सच वात तो यह है कि यदि शरीर यंत्र में पानी काफ़ी न पहुँचाया जाय तो प्रकृति फेफड़ों से गुर्दों का काम लेती है और शरीर के विषैले निकम्मे पदार्थों को फेफड़ों द्वारा वाहर फेंकवाती है। यदि अंतड़ियाँ सिट्टी और फुजलों को ठीक तरह से नहीं निकाल वाहर करतीं तो मलाशय की बहुत सी चीज़ें शरीर में ऊपर चढ़ जाती हैं और वाहर निकलने की राह ढूँढ़ने लगती हैं कि फेफड़े उन्हें लेकर सांस द्वारा वाहर फेंक देते हैं। तनिक विचार तो कीजिए कि यदि आप बन्द घर में अपने को बन्द कर के सोवेंगे तो आप प्रत्येक घंटे में आठ गैलन कारवोनिक एसिड गैस और अन्य गन्दे

पदार्थ उस कोठरी के वायु मंडल में मिलाते रहेंगे । आठ घंटे में आप ६४ गैलन छोड़ेंगे । यदि उस कोठरी में दो आदमी सोते हों तो गैलनों को दो से गुणा कर दीजिए। ज्यों ज्यों कोठरी की हवा गन्दी होती जाती है त्यों २ आप बार २ उसी गन्दी और विषैली हवा को साँस द्वारा खींचते जाते हैं और हवा का गुण प्रत्येक साँस में अधिक २ बिगड़ता जाता है। सवेरे जब कोई मनुष्य आप की कोठरी में आता है और उसे दुर्गंधि मालूम होती है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है, क्यों कि आप तो खिड़की भी बन्द कर दिये थे। इस प्रकार के भ्रष्ट कमरे में रात भर सोने के पश्चात् यदि सवेरे आप उदास, चिड़चिड़े, ज्ञान हीन, झगड़ालू और हर तरह से निकम्मे मालूम हों तो इसमें क्या आश्चर्य है।

आप ने कभी सोचा भी है कि आप सोते किस लिए हैं ? आप इस लिये सोते हैं कि प्रकृति को अवसर मिले कि दिन भर में जो कुछ शरीर यंत्र में छीजन हुई है रात को उसकी मरम्मत हो जावे। आप उसकी शक्तियों का व्यवहार करना छोड़ देते हैं और उसे अवसर देते हैं कि वह आप के शरीर-यंत्र की ऐसी मरम्मत कर दे और बना दे कि आप सवेरे फिर हर तरह से ठीक हो जाँय। इस काम को अच्छी तरह से करने के लिए उसे कम से कम मामूली भी दशा तो चाहिए। वह तो आशा करती है कि उसको ऐसी हवा मिलनी चाहिए जिसमें आक्सीजन की उचित मात्रा हो—ऐसी हवा हो जो पिछले दिन धूप खाकर फिर प्राण से भरपूर हो गई हो। ऐसी हवा के स्थान में आप बहुत ही परिमित हवा देते

हैं, जो आधी तो शरीर की भीतरी रद्दियात के मिलने से विषमय हो जाती है। ऐसी दशा में रात को सोने पर भी आप के शरीर यंत्र की पूरी मरम्मत न हो सके तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

जिस कोठरी से वैसी दुर्गंध आती हो जैसी हवा के अच्छे आवागमन से ही न सोने वाली कोठरी से आया करती है, वह कोठरी तब तक आप के सोने के योग्य नहीं है जब तक उसकी सब हवा निकल कर उसके स्थान में स्वच्छ ताज़ी हवा न भर जाय। सोने के कमरे की हवा को उतना ही साफ़ और ताज़ी होना चाहिये जितना बाहर मैदान की हवा स्वच्छ और ताज़ी हुआ करती है। सर्दी खाजाने का भय न कीजिए। स्मरण रखिए कि क्षयी रोग के लिये अत्यन्त अर्वाचीन वैज्ञानिक औषधि यह निश्चित हुई है कि रात को रोगी ताज़ी हवा में रक्खा जाय, इस बात की कुछ परवाह नहीं कि सर्दी कितनी है। खूब ओढ़न रखिए; और जब आप को आदत पड़ जायगी तो सर्दी मालूम भी न पड़ेगी। प्रकृति के मार्ग पर वापस आइए। ताज़ी हवा का यह मतलब नहीं है कि आप आँधी या हवा के झोकों में सोते रहें।

जो बात सोने के कमरे के लिये ठीक बतलाई गई है वही बात रहने और दफ्तर के कमरों के लिये भी ठीक है। यह सच है कि जाड़ों में कोई बाहरी हवा को अन्दर अधिक न जाने देगा, क्योंकि उससे कमरे की हवा अत्यधिक सर्द हो जावेगी; परन्तु सर्द आबोहवा में भी हवा को स्वच्छ रखने के लिए बहुत उपाय हो सकते हैं। थोड़े थोड़े अर्से पर

खिड़की खोल दिया कीजिए कि हवा को अवसर मिल जाय कि वह अच्छी तरह आ जाय। रात में इस बात को न भूलिए कि लैम्प और गैस की रोशनी भी आक्सीजन खर्च कर रहे हैं। इस लिये थोड़े थोड़े अर्से पर सब बातों को ताज़ा कर दिया कीजिए। बिहतर तो यह होगा कि हवा की सफ़ाई के बारे में कोई अच्छी किताब पढ़ डालिए; परन्तु यदि यह न हो सके तो जितना हम कह आए हैं उतने ही का खूब स्मरण रखिए तो आप की साधारण बुद्धि शेष सब कार्य कर देगी।

प्रति दिन बाहर निकल जाया करो और ताज़ी हवा शरीर पर लगने दो। ताज़ी हवा जीवन दायक और स्वास्थ्य-कर गुणों से भरी रहती है। इस बात को आप सब लोग जानते हैं और ज़िन्दगी भर जानते आए हैं। परन्तु उसपर भी आप लोग घर के भीतर ही पड़े रहते हैं, जो बात प्रकृति के उद्देश के बिलकुल विपरीत है। यदि आप भले चंगे नहीं रहते तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? प्रकृति का नियम तोड़ कर कोई दंड पाए बिना नहीं रह सकता। हवा से डरिए मत। प्रकृति का उद्देश है कि आप हवा का व्यवहार करें—वह आप की प्रकृति और आवश्यकताओं के अनुकूल है। इस लिए उससे डरिये मत; किन्तु उसकी चाहना कीजिए। जब आप बाहर जायँ और ताज़ी हवा में टहलें तो मन ही मन ऐसा कहें:—"मैं प्रकृति का बच्चा हूँ—उसने मुझे ऐसी पवित्र हवा काम में लाने के लिए दी है जिससे मैं बलवान और अच्छा हो जाऊँ और वैसा ही बना रहूँ। मैं सांस के द्वारा स्वास्थ्य, बल और शक्ति भीतर खींच रहा हूं। मैं अपने शरीर

पर लगती हुई हवा के सुख को भोग रहा हूं और मैं उसके लाभकर फलों को अनुभव कर रहा हूँ। मैं प्रकृति का बच्चा हूं और उसके दिए हुए पदार्थों में सुख भोगता हूं।" हवा का सुख भोगना सीखिये फिर आप सुखी हो जावेंगे।

उन्तीसवाँ अध्याय ।

निद्रा क्षति को स्वाभाविक पूरा करने वाली है ।

प्रकृति की उन वृत्तियों में, जो मनुष्यों के जानने के योग्य है निद्रा ऐसी सहज और सरल वृत्ति मालूम होती है कि इसके लिये किसी शिक्षा या सलाह देने की आवश्यकता न होनी चाहती थी । बच्चे को निद्रा की प्रधानता और आवश्यकता जानने के लिये टीकाटिप्पणी सहित किसी किताब की आवश्यकता नहीं होती–वह सो ही जाता है, बस मामला खतम है । युवा मनुष्य की भी, यदि वह प्रकृति के पथ पर रहता तो, यही दशा होती । परन्तु यह तो ऐसे बनावटी घिरावों से घिर गया है कि इसके लिए प्राकृतिक जीवन जीना असम्भव सा होगया है । परन्तु यह भी अनाहित घिरावों के होते हुए भी, पुनरपि प्राकृतिक मार्ग पर आजाने में बहुत कुछ कर सकता है ।

प्रकृति के विरुद्ध मूर्खता की आदतों में, इसके सोने और जागने की आदतें अत्यन्त बुरी हो गई हैं । वह उन घड़ियों को, जिन्हें प्रकृति ने भली भांति सोने के लिये दिया है, जोश और सामाजिक आमोद प्रमोद में व्यर्थ खो देता है; और उन घड़ियों पहरों में सोता है, जिन्हें प्रकृति ने उसे जीवट और शक्ति ग्रहण करने के लिये दिया था । उत्तम से उत्तम निद्रा सूर्यास्त और आधी रात के बीच के समय में हुआ करती है; और उत्तम से उत्तम समय, बाहरी काम करने

और जीवट ग्रहण करने के लिए प्रातःकाल के कुछ घंटे हुआ करते हैं। इस प्रकार हम दोनों ओर खोते हैं और उस पर भी आश्चर्य करते हैं कि क्यों जवानी ही में या उससे भी पहले स्वास्थ्य बिगड़ गया।

नींद की दशा में प्रकृति मरम्मत का कार्य करती है और यह बात अत्यन्त आवश्यक है कि इसके लिए उसे उचित अवसर दिया जाय। हम सोने के विषय में नियमावली बनाने की चेष्टा नहीं करेंगे, क्यों कि भिन्न २ मनुष्यों की भिन्न २ आवश्यकताएँ हुआ करती हैं; यह अध्याय कुछ थोड़ासा दिग्दर्शन के लिये दे दिया गया है। साधारण रीति से प्रकृति ८ घंटा नींद के लिये चाहती है।

सर्वदा हवा के भली भांति से आने जाने वाली खुली कोठरी में सोया कीजिए जैसा कि ताज़ी हवा वाले अध्याय में वर्णन किया गया है। ओढ़न काफ़ी ओढ़ लीजिए कि जिसमें सुख रहे; परंतु बहुत ही भारी ओढ़नों के नीचे दफ़न मत हो जाइये, जैसा कि बहुत से घरों में दस्तूर हुआ करता है। यह अधिकतर आदत डालने का मामला है। आप जितने भारी भारी ओढ़न ओढ़ते हैं उनकी अपेक्षा हलके ओढ़नों से भी अच्छी तरह काम चलता हुआ देख कर आप आश्चर्य में आ जायँगे। जिन कपड़ों को आप दिन में पहने थे उन्हीं को पहने हुए रात को कभी मत जाइये—यह आदत न तो स्वास्थ्य दायक है और न सफ़ाई ही की है। सिर के नीचे बहुत सी तकियाओं का व्यवहार मत कीजिए—एक हलकी सी छोटी तकिया काफ़ी है। शरीर की प्रत्येक माँस पेशी को ढीला कर

दीजिए और प्रत्येक नाड़ी में से तनाव खींच लीजिए और ज्योंही ओढ़न ओढ़िए सब तनावों और खिचावों से हट कर निष्क्रिय होकर पड़ जाइए। लेटने पर दिन के कार्यों की आलोचना मत किया कीजिए। यदि आप इस नियम के अनुकूल चलेंगे तो तन्दुरुस्त बच्चे की भाँति झट सो जायँगे। सोते हुए बच्चों को गौर से देखिये कि वह सोते समय कैसे सो जाता है और उसी का अनुकरण कीजिए। जब आप सोने जाइए तो आप भी बच्चा हो जाइए और बचपन ही की वेदनाओं को धारण कर लीजिए फिर आप भी बच्चे ही की भाँति सो जाया करेंगे। केवल इतना ही उपदेश एक सुन्दर जिल्द वाली किताब में छापने के योग्य है क्योंकि यदि इस उपदेश का अनुसरण किया जाय तो मानव समाज बहुत कुछ उन्नत हो जाय।

यदि किसी मनुष्य को मानव की वास्तविक प्रकृति का ज्ञान प्राप्त हो जाय और यह विदित हो जाय कि सृष्टि में उसका पद क्या है तो वह बच्चे ही की भाँति विश्राम में निमग्न हो जाय। वह सृष्टि में अपने को निर्द्वन्द्व समझता है और विश्व के शासन करने वाली शक्ति में इतना विश्वास और भरोसा रखता है कि वह बच्चे की भाँति अपने शरीर को ढीला कर देता है और अपने मन पर से तनाव को खींच लेता है और क्रमशः विश्राममय नींद में निमग्न हो जाता है।

उन मनुष्यों के लिए, जो नींद न आने के कारण दुखी रहा करते हैं, नींद बुलाने के लिए हम कोई विशेष नियम न देंगे। हमारा विश्वास है कि यदि वे विचारयुक्त और प्राकृ-

तिक जीवन की तरकीवों का अनुसरण करेंगे तो वे, विना किसी खास सलाह के पाये ही स्वभाव ही से आप से आप सो जाया करेंगे। परन्तु यहां पर उन लोगों के लिए, जो साधन कर रहे हैं, दो एक बातों का कह देना अच्छा ही होगा। सोने के पहले टांगों और पैरों को ठंडे पानी से धो डालने से नींद आती है। मन को अपने चरणों पर एकाग्र करने से भी बहुतों को अच्छा लाभ होता है क्योंकि रुधिर का प्रवाह चरणों ही की ओर अधिक झुक जाता है और मस्तिष्क को विश्राम मिल जाता है। सब के ऊपर यह बात है कि नींद बुलाने की कोशिश कभी मत कीजिए; यह सोने की इच्छा रखने वाले के लिए अत्यन्त बुरी बात है, क्योंकि इसका विपरीत ही फल होता है। यदि आप इसका ख्याल ही करें तो बेहतर तरकीब यह है कि आप ऐसी मानसिक स्थिति धारण कर लीजिए कि चाहे तुरत सो जायँ या न सो जायँ इसकी कुछ चिन्ता ही नहीं; यह देखिए कि शरीर और मन सब प्रकार से विना तनाव के ढीले तो होगए हैं, और आप सब प्रकार से सन्तुष्ट तो हैं। अपने को थका हुआ बच्चा कल्पना कर लीजिए कि आधा ऊँघते हुए विश्राम कर रहे हैं, न तो पूरा सो ही गए हैं और न पूरा जागते ही हैं, बस ऐसा ही कीजिए। बहुत रात तक चिन्ता मत करते रहिए कि अब भी नींद नहीं आई, केवल वर्तमान क्षण में सन्तुष्ट होकर निश्चिन्त हो जाइए और निष्क्रियता का सुख भोगिए।

शिथिली करण के अध्याय में जो कसरतें दी गई हैं

उनसे आप इच्छानुसार अपने को ढीला कर सकेंगे और जिनको नींद न आने का दुःख भोगना पड़ता है उनको मालूम होगा कि उनकी सभी आदतें बदल गई हैं।

अब हम जानते हैं कि हम सभी शिष्यों से यह आशा नहीं कर सकते कि वे बच्चे की भाँति अथवा किसान की तरह सवेरे ही सो जायँगे और सवेरे ही जग उठेंगे। हमारी इच्छा तो यही है कि ऐसा ही होता; परन्तु हम समझते हैं कि अर्वाचीन जीवन में, विशेष कर के बड़े २ नगरों में कैसी २ आवश्यकताएँ पड़ जाती हैं। इसलिये हम अपने शिष्यों से यही अनुरोध आग्रह पूर्वक करते हैं कि इस विषय में जहाँ तक हो सके प्रकृति के निकट रहने का यत्न कीजिए। जहाँ तक हो सके अधिक रात तक जगना और अपने को जोश में रखना तर्क कर दीजिए; और जब अवसर मिले सवेरे सोइए और सवेरे ही जगिए। हम जानते हैं कि ऐसा करने से आप की उस बात में बाधा पड़ेगी जिसे आप आनन्द समझे हुए हैं; परन्तु हमारा यही निवेदन है कि इस "आनन्द" में भी आप विश्राम कर लीजिए। देर या सवेर मानव जाति फिर सादे तरीकों से जीने की ओर वापस आवेगी; और अधिक रात तक डावाँडोल रहना वैसा ही गिना जायगा जैसा आज तक भले आदमियों में गांजा, अफीम आदि का व्यवहार और शराब पी कर मतवाला हो जाना आदि गिने जाते हैं। परन्तु तबतक हम यही कह सकते हैं कि जहां तक करते बने इस विषय में करते रहिए।

यदि आप को दिन की दोपहरी में कुछ समय मिल

जाय, या अन्य ही किसी समय में तो आप को मालूम हो जायगा कि आधे घंटे के शरीर के शिथिलीकरण अथवा निद्रा से आप के शरीर में ताज़गी आ जायगी और उठने पर आप वेहतर कार्य करने के योग्य हो जायँगे। वहुत से लब्ध प्रतिफल कामकाजी और रोज़गारी मनुष्य इस गूढ़ भेद को जान गए हैं, और जब नौकर चाकर लोग मिलने वालों से कहते हैं कि मालिक आध घंटे के लिये वहुत ही आवश्यक काम में फँसे हैं तो अक्सर यह बात रहती है कि वे चारपाई पर पड़े हुए अपने शरीर को ढीला किये हुए लम्बी सांसें लेते रहते हैं, और प्रकृति को ऐसा अवसर देते रहते हैं कि वह ताज़गी दे दे। अपने काम के वीच २ में थोड़ा २ विश्राम देने से मनुष्य उतने काम का दूना काम कर सकता है, जितना विना विश्राम किये करता था। हे परिश्रमी जनो, इस बात पर विचार करो और अपने परिश्रम के बीच २ में शिथिलीकरण और विश्राम के द्वारा तुम परिश्रम को और भी अधिक तेज़ और लाभदायक बना सकते हो। थोड़े से शिथिलीकरण से नयी ताज़गी आ जाती है और कठिन परिश्रम की योग्यता हो जाती है।

तीसवाँ अध्याय ।

नवजनन ।

इस अध्याय में हम आप के ध्यान को एक ऐसे विषय की ओर आकर्षित करेंगे जो मानव जाति के लिये अत्यंत हितकर है, परन्तु जिस पर विचार करने के लिये मानव जाति तैयार नहीं है । इस विषय पर सर्वसाधारण की मति की वर्तमान स्थिति के कारण इच्छानुकूल या आवश्यकतानुसार साफ़ २ लिखना असम्भव है; क्योंकि इस विषय के सभी लेख अश्लील और अपवित्र ख्याल किए जाते हैं, यद्यपि लेखक का उद्देश सर्वसाधारण की अश्लील और अपवित्र तथा अनुचित क्रियाओं का रोकना ही क्यों न हो । तथापि कुछ निर्भय लेखकों ने सर्वसाधारण को किसी न किसी प्रकार से इस नवजनन के विषय से ख़ासी तौर पर परिचित करा दिया है, जिससे हमारे पाठकों में से अधिकतर मनुष्य हमारे भाव को समझ जायँगे ।

हम कामशास्त्र ऐसे प्रधान विषय को नहीं वर्णन किया चाहते क्योंकि उसके वर्णन में तो अलग ही एक अच्छी किताब तैय्यार हो जायगी; और इसके अलावे इस किताब में उस शास्त्र की सविस्तर व्याख्या करने की चेष्टा उचित भी नहीं है । हम कुछ बात नवजनक के विषय में कहेंगे । मनुष्य लोग जो अधिक प्रसंग करते हैं और सहधर्मिणियों को अधिक प्रसंग के लिये विवश करते हैं, उसको योगी लोग बिलकुल प्रकृति के

विरुद्ध समझते हैं । उनका यह विश्वास है कि रज और वीर्य ये इतने अनमोल पदार्थ हैं कि नष्ट करने के योग्य नहीं हैं, और जो मनुष्य ऐसा करता है वह इस विषय में पशु से भी नीच गिर जाता है । सिर्फ एक या दो को छोड़कर शेष सब नीच जंतु केवल संतान के लिये प्रसंग करते हैं; और प्रसंगाधिक्य तथा रजवीर्य का नाश जितना मनुष्य करते हैं वह नीच जंतुओं को छू तक नहीं गया है ।

ज्यों २ मानवजाति सच्चे जीवन में उन्नति करती जाती है त्यों २ पति और पत्नी के मध्य में नए २ कर्तव्य प्रगट होते हैं और उन में परस्पर उच्च भावों का देना लेना होने लगता है, जो पशुओं में नहीं होता और न जो पशुतुल्य भौतिक मनुष्यों ही में होता । यह बात उन्नतमना और आध्यात्मिक पुरुष और स्त्रियों के बांटे की है । पति और पत्नी के मध्य में समुचित सम्बन्ध रहने से उन्नति, शक्ति और सज्जनता प्राप्त होती है न कि क्षीणता, निर्बलता और दुर्जनता जो कि केवल विलासिता से उत्पन्न हुआ करती है । यही कारण है कि पति पत्नी में यदि एक उच्चभाव और दूसरा नीच भाव का हुआ तो दोनों एक संग गति नहीं कर सकते, एक आगे बढ़ा चाहता है तो दूसरा पीछे हटने का यत्न करता है और इसलिये वैमनस्य और विरोध हो जाया करता है । वे दोनों भिन्न २ लोकों में रहने लगते हैं और वे परस्पर एक दूसरे में उस सुख को नहीं पाते जिसकी उन्हें अभिलाषा होती है बस हम इस विषय में केवल इतना ही कहा चाहते हैं । इस विषय पर बहुत अच्छी २ किताबें लिखी गई हैं जहाँ

उस विचार के ग्रंथ मिलते हों वहाँ पता लगाने से इन किताबों का पता लग सकता है। अब आगे इस अध्याय में हम रज वीर्य की रक्षा की महिमा के विषय में कहेंगे।

यद्यपि योगी लोग ब्रह्मचारी रह कर ऐसे जीवन में रहते हैं कि पति पत्नी भाव या उनके प्रसङ्ग की बात ही नहीं रहती तोभी योगी लोग जननेन्द्रियों के बलवान् होने और उनका प्रभाव सारे शरीर पर पड़ने की महिमा को भली भांति समझते हैं। इन इन्द्रियों के निर्बल हो जाने से सारा आधिभौतिक शरीरयंत्र निर्बल हो जाता है और दुःख भोगता है। पूरी सांस लेने से (जिसका वर्णन पहले हो चुका है) एक ऐसा ताल उत्पन्न होता है, जो इस मुख्य अंग को स्वाभाविक स्थिति में रखने के लिए स्वयम् प्रकृति की आदि ही से रची हुई तरकीब है; इस पूरी सांसक्रिया द्वारा जनन शक्ति सुदृढ़ और जीवट वाली हो जाती है और इस प्रकार सहानुभवी क्रिया द्वारा सारा शरीर बलवान् और सुदृढ़ होजाता है। इस कथन का यह अर्थ नहीं है कि पूरी सांस की क्रिया से कामवृत्ति जगती है—किन्तु इस से बिलकुलही पृथक् योगी लोग ब्रह्मचर्य और काम दमन के पक्षपाती होते हैं, वे वैवाहिक गँठजोड़े में और अन्यत्र भी सर्वत्र पवित्रता चाहते हैं। उन लोगों ने स्वयम् काम को दमन करना सीखा है, और वे काम को इच्छा और मन का वशवर्ती बना डालते हैं। परन्तु काम के दमन करने का अर्थ नपुंसकता नहीं है; योगियों की यह शिक्षा है कि जिन पुरुष और स्त्रियों के जननावयव प्राकृतिक और सुदृढ़ हैं उनका

संकल्प ऐसा प्रबल होगा कि जिससे वह अपने को वश में रख सकेगा। योगियों का यह विश्वास है कि जननेन्द्रियों की निबलता ही के कारण कामातुरता होती है।

योगी लोग यह भी जानते हैं कि कामशक्ति को परिवर्तित करके कैसे उसे शारीरिक और मानसिक विकाश में लगा सकते हैं कि जिसमें वह व्यर्थ न जाय, जैसा कि मूर्ख मनुष्यों में वह नष्ट हुआ करती है। आगे चल कर हम योगियों की एक ऐसी कसरत बतलाते हैं जिस से काम शक्ति मानसिक और शारीरिक बल में परिवर्तित हो जाती है। चाहे शिष्य योगी के इन्द्रियशौच को पसन्द करे या न करे पर यह तो उसे मालूम हो ही जायगा कि पूरी सांस से इन अवयवों में इतनी शक्ति आवेगी जितनी और किसी उपाय से नहीं आ सकती। स्मरण रखिए कि हम प्राकृतिक स्वस्थता का प्रतिपादन कर रहे हैं, न कि अस्वाभाविक वृद्धि का। भोगी कामी को तो यह प्रतीत होगा कि प्राकृतिक का अर्थ भोग की इच्छा का कम होना है; और निर्बल मनुष्य को यह मालूम होगा कि इसका अर्थ शरीर में शान चढ़ जाना और उस निर्बलता से छुटकारा पा जाना है जो अबतक उसे मनहूस बनाए थी। हम यह नहीं चाहते कि यहां पर हमारी बातों को समझने में आप को भ्रम हो। योगी का आदर्श यह है कि शरीर अपने सब अवयवों से सुदृढ़ हो और अपनी प्रबल इच्छा शक्ति के आयत्त में उच्चभावों में जागृत होकर रहे।

योगी लोग पुरुषों और स्त्रियों के वीर्य और रज के सुव्यवहार तथा दुर्व्यवहार का बहुत बड़ा ज्ञान रखते हैं। इस

विषय की कुछ बातें योगियों की मंडली से निकल कर कहीं २ अन्य मनुष्यों में फैल गई हैं, और उन बातों को कुछ पश्चिमी मनुष्यों ने लिख डाला है और उनसे बहुत लाभ हुआ है। इस किताब में हम उस विषय के आन्तरिक विचारों का वर्णन करेंगे, परन्तु, एक ऐसी तरकीब पर आप के ध्यान को आकर्षित करेंगे, जिससे शिष्य अपनी जननशक्ति को नष्ट करने के स्थान में उसे सारे शरीर के लिए जीवट रूप में परिवर्तित कर सकता है। जननशक्ति उत्पत्तिकारिणी शक्ति है, और सारे शरीर यंत्र द्वारा ग्रहण करके बल और जीवट रूप में परिवर्तित हो सकती है; इस प्रकार जनन के स्थान में नवगठन कर सकती है। यदि हमारे नवयुवक लोग इन गूढ़ तत्वों को समझ जाते तो वे आने वाले अनेक विपत्तियों के समूह और दुःखों से छुटकारा पा जाते, और मन, बुद्धि, धर्म और शरीर से सब प्रकार बलिष्ठ हो जाते।

जननशक्ति का यह परिवर्तन अभ्यासी को बहुत जीवट देता है। यह उन्हें उस ओजस से भर देता है जो उनके शरीर में तेज और प्रताप रूप से झलकने लगता है। इस प्रकार से परिवर्तित शक्ति दूसरे मार्गों में ले जाकर बड़े २ लाभों में लगाई जा सकती है। प्रकृति ने प्राण के एक अत्यन्त शक्तिमान् रूपान्तर को इस जनन-शक्ति के रूप में एकत्रित कर दिया है। अधिक से अधिक जीवटशक्ति बहुत थोड़े परिमाण में एकत्रित की गई है। जन्तुओं के जीवन में जननावयव एक बड़े प्राणभंडार हैं, और उनकी शक्ति को ऊपर खींचकर चाहे उसे मानसिक, अध्यात्मिक और शारीरिक

उन्नति में प्रयोग करें, चाहे जनन कार्य में लगावें अथवा भोग विलास में नष्ट कर डालें।

जननशक्ति को परिवर्तित करनेवाली योगियों की कसरत बहुत ही सरल है। वह तालयुक्त सांस के साथ और बहुत आसानी से की जाती है। इसका अभ्यास किसी समय में किया जा सकता है, परन्तु उस समय इसको करने का हम आग्रह करेंगे जब कामेच्छा प्रबल हो उठी हो; उस समय में यह शक्ति प्रगट रहती है और आसानी से पुष्टिकर कार्यों में परिवर्तित की जा सकती है। हम आगे इसे देखेंगे। जिन पुरुष और स्त्रियों को मानसिक और और शारीरिक उत्पादन कार्य करना पड़ता है, वे इस उत्पादिनी शक्ति को अपने व्यवसाय में प्रयोग कर सकते हैं और कसरत में प्रत्येक श्वास खींचने के साथ शक्ति को खींचकर श्वास छोड़ने के समय इसे अभीष्ट स्थान को भेज सकते हैं। शिष्यों को समझ लेना चाहिए कि वस्तुतः रज और वीर्य इस रीति से नहीं खींचे जाते, किन्तु वह प्राणशक्ति खींची जाती है जिससे यह कामशक्ति जागृत रहती है—मानों जनन शक्ति का सत्त खिंच जाता है।

पुष्टि-विधायिनी कसरत।

अपने मन को काम चिन्तनाओं और काम कल्पनाओं से हटाकर केवल शक्तिमात्र पर एकाग्र कीजिए। यदि काम चिन्तनाएँ मन में आ जायँ तो इससे हिम्मत न हारिए; परन्तु इसे उस शक्ति का विकाश समझिए जिसे आप शरीर और

मन की पुष्टि करने में लगाया चाहते हैं। ढीले होकर पड़ जाइए या सीधे बैठ जाइए; और अपने मन को इस कल्पना में लगाइए कि मानो आप इस जनन शक्ति को ऊपर खींच कर सौर्यकेन्द्र में ला रहे हैं, जहाँ यह परिवर्तित होकर जीवट शक्ति के रूप में संचित रहेगी। तब तालयुक्त श्वास लीजिए; और मन में यह कल्पना कीजिए कि प्रत्येक श्वास खींचने में आप कामशक्ति को ऊपर खींच रहे हैं। प्रत्येक श्वास खींचने में प्रबल आकांक्षा की आज्ञा दीजिए कि जननेन्द्रियों से शक्ति खिंच कर ऊपर सौर्यकेन्द्र में आवे। यदि ताल ठीक रीति से निश्चित हो गया होगा और कल्पना स्पष्ट हो गई होगी, तो आप को शक्ति ऊपर चढ़ती प्रतीत होगी और आप को उसके उत्तेजक प्रभाव का बोध हो जायगा। यदि आप मानसिकबल की वृद्धि चाहते हैं तो आप इसे सौर्यकेन्द्र में खींचने के स्थान पर मस्तिष्क में खींच सकते हैं; यह कार्य मानसिक आज्ञा देने और मस्तिष्क में खींचने की कल्पना करने से हो सकता है। कसरत के इस अन्तिम भाग में शक्ति का केवल उतना ही अंश मस्तिष्क में जायगा जितने की वहाँ आवश्यकता होगी; शेष भाग सौर्यकेन्द्र ही में संचित रह जायगा। इस परिवर्तिनी क्रिया में सिर को थोड़ा आगे सरलता और स्वाभाविक रीति से झुका रहना चाहिए।

यह नवजनन का विषय जाँच, अन्वेषण और अध्ययन के लिये एक वृहत्क्षेत्र उपस्थित कर देता है; और किसी दिन इस विषय पर एक छोटी किताब लिख देना हितकर समझ सकते हैं कि वह किताब उन थोड़े से मनुष्यों में घुमाई

जाय जो इसके लिये तैयार हों और जो पवित्र भावना से इसके खोजी हों न कि काम कल्पनाओं और कामवृत्तियों से प्रेरित होकर इसे तलाश करते हों ।

इकतीसवाँ अध्याय।

मानसिक स्थिति।

जिन लोगों ने प्रवृत्तिमानस और आधिभौतिक शरीर को स्वायत्त रखने के विषय में योगियों की शिक्षा का परिचय पा लिया है, और यह भी जान लिया है कि प्रबल आकांक्षा का कितना प्रभाव प्रवृत्तिमानस पर पड़ता है, वे बड़ी आसानी से देख सकते हैं कि किसी मनुष्य की मानसिक स्थिति का बड़ा भारी प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर पड़ता है। जिस मनुष्य की मानसिक स्थिति उज्ज्वल, प्रसन्न और सुखी होती है उसका भौतिक शरीर स्वाभाविक रीति से अपना काम करता है; परन्तु विषादयुक्त मानसिक दशाएँ, चिन्ता, चिड़चिड़ापन, भय, ईर्षा, द्वेष और क्रोध ये शरीर पर अपना बुरा असर डालते हैं और शारीरिक गड़बड़ उत्पन्न कर देते हैं जिसका परिणाम रोग होता है।

इस बात को हम सब लोग जानते हैं कि अच्छे समाचार और प्रसन्न संघ स्वाभाविक भूख उत्पन्न करते हैं, परन्तु बुरे समाचार मन इस संघ वगैरः भूख को मन्द कर देते हैं। किसी प्रिय भोजन का जिक्र आने पर मुँह में पानी भर आता है, और किसी बुरी वस्तु के स्मरण से मतली आने लगती है।

हमारी मानसिक स्थितियां हमारे प्रवृत्तिमानस में प्रतिबिम्बित रहती हैं; और चूंकि मन का यह अंश शरीर पर

सीधा अधिकार रखता है, इसलिए यह बात झट समझ में आ सकती है कि मानसिक स्थिति कैसे शारीरिक कार्यों में अपना असर डाल देती है।

विषादयुक्त भावनाएँ रुधिरसंचार पर अपना असर डालती हैं, और इससे शरीर के प्रत्येक भाग पर प्रभाव पड़ता है कि शरीर अपनी पुष्टि से वंचित रह जाता है। अनमेल खयालात भूख को मन्द कर देते हैं, जिसका यह परिणाम होता है कि शरीर को उचित पोषण नहीं मिलता और रुधिर दरिद्र हो जाता है। इसके विपरीत प्रसन्न विचार और शुभ तथा मंगल भावनाएँ पाचन को बढ़ाती हैं, भूख को जगाती, रुधिरसंचार में सहायता देतीं और वस्तुतः सारे शरीर पर कायाकल्प का प्रभाव डालती हैं।

बहुत से लोग यह खयाल करते हैं कि मानसिक भावों का शरीर पर असर डालना यह योगियों और उन लोगों का भ्रम है जो मन ही को प्रधानता देकर मानस ही द्वारा रोग चंगा करने में अपना स्वार्थ समझते हैं; परन्तु आप वैज्ञानिक अन्वेषण कारियों के प्रामाणिक लेखों को देखिए तो आपको मालूम हो जायगा कि ऐसा खयाल सत्यघटनाओं के आधार पर है। बहुत बार परीक्षाएँ की गई हैं जिनसे यह सिद्ध हुआ है कि शरीर मानसिक स्थिति और विश्वास को झट ग्रहण कर लेता है; बहुत से मनुष्य स्वतः प्रवृत्त भावनाओं और दूसरों द्वारा प्रवर्तित की हुई भावनाओं से रोगी हो गए हैं और रोग से छुटकारा पा गये हैं। ये भावनाएँ मानसिक स्थितियां ही तो हैं?

क्रोध के आवेश में लार या थूक विष हो जाता है; यदि माता बहुत भयभीत या क्रुद्ध हो जाय तो उसका दूध बच्चे के लिये विषैला हो जाता है। यदि मनुष्य विषादयुक्त या भयभीत हो जाय तो उसके आमाशय से स्वच्छन्दतापूर्वक द्रव नहीं स्रवता। ऐसे हज़ारों प्रमाण दिये जा सकते हैं।

क्या इसमें आपको सन्देह है कि अयुक्त भावनाओं के कारण बीमारियां पैदा हो जाती हैं ? तब कुछ पश्चिमी वैज्ञानिकों का प्रमाण सुन लीजिए :—

"अफ्रीका के किसी २ भाग में अधिक क्रोध या रंज करने के पश्चात् अवश्य ज्वर आ जाता है।" सर सेमुयल बेकर।

' एक बारगी मन पर धक्का लगने से सच्चा प्रमेह उत्पन्न होता है जिसका कारण मानसिक उद्वेग है।' सर बी० डवल्यू रिचार्डसन।

"बहुत सी बीमारियों में देखने से मुझे ऐसे कारण मिले हैं जिनसे विश्वास किया जा सकता है कि बहुत दिनों तक चिन्ता करने से विषैले फोड़े की उत्पत्ति हुई है।" सर जार्ज पेजेट।

"हम इस बात को देखकर बहुत आश्चर्यित हुए कि अक्सर फेफड़ों में विषैले फोड़ों के रोगी लगातार रंज के कारण इस रोग में पड़ गए। यह बात इतनी अधिक देखने में आती है कि इसे सिर्फ इत्तफ़ाक़ नहीं कह सकते।" मर्चिसन।

"विषैले फोड़ों की बीमारियां, खास कर छाती की, मानसिक चिन्ता के कारण उत्पन्न होती हैं।" डाक्टर स्नो।

इत्यादि, इत्यादि

डाक्टर हैक टयूक मानसिक बीमारियों की अपनी किताब में जो पश्चिमी दुनियां में मानसिक औषधियों के प्रचार के बहुत पहले की है, लिखते हैं कि अनेकों बीमारियां भय से उत्पन्न होती हैं जैसे उन्माद, विक्षिप्तता, लकवा, पहले ही बाल पक जाना, गंज़ा सिर दांतों का बिगड़ना इत्यादि।

उन दिनों में जब साम्पर्किक बीमारियां वबा की भांति फैलती हैं तो देखने में आता है कि बहुत से मनुष्य भय ही के कारण बीमार पड़ जाते हैं; अथवा बीमारी का तो हलका हमला हुआ पर भय का इतना भारी हमला हुआ कि लोग मर जाते हैं। यह बात आसानी से तब समझ में आवेगी जब हम ख्याल करेंगे कि साम्पर्किक बीमारियां कम जीवट के मनुष्यों ही पर अधिक आक्रमण करती हैं और भय और ऐसी वृत्तियां जीवट को कम कर ही देती हैं।

इस विषय में बहुत सी अच्छी २ किताबें लिखी हुई हैं, इसलिए इसके अधिक विस्तार करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। परन्तु इस विषय को छोड़ने के पहले हम अपने शिष्यों के मन पर इस बात को अंकित कर देना चाहते हैं कि "विचार क्रिया का रूप धारण करते हैं" और मानसिक दशाएँ शारीरिक क्रियाओं के रूप में प्रगट होती हैं।

योगशास्त्र अपने शिष्यों के मन में स्थिरता, शान्ति, शक्ति और निर्भयता उत्पन्न करना चाहता है, जो कि शरीर में आकर प्रतिबिम्बित होते हैं। ऐसे मनुष्यों के मन में शान्ति और निर्भयता तो स्वाभाविक ही रीति से आती है और विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु उन

लोगों के लिये, जो अभी तक मानसिक शान्ति नहीं प्राप्त किए हैं, इस बात से बहुत लाभ हो सकता है कि वे अपने मन को शान्त रखने का खयाल बनाये रहें और ऐसे मंत्रों को जपें जिन से शान्त मन की कल्पना होती हो। हमारी राय है कि ये शब्द जपे जायँ कि "उज्जल,प्रसन्न और सुखी" और इन शब्दों के अर्थ पर ध्यान रहे, इन शब्दों के भाव को अपनी शारीरिक क्रिया में विकसित कीजिये तो आप को मानसिक और शारीरिक बहुत बड़ा लाभ होगा और आध्यात्मिक बातों के ग्रहण करने के योग्य आप का मन होता जायगा।

बत्तीसवां अध्याय।

आत्मा के अनुगामी बनो।

यद्यपि यह किताब केवल भौतिक शरीर के कल्याण के अभिप्राय से लिखी गई है, और योगशास्त्र के उच्च अंश अन्य लेखों के लिये छोड़ दिये गये हैं, तथापि योगशास्त्र के मूल तत्त्व उसकी गौण शाखाओं से इस भांति मिले जुले हैं, और योगी लोग अपनी साधारण क्रियाओं में भी उन मूल तत्वों पर इतनी दृष्टि रखते हैं कि इस योग शास्त्र की शिक्षा और शिष्यों पर न्याय की दृष्टि से देखते हुए उन गूढ़ तत्वों के विषय में बिना कुछ बातें कहे हम इस विषय को नहीं छोड़ सकते।

जैसा कि हमारे शिष्य लोग निस्सन्देह जानते हैं, यह योगशास्त्र ऐसा वतलाता है कि मनुष्य क्रमशः नीच रूपों से उच्च रूप में वृद्धि और विकाश पा रहा है और उस से भी ऊंचा आध्यात्मिक विकास इस का होनेवाला है। प्रत्येक मनुष्य में आत्मा है यद्यपि वह नीच प्रकृति के आवरणों से इतना घिरा हुआ है कि वह बड़ी कठिनता से जाना जाता है। आत्मा नीच जीवों में भी है, वह स्फुरण कर रहा है और सर्वदा उच्च २ रूप में विकसित होने की ओर उन्मुख रहता है। इस उन्नतिशील जीवन का भौतिक आवरण-जो धातुओं, पौधों, नीच जन्तुओं और मनुष्यों का शरीर है-

ऐसा औज़ार है कि जो उच्च और उच्च तत्वों के उत्तम से उत्तम विकास के लिये काम आता है। परन्तु यद्यपि भौतिक शरीर का व्यवहार अल्प समय के लिये और अनित्य है, और यह शरीर केवल वस्त्र की भांति पहनने और उतार देने के योग्य है, तोभी प्रकृति का यह सर्वदा उद्देश रहता है कि औज़ार जहां तक होसके पूरा से पूरा बना रहे। प्रकृति यथा साध्य उत्तम से उत्तम शरीर देती है, और उचित जीवन की प्रेरणा करती रहती है, परन्तु यदि ऐसे कारणों से, जिन का यहां वर्णन नहीं किया जाता, एक अपूर्ण शरीर जीव को मिल जाता है, तथापि उच्च भाव यह यत्न करते रहते हैं कि उसी देह के अनुकूल अपने को बनाकर उस से अच्छा से अच्छा काम निकालें।

यह आत्म-रक्षा की प्रवृत्ति—यह जीवन की आंतरिक प्रेरणा–आत्मा का विकास है। यह प्रवृत्तिमानस के आदिम रूप से लेकर अनेक दर्जों में काम करती हुई मानसिक मूल तत्व के उच्चतम विकास तक पहुंचती है। यह बुद्धि में होकर भी प्रगट होती है जिससे मनुष्य अपनी तर्क शक्तियों का व्यवहार करके अपनी शारीरिक पूर्णता और जीवन को क़ायम रखता है। परंतु शोक है कि बुद्धि अपने ही काम में नहीं लगी रहती; किंतु ज्योंही वह अपने को कुछ समझने लगती है, त्योंही वह प्रवृत्तिमानस को दबाकर आप जीवन की अनेक प्रकार की अस्वाभाविक कुरीतियों को शरीर पर ढकेल देती है और प्रकृति से इतनी दूर कर देने की चेष्टा करती है जितना संभव हो सकता है। यह उस लड़के की भांति है जो माता

पिता के शासन से स्वतंत्र होकर माता पिता के आदर्श और उपदेश के यथासाध्य विपरीत चला जाता है–केवल इसी बात को दिखलाने के लिये कि "मैं स्वतंत्र हूँ"। परन्तु लड़का अपनी मूर्खता को किसी समय पर समझ जाता है है और सुधर जाता है—उसी प्रकार बुद्धि भी कभी सुधर जायगी।

मनुष्य अब समझने लगा है कि उसके भीतर ऐसी कोई चीज़ है, जो उसकी आवश्यकताओं पर ध्यान रखती है, और वह अपने काम को उस मनुष्य की अपेक्षा अधिक समझती है। क्योंकि मनुष्य अपनी सारी बुद्धि रखते हुए भी प्रवृत्ति-मानस के उन महत्कर्मों को नहीं कर सकता जिन्हें वह पौधों, जंतुओं और स्वयं उसी मनुष्य में कर डालता है। और वह इस मानस तत्व को मित्र समझ कर उसका भरोसा करने लगा है और उसने उसे अपना काम आप करने की छुट्टी दे दी है। जीवन की वर्तमान रीतियों में, जिन्हें मनुष्य ने अपने विकास में धारण कर लिया है, परंतु जिनसे पृथक् होकर वह देर या सबेर अपनी प्राकृतिक अवस्था में वापस आवेगा, पूर्णतया प्राकृतिक जीवन जीना प्राय: असम्भव सा हो गया है; जिसका परिणाम यह हुआ है कि भौतिक जीवन अवश्य कुछ न कुछ अनरीति का होगा। परंतु प्रकृति की आत्मरक्षा और प्रति-योजना प्रवृत्ति बहुत प्रबल है; और वह बहुत अच्छी तरह से अपना काम निबाह लेती है, और अपने काम को उसकी अपेक्षा बेहतर करती है, जिसे सभ्य मनुष्य जीवन की अपनी ऊटपटांग रीतियों के द्वारा करने की आशा कर सकता है।

इस बात को कभी न भूलना चाहिये कि मनुष्य ज्यों २ आगे बढ़ता है और उसका आत्मा विकास पाने लगता है त्यों २ उसे ऐसी एक चीज प्राप्त होने लगती है जो प्रवृत्ति के अनुरूप होती है जिसे हम लोग प्रतिभा कहते हैं और यही प्रतिभा उसे प्रकृति के मार्ग पर वापस लाती है। हम इस उदय होती हुई चैतन्यता को देख सकते हैं कि प्राकृतिक जीवन और सादी ज़िंदगी की ओर कैसा लोगों का झुकाव हो रहा है और थोड़े दिनों से तो इसकी बहुत ही ज्याद: तरक्की है। अब हम लोग अपनी इस चमकीली सभ्यता के रूपों, पुराने विश्वासों और रस्म रिवाजों पर हँसने लगे हैं और यदि हम इन्हें दूर न कर देंगे तो ये उस सभ्यता को उसी के बढ़ते हुए बोझ के नीचे गिरा देंगे।

जिस पुरुष या स्त्री में अध्यात्म का विकास हो रहा है वह कृत्रिम जीवन और दस्तूरों से असन्तुष्ट हो जावेगा और जीवन की सादी और अधिक प्राकृतिक रीतियों की ओर झुकेगा और कृत्रिम आवरणों तथा बंधनों से, जिनसे मनुष्य बहुत काल से घिरा चला आता है, ऊब जावेगा। उसको सर्वदा अपना वास्तविक घर स्मरण आने लगेगा—"बहुत दिनों के बाद हम घर लौट रहे हैं।" और बुद्धि भी अनुकूल हो जायगी, और उन मूर्खताओं को देख कर, जिनमें वह अब तक पड़ा था, यही चेष्टा करेगी कि सब मूर्खता छोड़ कर आओ घर चलें; अपने कार्य को वह अच्छी तरह करने लगेगा और प्रवृत्तमानस को अपना कार्य निर्बाध करने के लिये छुट्टी दे देगा।

हठयोगी के सब विचार और अभ्यास इसी घर लौट चलने के आधार पर अवलम्बित हैं—इस विश्वास पर कि मनुष्य के प्रवृत्तिमानस में वह चीज़ है जो साधारण दशा में उसके स्वास्थ्य को क़ायम रक्खेगी। इसी के अनुसार वे लोग जो योग शिक्षा का अभ्यास करते हैं, पहले "छोड़ना" सीखते हैं और तब प्रकृति के उतना निकटस्थ होना सीखते हैं जितना इस कृत्रिमता के ज़माने में सम्भव हो सकता है। इस छोटी किताब में प्रकृति ही के पथ और तरीक़े बतलाये गये हैं, कि जिससे हम प्रकृति के पास लौट चलें। हमने नये मत का उपदेश नहीं किया है, परन्तु सर्वदा आपसे यही आग्रह किया है कि हमारे साथ पुराने अच्छे उस पथ पर आ जाइये जिसे छोड़ कर हम लोग भूले हुए हैं।

हम इस बात को मानते हैं कि आज कल के पुरुष और स्त्रियों को प्राकृतिक जीवन स्वीकार कर लेना बहुत कठिन हो गया है, क्योंकि उनका संघ उन्हें विपरीत ही मार्ग ग्रहण करने के लिए प्रेरणा कर रहा है; परन्तु प्रत्येक मनुष्य प्रतिदिन अपने लिए और अपनी जाति के लिए इस पथ पर अवश्य थोड़ा बहुत कुछ कर सकता है; और शनैः २ उसकी पुरानी कृत्रिम आदतें सब एक २ कर के छूट जायँगी।

इस अन्तिम अध्याय में हम आपके मन पर यह अंकित किया चाहते हैं कि मनुष्य भौतिक और आध्यात्मिक दोनों जीवन में आत्मा का अनुगामी हो सकता है। मनुष्य आत्मा का पूरा भरोसा कर सकता है कि वह प्रतिदिन के जीवन तथा और टेढ़ेमेढ़े पेचीदा कामों में उसे सच्चे ही मार्ग पर ले

जावेगा। यदि मनुष्य आत्मा का भरोसा क[illegible]
पुरानी कामनाएँ उससे झड़ पड़ेंगी—उसकी [illegible]
रुचियाँ लुप्त हो जावेंगी—और उसको उस [illegible]
वह सुख और आनन्द मालूम होगा कि जिस [illegible]
की अपेक्षा अब भिन्न ही वस्तु प्रतीत होने लग[illegible]।

मनुष्य को यह विश्वास कभी न त्यागन[illegible]
आत्मा पार्थिव शरीर के कार्यों म भी अगुआ [illegible]
आत्मा सर्वत्र व्यापक है और पार्थिव तथा [illegible]
दशाओं दोनों में विकाश पाता है। मनुष्य [illegible]
आत्मा के साथ २ सोच विचार कर सकता है वैसे ही उसके
साथ साथ भोजन कर सकता है, पानी पी सकता है। इस
बात से काम नहीं चलेगा कि अमुक आध्यात्मिक वस्तु है
और अमुक वस्तु आध्यात्मिक नहीं है। क्योंकि उच्च भावना
में सभी वस्तुएँ आध्यात्मिक हैं।

अब अन्त में यह कहना है कि जो मनुष्य अपने भौतिक शरीर को उत्तम से उत्तम किया चाहता है—आत्मा के विकाश के लिए अच्छा से अच्छा औजार चाहता है—उसको अपने जीवन को सर्वदा आत्मा का भरोसा रखते हुए जीना चाहिए। उसको समझ लेना चाहिए कि उस के भीतर जो आत्मा है वह परमात्मा की चिनगारी है—परमात्म-समुद्र का एक बिन्दु है—परमात्म सूर्य की एक किरण है। उसे समझ लेना चाहिए कि उसकी सत्ता नित्य है-जो सर्वदा बढ़ रही विकसित हो रही और प्रफुल्लित हो रही है; सर्वदा उस महत् लक्ष्य की ओर जा रही है, जिसके वास्तिक भाव को